©

ED. 422
1250

गंग ग्रंथावली

कविवर गंग की रचनाओं का संकलन एवं
समीक्षात्मक अध्ययन

सम्पादक :
डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल

सत्यमेव जयते

सर्व श्री अशोका प्रिंटिंग वर्क्स, मोदीनगर द्वारा भारत में मुद्रित ।
व्यवस्थापक, प्रकाशन शाखा, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित, 1970.

गंग ग्रंथावली

(कविवर गंग की रचनाओं का संकलन एवं समीक्षात्मक अध्ययन)

सम्पादक :
डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय,
(शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय)
वेस्ट ब्लाक-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-22

Price (Inland) Rs. 4.00. (Foreign) 9 Sh. 4d. or 1 $ 44 Cents.

प्राक्कथन

राजभाषा सम्बन्धी राष्ट्रपति आदेश के अंतर्गत शिक्षा मंत्रालय के अधीन हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु सन् 1960 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना की गई थी। हिन्दी के विकास की दिशा में निदेशालय ने जो योजनाएँ बनाईं, उनमें एक योजना सर्वसंग्रहों के प्रकाशन की भी है।

उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत कविवर गंग के ग्रन्थों का एक संग्रह प्रस्तुत है। सम्पादक महोदय ने जिस अनुसंधान और परिश्रम के साथ इस संकलन का सम्पादन किया है, वह स्वतः प्रकट है।

प्रस्तुत संग्रह में कविवर के जीवनवृत्त, उनकी रचनाओं की समीक्षा के अतिरिक्त रचनाओं के विभिन्न पाठ भी दिए गए हैं। इस सब का उद्देश्य है विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों एवं अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध कराना। आशा है इससे पाठक छंद लाभान्वित होगा और इसी में सम्पादक एवं निदेशालय के उद्यम की सफलता है।

ए० चन्द्रहासन
निदेशक
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

विषय—सूची

जीवन—वृत्त

विषय	पृष्ठ सं०
1. जन्म-स्थान, समय तथा जाति	1
2. नाम	5
3. कवि की दयनीय स्थिति	7
4. कवि गंग की धार्मिक भावना	21
5. कविवर गंग और तद्युगीन प्रतिष्ठित व्यक्ति	22
6. कविवर गंग की रचनायें	31

काव्यालोचन

1. पृष्ठभूमि	38
2. वर्ण्य-विषय-समीक्षा	43
3. संयोग शृंगार	51
4. विप्रलम्भ शृंगार	66
5. चिन्ता	71
6. स्मृति	72
7. गुण-कथन	72
8. उद्वेग	73
9. प्रलाप	73
10. उन्माद	74
11. व्याधि	74
12. जड़ता	75
13. मूर्छा	75
14. वीर रस	78
15. अद्भुत रस	81
16. दानवीरता	82

विषय	पृष्ठ सं०
17. भक्ति भावना	82
18. नीति और उपदेश	84
19. प्रकृति चित्रण	88
20. शैली	90
21. छन्द	98
22. अलंकार	99

शब्दालंकार

23. वृत्यनुप्रास	100
24. श्रुत्यनुप्रास	100
25. मालानुप्रास	101
26. अन्त्यनुप्रास	101
27. यमक	101
28. काकु वक्रोक्ति	102
29. पुनरुक्ति प्रकाश	102
30. पुनरुक्तिवदाभास	102

अर्थालंकार

31. सादृश	103
32. उपमा	103
33. अनन्वय	104
34. रूपक	104
35. मालोपमा	104
36. उत्प्रेक्षा	105
37. व्याघात अलंकार	106
38. संदेहालंकार	106
39. अत्युक्ति	106
40. उदाहरण अलंकार	107
41. परिसंख्या	107
42. लोकोक्ति	107
43. असंगति	108

विषय	पृष्ठ सं०
44. स्वभावोक्ति	108
45. भाषा	108

हरि स्तवन

1. प्रारंभ	111
2. हर स्तवन	116
3. गंगा स्तवन	117
4. यमुना स्तवन	117
5. द्विज स्तवन	118
6. निर्वेद	118
7. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्य।	119
8. नायक छवि	119
9. नायिका छवि	122
10. झूलना	128

स्वकीया

1. मुग्धा	139
2. नवोढ़ा	140
3. वय: संधि	141
4. मध्या	143
5. सद्य: स्नाता	143

परकीया 144

सामान्या

1. स्वाधीन पतिका	147
2. खण्डिता	147
3. कलहान्तरिता	150
4. प्रवत्सत्पतिका	152
5. प्रवत्स्यत्पतिका	153
6. आगत पतिका	154
7. प्रोषित पतिका	154

विषय	पृष्ठ सं०
8. स्फुट	161
9. उपालम्भ	163
10. दौत्य	164
11. संघटन	165
12. शिक्षा	166

शृंगार वर्णन

1. चुम्बन	167
2. परिरम्भन	167
3. केलि	167
4. सुरति	168
5. विपरीत रति	169
6. सुरतान्त	169

नखशिख वर्णन

1. वेणी	171
2. वेंदी	171
3. नेत्र	172
4. कटाक्ष	176
5. काजल	176
6. कपोल तिल	177
7. ओठ	177
8 मिस्सी	178
9. बोली	178
10. मुख	179
11. अवगुंठन	180
12. उरोज	181
13. मेंहदी	182
14. रोमराजि	182
15. कटि	183

विषय	पृष्ठ सं०
ऋतु वर्णन	
1. वसन्त	184
2. ग्रीष्म	186
3. वर्षा	187
4. शरद	190
5. शिशिर	190
विप्रलम्भ	
1. पूर्वराग	191
2. मान	196
लीला	
1. दान लीला	203
2. वंशी लीला	203
3. पनघट लीला	204
4. गोपी-कृष्ण लीला	205
विरह	
1. व्रज विरह	205
2. उद्धव से गोपियों की उक्ति	206
3. उद्धव से यशोदा की उक्ति	210
नीति—उपदेश	
1. सर्वदाता ईश्वर	210
2. हरि स्तवन महत्ता	211
3. बुढ़ापे में हरि विस्मरण	211
4. क्षणभंगुर स्थिति	211
5. रति	212
6. स्वार्थ	212
7. सुख-साधन	213
8. न का गुण	213

विषय	पृष्ठ सं॰
9. कर्म छिपना असंभव	213
10. रुपया	214
11. मैत्री	214
12. क्रूर से पृथकता	215
13. समय वैपरीत्य	215
14. परीक्षा का समय	217
15. पेट	217
16. क्षुधा	217
17. याचना निंदा	218
18. ऋण भार	218
19. स्वभाव की स्वैच्छाचारिता	219
20. दुर्जन को शिक्षा	219
21. सज्जन	219
22. निषिद्ध क्षेत्र	220
23. नम्रता	221
24. निषिद्ध सेवा	221
25. कपूत	221
26. नारी	222
27. नारी-प्रेम-निषेध	222
28. नीच की कुटेव	222
29. यश	223
30. वाणी महिमा	223
31. अबोधता	224
32. दान में बाधा डालने का फल	224
33. सूम और दानी	225
34. फूट	225
35. दुर्जन प्रकृति	225
36. मूढ़ और विद्या	226
37. गुणी	226
38. बुरे राजा	227

विषय	पृष्ठ सं०
39. अत्याचार का प्रतिरोध	227
40. ठगई	228
41. दान	228
42. कंजूस	229
43. जीभ के अवगुण	230
44. कानी आंख	230
45. नारी कुगति	230
46. चौबीस चकार-युक्त चौधरी	231
47. प्रहेलिका	232
48. विजया	232
49. बड़ा	232
50. अकबर-निंदा	233
51. मृग	233
52. आत्मगौरव	234

यशोगान

1. रामदास	234
2. रामचंद्र बघेला	237
3. प्रतापसाहि	237
4. जुझारसिंह हाड़ा	238
5. मधुसिंह	238
6. मंगदराय	239
7. मुकुट मणि	239
8. कीर्ति सिंह	239
9. मिरजा भावसिंह	239
10. जगन्नाथ	240
11. दानशाह	241
12. बीरबल	241
13. मानसिंह	244
14. नवाब अब्दुरहीम खानखाना	249
15. एलच बहादुर	257

विषय	पृष्ठ सं०
16. दराव खाँ	257
17. शहंशाह अकबर	258
18. सलीम	260
19. दानियाल	261
20. मनसबदार	268
21. गंग बिदाई	269
22. चन्द छन्द वर्णन की महिमा	271

—oo—

जीवन-वृत्त

कवि गंग सम्राट अकबर के दरबारी कवि थे, और उनका साहचर्य दरबार के प्रसिद्ध व्यक्तियों अब्दुर्रहीम खानखाना, राजा बीरबल, राजा मानसिंह आदि से था। अपने समकालीन सभी दरबारी कवियों में भी इनको प्रतिष्ठित पद प्राप्त था। उस समय के सभी साहित्यकार, रसिक सहृदय-जन उनके प्रशंसक थे। यही कारण है कि समसामयिक तथा परवर्ती कवियों में उनका नाम बड़े आदर से लिया जाता था।

जन्म-स्थान, समय तथा जाति :

शिवसिंह सेंगर ने इन्हें गंगाप्रसाद ब्राह्मण के नाम से सम्वत् १६६५ में उत्पन्न माना है। आरम्भ में इन्होंने गंग को जिला इटावा अथवा दिल्ली का निवासी लिखा था किन्तु बाद में अपनी उपलब्ध सामग्री के आधार पर इन्हें इकनौर गाँव, जिला इटावा का निवासी बताया है। बन्दीजन भट्ट-ब्राह्मण होते थे, इस सम्बन्ध में उन्होंने भाटों की प्रशंसा का निम्नलिखित छन्द भी उद्धृत किया है :

प्रथम विधाता ते प्रकट भए बन्दीजन पुनि पृथु यज्ञ ते प्रकाश सरसात है।
माने सूत सोनकन सुनत पुराण रहे यश को बखाने महासुख बरसात है।
चन्द चौहान के केदार गौरी साह जू के गंग अकबर के बखाने गुण गात है।
काग कैसे मास अजनास धन भाटन के लूट धरे ताको खरा खोज मिटि जात है।।[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गंग भट्ट-ब्राह्मण थे। वे ब्रह्म-भट्ट जाति के थे और उनका निवास-स्थान इकनौर गाँव था, ये तथ्य कवि के छन्दों से भी प्रमाणित होते हैं। मिश्रबन्धुओं ने गंगाप्रसाद ब्राह्मण नामक एक कवि का जन्म सम्वत् १६६५ में और इकनौर गाँव जिला इटावा का निवासी लिखा है।[2] कवि गंगाप्रसाद ब्राह्मण और अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग एक ही व्यक्ति हैं। अन्तर्साक्ष्य द्वारा भी सरोजकार और मिश्रबन्धुओं

---

[1] शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२।

[2] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ ३०३।

के उक्त कथन प्रमाणित होते हैं। हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने गंग को भट्ट ब्राह्मण ही लिखा है।[१] गंग के छन्दों में उसके ब्रह्म-भट्ट होने का प्रमाण मिलता है। निम्नलिखित कवित्त में कवि गंग भट्ट नाम की छाप भी मिलती है :

बैठे दरीखाने बीच साह के समूह दल दोनों
दीन बीच आन दयी एक राखी है।
रोस कर बचन कहे हैं भुम्र पालन से
सावन को बन्धन बन्धे न सत्य माखी है।
भने कवि गंग भट्ट सोर महि मण्डल में
हाडाबंस वीर ने कृपान खोल राखी है।
ठोक भुज दंड पै प्रचण्ड सो जुझारसिंह
बूंदीपति राखी सो तुम्हारे हाथ राखी है।।[२]

भट्ट ब्राह्मण जाति में ही परिगणित होते हैं इसका निर्देश स्वयं कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :

वामन को जनमु जनेऊ मेलि जानि बूझि
जीभ ही बिगारिबे के याच्योजन जन में।
कहि कवि गंग कहा कीजै जो न जाने
जातु वाउ ग्यान देखो जु बुढ़ाई ध्यान धन में।[3]

कवि ने आत्मक्षोभ-वर्णन के साथ-साथ उक्त पंक्तियों में अपनी जाति का भी परिचय दे दिया है। संभवतः भट्टों की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ ब्राह्मणों के सदृश नहीं थी क्योंकि उनमें याचनावृत्ति की प्रधानता होती है। अपनी इसी हीन भावना के निवारणार्थ ही उन्हें, ब्राह्मण वर्ग के अन्तर्गत ही भट्ट परिगणित होते हैं, इसे दुहराने की बार-बार आवश्यकता हुई। इसके अतिरिक्त ब्रह्म-भट्टों में यह प्रख्यात है कि कवि गंग उन्हीं की जाति के कवि थे। ब्रह्म-भट्ट दर्पण नामक पुस्तक में संस्कृत और हिन्दी के अनेक

---

[१] हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५,
मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६।

[२] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३६२।

[3] वही, छंद संख्या २६१।

भट्ट कवियों का उल्लेख मिलता है। इसमें गंग को अकबरी-दरबार का प्रमुख कवि माना गया है। भट्ट ब्राह्मण होते हैं, इस कथन की पुष्टि अनेक विद्वानों ने भी की है। पूर्व उल्लिखित प्रथम विधाता ते प्रकट भए बंदीजन वाले छंद में भट्टों का ब्राह्मण होना सिद्ध है। इस प्रकार गंग का भट्ट-ब्राह्मण होना कई सूत्रों से सिद्ध होता है।

कवि गंग इकनौर गाँव, जिला इटावा के निवासी थे, इसका परिचय जहाँगीर के सम्बन्धी जैनखाँ के विरुद्ध कहे गए कवि के छंदों से भी मिलता जैनखाँ ने इकनौर के कुछ ब्राह्मणों को मरवा डाला था। गंग ने अपनी जन्मभूमि के प्रेम के वशीभूत होकर जैनखाँ की निन्दा कई छन्दों में की थी :

वाकरखाँ विरचि विदर्भ देस मार्यो
गंग दल खान मारे मीर कन्हरह गौर के।
दाही मीर मारि के हडिव देस पेस करी
खानदेस खोदे चित्र मन्दिर मरोर के।
पूरब पछांह मरदाने मानसिंह मारि
कासिमखाँ खोदे हैं मवास ठौर ठौर के।
केसोदास मारू मारि हरमहिमठ करी
जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के।।[1]

इससे स्पष्ट होता है कि गंग को इकनौर गाँव बहुत ही प्रिय था और ऐसा लगाव अपनी जन्मभूमि से ही हो सकता है। इनके दिल्ली-निवासी होने का कोई प्रमाण नहीं है। केवल शिवसिंह सेंगर ने इसका उल्लेख किया था और बाद में उन्होंने भी अपनी भूल स्वीकार करते हुए इन्हें इकनौर गाँव, जिला इटावा का ही माना है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। कवि की रचनाओं की ब्रज-भाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसका जन्म कहीं भी हुआ हो किन्तु ब्रज-प्रदेश में वह बहुत काल तक रहा था। अन्य इतिहासकारों ने भी गंग को इकनौर गाँव का निवासी लिखा है। उनकी ब्रज-भाषा के प्रयोग में कुछ कन्नौजी बोली के प्रयोग भी मिलते हैं जिससे इस

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३३७।

तथ्य की पुष्टि होती है कि वे कन्नौजी-प्रदेश जिला इटावा के निवासी थे। साथ ही इससे बीरबल और गंग की बालमैत्री का भी जो कवि के एक दोहे से स्पष्ट है,[1] समाधान हो जाता है क्योंकि बीरबल तिकवाँपुर निवासी थे जो कानपुर जिले में है और जहाँ से कवि गंग का इटावा जिले से संबंध होना असंभव नहीं कहा जा सकता। गंग ने यमुना-गंगा के प्रति प्रगाढ़ आस्था प्रकट की है। इटावा यमुना के किनारे बसा है और गंगा उसके समीप ही है इससे भी उनके जन्म-स्थान की पुष्टि होती है। इस संबंध में गंग कवित्त में कोई निश्चित स्थान का उल्लेख नहीं मिलता। अतएव पुष्ट प्रमाणों के अभाव में उपर्युक्त विवेचन के आधार पर उन्हें इकनौर गाँव, जिला इटावा का निवासी मानना ही उचित जान पड़ता है।

गंग कवित्त में कवि रचित जैनखाँ छंदों को अप्रामाणिक मानते हुए इकनौर गाँव, जिला इटावा स्थान का खंडन किया गया है, और घटना का इतिहास में तत्संबंधी उल्लेख न होना इसका कारण दिया गया है। इस संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सभी घटनाएँ इतिहास सम्मत नहीं होती। कवि की रचनाएँ ऐतिहासिक घटनाओं पर नया प्रकाश डालती हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने कवि गंग की जन्म-तिथि सम्वत् १५९५ दी है। शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म सम्वत् १५८५ लिया है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। बीरबल का जन्म सम्वत् १५८५ माना गया है। यह अवस्था गंग से दस वर्ष अधिक है। गंग और बीरबल की बाल-मैत्री का परिचय ऊपर आ चुका है। कृष्ण और सुदामा की मित्रता सहपाठी के रूप में हुई थी। इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि गंग और बीरबल भी सहपाठी रहे होंगे।[2] सहपाठी का केवल यही अर्थ नहीं होता कि दो समवयस्क मित्र एक ही कक्षा के विद्यार्थी हों। एक ही विद्यालय में भिन्न-भिन्न श्रेणी के विद्यार्थी भी इतने प्रगाढ़ मित्र बन जाते हैं कि कभी-कभी सकक्षता भी उस स्थिति तक नहीं पहुँच पाती। अतएव बीरबल का गंग की अपेक्षा बड़ी अवस्था का होना संभव है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर रहीम की प्रशंसा करते समय गंग ने खानखाना को नवल नवाब कहकर संबोधित किया है—'नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास,

---

[1]भए सुदामा कृष्ण हैं, गंग बीरबल फेर।
ता दिन में तंदुल हते यही दिनन में बेर॥

[2]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३७१।

भागे देसपति धुनि सुनत निसान की ।' खानखाना का जन्म संवत् १६१० में हुआ था । इस प्रकार गंग जिसे नवल नवाब कहते हैं वह उनसे लगभग १५ वर्ष छोटे ठहरते हैं । प्रौढ़ या वृद्ध लोग जब अपनी अवस्था से न्यून अवस्था वाले व्यक्ति को संबोधन करते हैं तब उनमें कनिष्ठतासूचक प्रिय शब्दों का प्रयोग देखा जाता है । उपर्युक्त 'नवल नवाब' में यही ध्वनि है । कवि के जीवन की अन्य घटनाओं की तिथियों का मिलान करने पर भी, संवत् १५६५ के लगभग ही कवि का जन्म मानना उचित जान पड़ता है ।

नाम :

कवि गंग के जीवन-चरित से संबंधित अन्य बातों पर विचार करने के पूर्व उनके नाम पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा । अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग के अतिरिक्त अनेक गंग नाम के कवि हिन्दी-साहित्य में हो चुके हैं । अतः इन सब कवियों के अलग-अलग व्यक्तित्व का निर्धारण कर लेना आवश्यक है । ये गंगाराम, गंगादत्त, गंगाधर नामों से मिलते हैं । 'गंग कवित्त' में नाम के संबंध में समान नामधारी अनेक परवर्ती कवियों का उल्लेख मिलता है ।

गंगाराम पुरोहित[1] जिनका रचना-काल सम्वत् १७४४ है, रीतिकाल के एक साधारण कवि थे । इनकी रचनाओं में गंग की छाप मिलती है । हिन्दी-इतिहास-ग्रन्थों में इनकी हरिभक्ति-प्रकाश, सभा-विलास आदि रचनाओं का उल्लेख आया है । एक गंगाराम तिवारी हैं । इन्होंने ईश्वर विषयक स्फुट रचनाएँ लिखीं । इनके एक 'बरवै बारह मारना' का उल्लेख मिलता है । 'खोज पत्रिका' में और भी कई कवि इसी नाम से मिलते हैं । एक गंगादास ने कृष्ण-मंगल लिखी । दूसरे गंगादास कायस्थ थे जिन्होंने 'सुमनघन' लिखा किन्तु ये सब प्रसिद्ध कवि गंग के बाद के हैं । गंगाधर नाम से भी कई कवि हुए । गंगाधर चौबे, गोवर्धन लीला के रचयिता गंगाधर, राज-योग भाषा के प्रणेता गंगाधर आदि प्रसिद्ध कवि गंग के परवर्ती हैं । लीला सागर के लेखक गंगादत्त भी भिन्न व्यक्ति हैं. दूसरे गंगाप्रसाद ब्राह्मण[2] नामक हिन्दी कवि सम्वत् १८६० में हुए और इनकी गणना रीतिकाल के

---

[1] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २ ।

[2] शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२, ४०३ ।

अच्छे कवियों में की जाती है। इन्होंने अपनी रचना 'दूती विलास' में अपना उपनाम गंग दिया है। उपर्युक्त गंग कवियों और प्रसिद्ध कवि गंग के रचना-काल में इतना अन्तर है कि एक दूसरे के साथ किसी का भ्रम संभव नहीं। इनमें से कुछ रचनाओं को पढ़ते समय अवश्य एक दूसरे का भ्रम हो सकता है किन्तु यह भ्रम क्षणिक ही है। अकबरी-दरबार के कवि गंग के छंदों में जैसा काव्यगत-चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य, भाषा-सौष्ठव वर्तमान है उनके प्रकाश में रीतिकालीन कवियों की रचनाओं की पृथकता स्पष्ट हो जाती है।

ब्रह्म-भट्ट-दर्पण नामक पुस्तक में जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, प्रसिद्ध कवि गंग का नाम गंगाधर[1] दिया गया है। इसी नाम के दो बुन्देलखंडी कवियों का भी परिचय मिलता है। शिवसिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित नाम गंगाप्रसाद ब्राह्मण का भी कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता है। सपौली निवासी गंगाप्रसाद ब्राह्मण नामक एक अन्य हिन्दी कवि का पता हिन्दी-इतिहास से चलता है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। इन विद्वानों ने गंग का नाम निर्धारित करते समय कोई प्रमाण नहीं दिया है। अतः विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में प्रसिद्ध कवि गंग को केवल 'गंग' नाम से पुकारा जाना ठीक जान पड़ता है। जब तक प्रामाणिक सूत्रों द्वारा इनका वास्तविक नाम ज्ञात न हो जाए तब तक गंगाराम, गंगाधर, गंगादत्त, गंगादास अथवा गंगाप्रसाद आदि नाम के बखेड़े में पड़कर उनके व्यक्तित्व पर भ्रम फैलाना उचित नहीं है।

जब गंग का नाम ही अनिश्चित है तो इनके पिता के नाम की जानकारी कैसे संभव है? 'कर्ण-पर्व' के रचयिता श्रीपति ने अपने पाँच भाइयों में गंग और पिता का नाम धर्मदास लिखा है। किन्तु इनकी स्थिति बहुत बाद की है। गंग की अवस्थिति ५० वर्ष पूर्व की सिद्ध होती है। अतः न तो श्रीपति उनके भाई थे और न धर्मदास उनके पिता। कवि गंग के जीवन का आरंभिक काल किस प्रकार बीता इस विषय में कुछ ज्ञात नहीं। इतना स्पष्ट है कि इनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी क्योंकि अपने मित्र बीरबल के पास बाल-मैत्री के विश्वास पर ही वे बेर के कुछ फल लेकर दरिद्रता विमोचनार्थ आए थे। गंग का यह दोहा जिसका निर्देश पहले हो चुका है इस बात की पुष्टि करता है:

---

[1] ब्रह्म-भट्ट-दर्पण, पृष्ठ १९।

भए सुदामा कृस्न हैं, गंग बीरबल फेर।
ता दिन में तंदुल हते, येही दिनन में वेर ॥

कवि ब्रह्म की जीवनी से स्पष्ट होता है कि संवत् १६२० के लगभग बीरबल अकबर के राज्याश्रय में थे और संवत् १६२६ तक अकबरी-दरबार में उनकी (बीरबल) अच्छी प्रतिष्ठा हो गई थी क्योंकि अगस्त, सन् १५६६ (संवत् १६२६) में ही राजा बीरबल ने कजली के वकील को अकबर से मिलाया था।[1] इसके पश्चात् ही गंग बीरबल से मिले होंगे। उक्त मित्रता से यही निष्कर्ष निकलता है कि बीरबल ही जो स्वयं कवि और साहित्यानुरागी थे, गंग को लेकर अकबर से मिले होंगे। उसी समय से गंग का अकबरी-दरबार में मान हो गया था। गंग की रचनाओं में उल्लिखित घटनाएँ संवत् १६३७ के पूर्व की नहीं मिलती। खानखाना की दक्षिण-विजय, दानियाल की दक्षिण-यात्रा, राजा मानसिंह का बंगाल, उड़ीसा का युद्ध आदि सब संवत् १६३७ के बाद की घटनाएँ हैं। अतः संभव है कि संवत् १६३५ के लगभग बीरबल की सहायता से गंग अकबरी-दरबार में प्रविष्ट हुए। कविता-प्रेमी अकबर समय-समय पर अपने दरबारी कवियों के सम्मुख समस्याएँ उपस्थित करता था और उन समस्याओं की पूर्ति में गंग का प्रधान भाग रहता था। गंग द्वारा कहे गए समस्यापूर्ति वाले अनेक छंदों से यह बात सिद्ध होती है।

कवि की दयनीय स्थिति :

कवि की उपर्युक्त स्थिति सदैव न रही। जीवन के उत्कर्षापकर्ष का भी उसे अनुभव हुआ था। कवि के दिए हुए कई छंदों से उसकी दुरवस्था और दयनीय स्थिति का पता चलता है। जहाँगीर के शासन में राजकीय विरोध के कारण उसे बुरे दिन देखने पड़े। इनके हितैषियों में कुछ की तो मृत्यु हो गई थी और कुछ अपने जीवन की अत्यधिक दयनीय स्थिति में पड़े हुए थे। कवि-हृदय तो था ही, उस समय उस पर जो कुछ भी बीता उसने उन्हें सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त कर देना अनुचित नहीं समझा। यह इन छंदों में वर्णित है :

एकु दिनु एसो जामे सिविका गजावि रहे
एकु दिनु ऐसो जामे सोयबो की सैसो।

---

[1]अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ ४६६।

एकु दिनु ऐसो जामे गिलम गलीचा लागे
एकु दिनु ऐसो जामेतामे को न पैसो ।।
एकु दिनु ऐसो जामे भूपन सो प्रीति होत
एकु दिनु ऐसो जामे दुस्मन को धैसो ।
कहे कवि गंग नर मन में विचार देखु
ग्राजु दिनु ऐसो जात काल्हि दिन कैसो ।।[1]

उपर्युक्त छन्द में कवि गंग ने ऐश्वर्य ग्रौर निर्धनता की विषमता का ग्रनुभूति-जन्य चित्रए किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि को किसी मानसिक कष्ट में एक एक दिन व्यतीत करना कठिन हो गया था। उसकी मानसिक दशा बहुत दुखदायी हो गई थी।

कवि गंग की दानशीलता का एक उदाहरए पहले दिया जा चुका है। संभव है उनकी उदार वृत्ति ही उनकी निर्धनता का विशेष कारए बन गई हो। दुर्दिन में कवि के याचकों को रिक्त-हस्त लौटना पड़ता था। याचक ही क्यों नाई, धोबी, मोदी ग्रादि को भी निराश होना पड़ा था। ग्रपनी इस विकट स्थिति का वेदनापूर्ण वर्णन कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :

नटवा लो नटै न टरै पुनि मोदी सु डांड़िन में बहु भाव भरै।
सजि गाजे बजाज ग्रवाज मृदंग लों वाँकिये तान गिनौरी लरै।
पट धोबी धरे ग्ररु नाई नेरै सु तमोलिन बोलिन बोल धरै।
कवि गंग के ग्रंगन मंगनहार दिना दस ते नित नृत्य करै ।।[2]

किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि कवि की स्थिति इसके बाद ठीक हो गई थी। उसने ग्रपने जीवन में उन्नति-ग्रवनति का कई बार ग्रनुभव किया था। इसी का वर्णन निम्नलिखित छंद में हुग्रा है :

कैयो बार इहि छिति छोटनि में छोट भयो
कई बार छिति में छतीसा पायो नाउं में।

[1]कविवर गंग : जीवन ग्रौर काव्य, छंद सं० ३०६।
[2]कविवर गंग : जीवन ग्रौर काव्य, छंद सं० ३१४।

कैयो बार देवलोक देवन में देव भयो
देखि देखि देह दुख दोखन डराउं में।
कहै कवि गंग काहू और के सरन गए
कछु न सरे ते तुव सरन समाउं में।
नाथ की सपथ तोहिं तीनि पथ गामिनी री
सुपथ लगाउं गंगे जैसे कुपथ न जाउं में ॥[1]

देह-दुख से स्पष्ट है कि कवि रोग-ग्रसित भी हुआ था, उसकी दशा बहुत बिगड़ गई थी और इस स्थिति में उसने ईश्वर का आश्रय लिया था।

कवि की वृद्धावस्था और मृत्यु :

गंग जहाँगीर के शासनकाल तक जीवित रहे इसका प्रमाण कवि की रचनाओं से मिल जाता है। एक छंद में गंग ने अपने जीवन के चौथेपन वृद्धावस्था का वर्णन किया है :

बामन को जनमु जनेऊ मेलि जानि बूझि
जीभ ही बिगारिवे को याच्यो जनजन में।
कहि कवि गंग कहा कीजै जो न जाने
जातु बाउ ग्यान देखो जु बुढ़ाई ध्यान धन में।
काम क्रोध मद लोभ मोह तिनही के बस
पर्यो तिहुं पुर नायक बिसार्यो तिहुंपन में।
कालिमा के चलत कलापति ज्यों चेत होति
केस आए सेतु ह्वै न कैसो आए मन में ॥[2]

एक पन के २५ वर्ष मानने से गंग की अवस्था इस समय ७५ वर्ष के लगभग थी क्योंकि वह जीवन के चौथेपन में प्रवेश कर चुके थे। बाल भी उनके श्वेत हो गए थे। गंग के अनेक छंद भी जो जहाँगीर के सम्बन्ध में कहे गए हैं इस बात के सूचक हैं कि कवि जहाँगीर के राज्यकाल तक रहा। जहांगीर संवत् १६६२ में सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने राज्य की सारी बागडोर संवत् १६६९ में नूरजहाँ के हाथों में दे दी थी। इस काल

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद सं० १७।
[2] कविवर गंग : जीवन और काव्य।

के राजकीय परिस्थिति संबंधी छंद भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। अतः इसमें संदेह नहीं कि इस समय तक कवि वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुका था।

कवि गंग की मृत्यु दैवी घटना प्रेरित न थी। यह शासक की कठोर कुभावना से उद्भूत थी। उनकी मृत्यु राजाज्ञा द्वारा घटित हुई। कवि से प्रभावित जनता की हृदय-धमनी विरुद्ध आन्दोलन के लिए हिल उठी होगी और संभव है गंग की चर्चा राज-विद्रोह समझी गई हो और कवि के ग्रंथों को भी फलस्वरूप नष्ट करा दिया गया हो। हिन्दू जनता कवि की गौरव-गरिमा की विस्मृति को अन्तःगुफा में भुलाने के लिए बाध्य हुई किन्तु परवर्ती कवियों की वाणी इस संबंध में मूक न बनी रही। उन्हीं कवियों की उक्तियों से यह प्रमाणित होता है कि गंग की मृत्यु राजाज्ञा द्वारा हाथी के प्रहार से हुई। उनकी मृत्यु संबंधी जो जनश्रुति चली आती है वह भी इसी पक्ष में है। प्रसिद्ध हिन्दी कवि देव ने अकबरी-दरबार से संबंधित तीन प्रसिद्ध कवि बीरबल, केशवदास तथा गंग की मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा है कि बादशाहों की सेवा में पीछे पछताना पड़ता है। तीनों ही बादशाह के कृपापात्र थे और तीनों ही की मृत्यु बुरी रीति से हुई :

केशव से गंग से प्रसिद्ध कविवर सेजे
कालहि गए न वृथा काल ही वितावही।
साहिन की सेवा सुख नाहिन विचारि
देखो लोभ की उमाहिन पै पीछे पछतावही॥

× × × ×

अकबर बीरवर वीर कविवर कैसो
गंग की सु कविताई गाई रस पाथी ने।
वरनि वरनि नारी नरनि धरनीपति
मोह लीने ताना ही ताथनंग ताथी ने।
विन भगवंत के भजन अंत विपत्ति पै
देवगति न पाई काऊ संपत्ति के साथी ने।
एक दल सहित विलाने एक पहाड़ी में
एक भए भूत एक मीज मारे हाथी ने॥[1]

[1] वैराग्य शतक, जगद्दर्शन पच्चीसी, पृष्ठ २।

किसी अज्ञात कवि के निम्नलिखित छंद में भी गंग की हाथी द्वारा मृत्यु का उल्लेख आया है :

सब देवन को दरबार जुर्यो तहं पिंगल छंद बनाय कै गायो।
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो।
मृतलोक में है नर एक गुनी कवि गंग को नाम सभा में बतायो।
सुनि चाह भई परमेसर को तब गंग को लेन गनेस पठायो ॥[१]

अतएव अब प्रश्न यह है कि किसी राजाज्ञा द्वारा इन्हें हाथी का शिकार बनना पड़ा अथवा संयोगवश किसी मतवाले हाथी की चपेट में ये आ गए। कवि द्वारा कथित छंदों से स्पष्ट होता है कि जहाँगीर का विरोध उसने कई बार किया था और अन्त में शासन का खोखलापन बताते हुए उन्हें मृत्यु की गोद में जाना पड़ा था। जहाँगीर की क्रूरता के कई उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में मिलते हैं। जहाँगीर निरपराध व्यक्तियों को भी प्राण-दंड दे डालने में संकोच नहीं करता था। वह अपने मनोरंजन के लिए मनुष्यों को हाथी और शेर से लड़वाया करता था और मनुष्य जब हिंसक जन्तुओं का शिकार बन जाता तब उसे एक अपूर्व आनंद मिलता था। तुजुक जहाँगीरी में इस प्रकार की घटनाओं के उल्लेख आए हैं। उस काल में प्राणदंड पाए हुए व्यक्तियों को मस्त हाथी के सम्मुख छोड़ दिया जाता था और हाथी उन्हें पकड़कर चीर डालता था। यह रीति केवल जहाँगीर के शासनकाल ही में न थी वरन् अधिकांश मुग़ल शासकों द्वारा मृत्युदंड का यही ढंग था।

कवि की रचनाओं से पता चलता है कि वह आरंभिक अवस्था में सलीम के अनुकूल था। उसने युवराज सलीम (जहाँगीर) तथा राज्य-सिंहासनस्थ जहाँगीर दोनों की प्रशंसा की है। अकबर के राजत्वकाल में ही कवि सलीम की ओर झुक गया था :

हाथी चाहे सालवन साँप चाहे माथे मनि
पानी को प्रवाह जैसे चाहै बेली पानकी।

[१]हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५।

संजोगिनी रैनि चाहे जोगी जैसे जोग चाहे
आतुरनायक चाहे जैसे नितमान की।
चंदहि चकोर चाहे पिक घनघोर चाहे
चकहू चकवा ज्यों चाहे भेंट भान की।
हंस चाहे मानसर मोर चाहे मेघ झर
गंग चाहे नजर सलेम सुलतान की।।[१]

अकबर की मृत्यु के पश्चात् सलीम जहाँगीर के नाम से सिहासनारूढ़ हुआ। इस समय कवि द्वारा जहाँगीर की प्रशंसा में कहे हुए छंदों से स्पष्ट होता है कि वह अपने जीवन का अन्तिम समय जहाँगीर की छत्रछाया में व्यतीत कर रहा था। बहुत काल तक जहाँगीर की दृष्टि कवि की ओर कृपापूर्ण रही थी इसका आभास कवि रचित जहाँगीर की प्रशंसा के छंदों से लग जाता है:

दलहि चलत हलहलत भूमि जल थल जिमि चल दल।
पल पल खल खल भलत विकल वाला कर कुल कल।
जिव पट्टहि ध्वनि युद्ध धुंधुं धुद्धुव धुद्धुव हुव।
अरर अरर कटि दरकि गिरत धस मसति धुकनि ध्रुव।
भनि गंग प्रबल मिह चलत दल जहाँगीर तुव भार तल।
फुंफुं फरिंद फुंकरत सहस गाल उगिलत ग॰ल।।[२]

उक्त छंद में जहाँगीर की सेना के आंतक का भी कवि ने वर्णन कर दिया है।

जहाँगीर संवत् १६६२ में सिंहासनारूढ़ हुआ था। उस समय गंग की अवस्था ६७ वर्ष की थी क्योंकि कवि के जन्म संवत् १५९५ का उल्लेख पहले हो चुका है। जहाँगीर अपने पिता के दरबारी कवि पर श्रद्धा की दृष्टि रखता था किन्तु यह अवस्था बहुत काल तक न रहीं। नूरजहाँ जहाँगीर की अधिष्ठात्री हुई और साथ ही राज्य की शासिका भी। जहाँगीर ने राज्य संचालन का सारा भार उसी पर छोड़ दिया था। इसके पश्चात्

---

[१]कविवर गंग: जीवन और काव्य, छंद सं० ४२२।

[२]वही, छंद सं० ४२४।

देश की राजकीय स्थिति बिगड़ने लगी। अयोग्य पुरुषों की दरबार में भरमार हुई और इस अराजकता के कारण लोग शासन से विमुख रहने लगे।

गंग की भी नूरजहाँ के प्रति कोई विशेष श्रद्धा ज्ञात नहीं होती क्योंकि नूरजहाँ की प्रशंसा में उसका रचा एक भी छन्द नहीं मिलता है। राज्य की साम्राज्ञी की प्रशंसा उसी के दरबार का कवि न करे यह एक प्रकार का अपराध ही था। किन्तु कवि के जीवन में दुःखमय समय तो तब आया जब जहाँगीर के एक संबंधी जैनखाँ[1] ने कवि गंग के इकनौर गाँव के जुनारदारों पर आक्रमण किया तथा क्रूर भाव से उनका विध्वंस किया। इस परिस्थिति ने कवि के हृदय में विप्लव की भावना उत्पन्न कर दी। बात उचित ही थी 'जननी जन्म भूमिश्च स्वार्गादपि गरीयसी।' कवि ने निर्भीकता से राज्य के इस क्रूर कार्य की कटु आलोचना की। उसने इस घटना का निम्नलिखित छंद द्वारा जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, विरोध किया :

बाकरखां बिरच विदर्भ देस मार्‌यो गंग
दलखान मारे मीर कन्हर गौर के।
दाही मीरमारि के अनेक देस पस्ति करि
खानदेस खोहै चित्र मन्दिर मरोर के।
पूरब पछाह बरदाने मानसिंह मारे
कातिमखाँ खोदे हैं मवास ठौर ठौर के।
केसोदास मारू मरि हरम कमठ करी
जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के।[2]

उक्त छंद में जैनखाँ के क्रूर कर्म की निन्दा के साथ ही समय-समय पर घटित अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए अत्याचारों का भी उल्लेख कर दिया

---

[1] ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि जैनखाँ नूरजहाँ का कोई भाई था। संभव है वह नूरजहाँ का कोई दूर के सम्बन्ध में भाई लगता हो जिसका इतिहास-ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता। इतिहास-ग्रंथों से पता चलता है कि जहाँगीर को उसके चाचा की लड़की व्याही थी। बाद में उसकी लड़की का विवाह भी सलीम से हो गया था। संभवतः इस निकट सम्बन्ध के कारण लोगों ने उसका सम्बन्ध नूरजहाँ से भी जोड़ दिया। —सं०]

[2] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छन्द संख्या ३७।

गया है। इस घटना की पुष्टि किसी अज्ञात कवि के निम्नांकित छंद से भ
होती है :

ठठा मार्‌यो खानखाना दच्छन अजीम कोका
ईसफखाँ मीर मारे कसमीर ठौर के।
साहि के हराम खोर मारे साह कुलीखान
कहाँ लौ गिनाऊँ उमराव और और के।
रूस्तम नवाब मारि बालघाट बार कियो
काजिल फिरंगी मारे टापनिसरोर के।
वास्ती को काम छह हजार असवार जोरे
जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के।।[1]

कासीराम रचित छंद में भी इस घटना का परिचय मिलता है :

सालीग्राम कंठ तुरसी की कंठी कंठ आवे
चारो वेद कंठ विरचैयाजग्य ठौर ठौर के
धासिन से दर्भ बाधे उतरे अगोछा कांधे
नैसक सिखाऊ राखे वैरी वार और के
बड़े व्रतधारी लीने हाथन में भारी चारु
कासीराम मंथन करैया अघ चौर के।
तप पहार जैहै पुण्य अवतार ऐसे
जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के।[2]

शिवसिंह सेंगर ने उक्त छन्द के कासीराम को गंग का पुत्र लिखा है किन्तु उन्होंने इसको मानने के लिए कोई निश्चित आधार नहीं दिया है।

नूरजहाँ का सगा भाई आसफखाँ था और उसे उसने राज्य के मंत्रीपद पर नियुक्त किया था। जैनखाँ संभवतः उसका सगा भाई न होकर जहाँगीर के संबंध से नूरजहाँ का भाई समझा जाने लगा था। इसी भ्रमवश उसका उल्लेख गंग के परवर्ती कवि कृपामणि ने यों किया है :

[1]याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त।
[2]शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२।

नूरजहाँ को भाई जैनखाँ जौन तिनकी
खटाई कवि गंग ने कही हती।
अजहुं लो जात चली बात वह जहाँ तहाँ
मुलक खजाना कहाँ उनकी कमी हती।
कृपामणि कहै श्रोण दे के सरदारों सुनों
कानि है नसीहत न कौन की गनी हती
याते भूलि वैर नहि कीजै कवि लोगन ते
कविन के वैर किए जुग लौं फजी हती।[1]

इस प्रकार स्वयं कवि के छंदों तथा अन्य परवर्ती कवियों की उक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनखाँ ने इकनौर के ब्राह्मणों को मरवाया था और कवि ने उस कृत्य की निन्दा खुले रूप में की थी। गंग के ये छंद जब जहाँगीर के कानों में पड़े तो उसके हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो उठी। फलस्वरूप दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग को जहाँगीर ने हाथी से कुचले जाने की आज्ञा दी। इसका उल्लेख 'दरबारे-अकबरी' में इस प्रकार आया है :

"जहाँगीर बादशाह एक दिन तीरंदाजी कर रहा था। किसी भाट की यावागोई पर खफ़ा होकर हुक्म दिया कि उसे हाथी के पाँव तले पामाल करे। खानखाना पास खड़ा था। फिरका मजबूर की हाजिर जवाबी उसकी जबान-दराजी से भी बढ़ी हुई होती है। उसने अर्ज की कि हुज़ूर! जरेवा चीज के लिए हाथी क्या करेगा। एक चुहे चिढे का पाँव भी बहुत है। हाथी का पाँव खानखाना के लिए चाहिए कि बड़ा आदमी है। जहाँगीर ने उसकी तरफ देखा कि इस लुफज ने दिल पर क्या असर किया। पूछा क्या कहते हो ? उन्होंने कहा कुछ नहीं। दारोगा से कहा—तू बता दे। खानखाना खुद बोले कि हुज़ूर के तसद्दुक से खुदा ने मुझ नाचीज को ऐसा किया कि यह बड़ा आदमी समझता है। मैंने उस वक्त शुक्रे-खुदा किया और कहा जब इसकी देगा खता माफ हो तो पाँच हजार रुपए दे देना, हुज़ूर के जानो माल की दुआ देगा।"[2]

---

[1] याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त।

[2] दरबारे-अकबरी, पृष्ठ ६५०।

खानखाना ने इस ढंग की पैरवी गंग भट्ट के लिए ही की होगी किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जहाँगीर ने अपनी क्रूर एवं निरंकुश प्रकृति के कारण खानखाना की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। प्रतीत होता है कि संवत् १६६७ वि० की दक्षिण पराजय के कारण खानखाना की प्रतिष्ठा दरबार में पहले की अपेक्षा कम हो गई थी।[१] जल्लादों ने वृद्ध कवि को मतवाले हाथियों के सामने खड़ा कर दिया। परन्तु मरते समय भी कवि ने अपनी स्पष्टवादिता और निर्भीकता का उदाहरण प्रस्तुत किया। निम्नोद्धृत दोहा कहते-कहते वह मृत्यु की गोद में चला गया :

कबहु न भडुआ रन चढ़ें कबहु न बाजी बंब।
सकल सभाहि प्रनाम कर बिदा होत कवि गंग॥[२]

निम्नलिखित छंद से भी कवि के जहाँगीर की आज्ञा द्वारा हाथी से मारे जाने की पुष्टि होती है :

शाह अकबर महाकवि नरहरि जी को
दीन्ह्यो महापात्र पद मरजात जाती में।
तापै चोर चोपदार चामीकर पग दीन्हो
पालकी में कंध केते पुर लिखि पाती में।
गंग कवि हेत घने तैसे गज ग्राम दीन्हे
आज लगि बान मान भोज अधिकाती में।
संग दिल शाह जहाँगीर से उमंग आज
देत है मतग पद सोई गंग छाती में॥[3]

एक और 'गुलाब' कवि की 'गंग ऐसे गुनी को गयंद सों चिराइये' पंक्ति द्वारा गंग का आज्ञा विशेष द्वारा हाथी से मारा जाना सिद्ध होता है।[४] कवि गंग की मृत्यु की घटना संबंधी उद्गारों को काव्य में व्यक्त करना कवि लोग अपना कर्तव्य समझने लगे थे। कवि गंग की मृत्यु की हृदय-विदारक घटना को किसी अज्ञात कवि ने इस छंद में दिया है :

---

[१]तुजुक-जहांगीरी, भाग १, पृष्ठ १७८।
[२]याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त।
[3]वही।
[४]हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४६।

कायर को खेत कहा कपटी सो हेत कहा
बिसवा विसास कहा कवलो पताइये ।
वारू वारी मीत कहा ओछन सो प्रीति कहा
रांगे को रुपैया कहा बारबार ताइये।
काठ तलवार घाटि कौन जंग जीत आयो
कागज को घोड़ा कहो कैसो दौरदोराइये ।[1]
कहै ये गुलाम के तिलाम तिनके जे साह
गंग कैसे गुनीन को गयंद पै तुराइये ।

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय जी ने जहाँगीर की अप्रसन्नता का कारण गंग रचित निम्नलिखित छंद दिया है :

कुपात्र की प्रीति कहा, खादि बिनु खेत जैसे,
प्रीति बिनु मित्र वाकू चित्तहू न आनिये ।
मति बिना मर्द और नूर बिन नारी कहा
अर्थ बिना कवि वाको पसु ज्यों प्रमानिये ।
तोपें विनु फौज कहाँ, हस्ती विन हौदा जैसे
द्रव्य बिन देवेदान देव कर मानिये ।
कहै कवि गंग सुनो साहिन के साहि सूरा,
आदमी को तोल एक बोल में पिछानिये ।[2]

कवि द्वारा यह निन्दा सम्राट और सम्राज्ञी दोनों को अरुचि कर प्रतीत हुई और जहाँगीर की आज्ञा से गंग को हाथी से कुचलवाया गया । इसकी पुष्टि में पाण्डेय जी ने निम्नलिखित रोला दिया है :

भाख्यो कछुक अजोग्य पाठि राज्ञि उर आयो ।
वेगम करि अति क्रोध तुरत गज तरे देवायो ।[3]

जहाँगीर का शासन युद्ध, विजय और पराजय की विशिष्ट घटनाओं से आक्रांत नहीं था । एक तो उसने थोड़े ही वर्ष राज्य किया और इसमें भी उसके शासनकाल में अधिक काल तक अराजकता ही रही । बिलासिता और

[1]याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त ।

[2]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३२७ ।

[3]तुलसी की जन्मभूमि, भूमिका पृष्ठ ७ ।

सुखलिप्सा का साम्राज्य था। अपनी बुद्धि से वह काम नहीं करता था। अतः उक्त छंद तथा कवि गंग का कथन 'कबहुँ न भडुआ रन चढ़ें कबहुँ न बाजी बंब' जहाँगीर के शासन के लिए कहा गया उचित जान पड़ता है। जहाँगीर की क्रूर प्रकृति, इकनौर का अत्याचार, गंग की स्पष्टवादिता और निर्भीकता को दृष्टि के सम्मुख रखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि जहाँगीर की नृशंसता ने ही गंग को हाथी द्वारा मृत्यु का शिकार बनाया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखक स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि कवि गंग किसी राजा अथवा नवाब की आज्ञा से हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाए गए।[1] कुछ अन्य हिन्दी इतिहासकारों ने इसका समर्थन किया है। 'गंग कवित्त' में किसी मुसलमान राजा द्वारा गंग के निम्नलिखित समस्या-पूर्ति संबंधी छंद पर उन्हें हाथी से मरवाए जाने का उल्लेख किया गया है :

> करि कै जु सिंगार अटारी चढ़ी, मनि लालन सों हियरा लहक्यो।
> सब अंग सुवास सुगंध लगाइकै वास कहूँ दिस को महक्यो।
> करते इक कंकन छूटि परयो, सिढ़िया सिढ़िया वहक्यो।
> कवि गंग भनै इक सब्द भयो, ठननं ठननं ठननं ठहक्यो ॥[2]

नवाब को संदेह हुआ कि कवि ने मुझे अपनी प्रिया के साथ देख लिया है और उसने उन्हें हाथी से मरवा दिया। विचार करने पर यह भली-भाँति विदित हो जाता है कि मुग़ल दरबार के एक श्रेष्ठ और सम्मानित कवि-रत्न के प्रति कोई साधारण राजा अथवा नवाब ऐसा क्रूर कृत्य करने का साहस ही कैसे कर सकता था। ऐसा करने पर उसे मुग़ल सम्राट् से प्रबल शत्रुता मोल लेनी पड़ती। फिर इस समय तक खानखाना जीवित थे। उनकी मृत्यु संवत् १६८२ में हुई। उनके सम्मुख उनके प्रिय कवि को कोई राजा या नवाब मरवा देता और वे चुप रह जाते, यह भी असम्भव था। अतएव गंग की मृत्यु जहाँगीर की क्रूरता का ही विषादपूर्ण परिणाम था और जिस क्रूरता ने लोगों के मुखों और इतिहासकारों की लेखनी को मौन कर दिया था। यह घटना खानखाना की मृत्यु के बहुत पहले संवत् १६६७ के लगभग ही घटी होगी। 'गंग कवित्त' में कवि गंग की मृत्यु संबंधी घटना पुष्ट प्रमाणों से युक्त नहीं है और न तर्क संगत ही है, अतएव अमान्य है।

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५।

[2] गंग कवित्त, भूमिका, पृष्ठ संख्या १०।

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद यह कहते हुए कि गंग राजाज्ञा द्वारा हाथ से नहीं कुचलवाए गए, उन्हें औरंगज़ेब के राज्यकाल तक ले गए हैं और इसकी पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित छप्पय दिया है :

तिमिर लंग लइ मोल चली छब्बर के हलके।
साह हिमाऊँ साथ गई फिरि सहर बलक्के।
अकबर करी अजाच भात जहाँगीर खवाए।
शाहजहाँ सुलतान पीठि को भार छुड़ाए।
उन छोड़ि दियो उद्यान बन भ्रमि फिरत है स्यार डर।
औरंगज़ेब बखसीस किय अब आई कवि गंग घर ॥[1]

इतिहासकार मिश्रबंधुओं ने तर्कपूर्वक इस छप्पय की प्रामाणिकता स्वीकार करते हुए अंतिम चरण का पाठ 'आई कविराज घर' देकर मुंशी जी का यह कथन गलत प्रमाणित किया है कि गंग औरंगज़ेब के काल तक जीवित थे।[2] लेखक को याज्ञिक-संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में यही पाठ 'कवि लाल घर' देखने को मिला। सुंदरदास कविराज शाहजहाँ और औरंगज़ेब के समकालीन थे तथा पं० सुखदेव मिश्र लाल कवि के नाम से प्रख्यात औरंगज़ेब के कृपापात्र थे। अतः इस आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंतिम चरण का पाठ 'कवि लाल घर' अथवा 'कविराज घर' ही होगा। इस प्रकार मुंशी देवीप्रसाद का गंग को राजाज्ञा द्वारा हाथी से न मारा जाना और औरंगज़ेब के समय तक ले जाने का प्रयास निष्फल सिद्ध होता है।

कवि गंग के कवित्तों में पुरोहित जी ने निम्नलिखित छंद भी दिया है :

शाह सो सलाम करि मार्‍यो है सलावत खान
नैक न सम्हार्‍यो बोल राख्यो ठोरठाकरो।
केते केते मीर मारे कैसे कैसे कंपू ठाढ़े
खेलत शिकार जैसे मृगन में बाघरो।

---

[1] मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७७।

[2] वही, पृष्ठ २७८।

कहै कवि गंग गजसिंह के अमरसिंह राखी
रजपूती ते नवल्ल नर नागरो।
पाव सेर लोह ते हिलाई सारी बादशाही
होती शमसेर तो छिनाय लेतो आगरो।[1]

राजा अमरसिंह सम्बन्धी उपर्युक्त छंद गंग को बादशाह शाहजहाँ के राज्यकाल तक ले जाता है, जोकि उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा ग़लत सिद्ध होता है। जहाँगीर के शासनकाल में ही गंग की मृत्यु हो गई थी। उक्त छंद भाषा, लय, प्रवाह आदि गुणों के आधार पर गंग की रचनाओं से मेल नहीं खाता। ऐसा ज्ञात होता है कि किसी कवि ने मुग़ल दरबार के प्रति शोधनार्थ यह कवित्त लिखकर उसमें गंग की छाप डाल दी है। प्रक्षिप्त अंश मिलाने वाले कवि प्रतिष्ठित कवियों की छाप डालकर ही छंदों को प्रचलित कर देते हैं।

बाबा बेणीमाधवदास कृत कथित 'मूलगुसाईं चरित' में यह दिया गया है कि कवि गंग ने तुलसीदास की भक्ति पद्धति की कटु आलोचना उनकी उपस्थिति में ही की, महात्मा तुलसीदास कुछ बोले नहीं किन्तु 'ऋषि के क्षमा शाप से भारी,' मार्ग में जाते समय एक हाथी ने बिगड़ कर गंग को अपनी सूँड़ से उठा लिया और फिर अपने पैरों से कुचलकर उनका काम तमाम कर दिया। अयोध्या से प्रकाशित 'मूलगुसाईं चरित' की निम्नलिखित पंक्तियों से इस कथन की पुष्टि की गई है :

गंग कहै हाथी कवन माला जपेउ सुजान,
कठ मलिया वंचक भगत कहि सो गयो सिसान।
छमा किए नहिं साप दिय रंगे सान्ति रस रंग
मारग में हाथी कियो झपटि गंग तनभंग।[2]

किसी अन्य कवि ने इस कथन का उल्लेख नहीं किया है। विशिष्ट महात्माओं के सम्बन्ध में ऐसी जनश्रुतियाँ प्रायः प्रचलित हो ही जाती हैं।

[1] महाकवि गंग के कवित्त, छंद संख्या १८७।
[2] मूलगुसाईं चरित, पृष्ठ ३३।

फिर 'मूलगुसाइँ चरित' की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। डा० धीरेन्द्र वर्मा, पं० रामचन्द्र, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने अपनी खोजों से इसको एक अप्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध किया है।[1] इसलिए गंग का मृत्यु संबंधी कथन भी अप्रामाणिक ही है, दूसरे, जैसे ऊपर कहा गया है कि अन्य किसी समकालीन अथवा परवर्ती कवि ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है जिस पर पहले विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत ही किया जा चुका है।

कवि गंग की धार्मिक भावना :

कवि गंग की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वह कृष्णोपासक कवि थे। उनके कई छंद इसकी पुष्टि करते हैं। कवि ने राम और कृष्ण दोनों की महिमा का गुणगान किया है किन्तु उनकी उपलब्ध रचनाओं में कृष्णभक्ति का ही विस्तार पाया जाता । कवि का भक्तिगत विह्वलता निम्नलिखित छंद में दृष्टव्य है :

जो कहो मोहन जू मथुरा में तो मन्दिर में मढ़ई इक छाऊं।
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचो अरु गाऊं।
स्वांग अनेक करो कवि गंग जू कैसुहु कान्ह तिहारो कहाऊं।
काल गहे कर डोलत मोहि कछू इक बेर खुसी कर पाऊं।।[2]

कृष्ण की बाल-क्रीड़ा, राधा कृष्ण केलि-कमनीयता, उनकी रूप-माधुरी, यमुना महिमा आदि के वर्णन कवि की कृष्ण-भक्ति के परिचायक हैं। गंग के परम हितैषी राजा बीरबल भी कृष्णाश्रयी शाखा के भक्त थे। बीरबल की इस धार्मिक विचारधारा का प्रभाव संभव है गंग पर भी पड़ा होगा किन्तु यह निश्चय नहीं होता कि वे कृष्ण-भक्ति संबंधी किस मत के पोषक थे। संभव है बल्लभ-संप्रदाय से उनका कोई संबंधी रहा हो क्योंकि उनके मित्र बीरबल का उसमे पूरा संपर्क था ही और कृष्ण-भक्ति संप्रदायों में उस काल में बल्लभमत ही प्रधान था।

---

[1] अष्टछाप और बल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ १६२।

[2] कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छंद संख्या १२।

कविवर गंग और तद्युगीन प्रतिष्ठित व्यक्ति :

अकबरी-दरबार में प्रविष्ट होने पर कवि गंग दरबार के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क में स्वाभावतः आए। अकबर, रहीम, बीरबल, मानसिंह, टोडरमल, दानियाल, जहाँगीर (सलीम) की प्रशंसा संबंधी छंद अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। उनके द्वारा गंग को यथेष्ट सम्मान भी प्राप्त हुआ। दरबार के अन्य धनीमानी व्यक्तियों से भी गंग का संपर्क था जिनकी प्रशंसा संबंधी स्फुट छंद मिलते हैं। इनमें राजा रामदास, राजा जगन्नाथ, राजा रामचन्द्र बघेला, दूरावखाँ, तुराबखाँ, कीर्तिसिंह, मंगदराय, प्रतापशाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गंग ने सबसे अधिक प्रशस्ति-गान रहीम खानखाना का ही किया, संभवतः कवि को उन्हीं में अनेक गुणों का सामंजस्य दिखाई पड़ा। खानखाना की गुणग्राहकता भी सबसे अधिक बढ़-चढ़कर थी। सम्राट् अकबर तो अपने समय का युग-पुरुष ही था और उसने अपनी सहिष्णुता, सदाशयता का जैसा परिचय दिया था वैसा उसके पूर्व के किसी बादशाह ने नहीं दिया। गंग ने अकबर की वीरता और उसके आतंक का सुष्ठु वर्णन, निम्नलिखित छंद में किया है :

सिंह, बाघ, देव, दानौ, दैयत दुहाई मानै,
थापै थिर थानै रतनायर कै रेत हैं।
गंग कहै जहाँ लगि दिनकर दीने कर,
तहांऊ के जोरि कर जोरि कर देत हैं।
लीवे ते न बची कहूँ बिलाइति बसुधा में,
हाथ आए गाढ़े गढ़ गिरिन समेत हैं।
सातौ दीप बस किए अकबर साहि अब,
सपनेहूँ आपनोई लिए देस लेत है ॥[1]

रहीम के गुणों की प्रशंसा गंग ने मुक्त कंठ से की है। निम्नलिखित छप्पय में कवि ने खानखाना की वीरता एवं क्रोध का प्रभावपूर्ण वर्णन किया जिस पर रीझकर कहा जाता है कि रहीम ने उन्हें ३६ लाख रुपए का पारितोषिक दिया :

---

[1]कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छंद संख्या ४२१।

चकित भंवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल-वन ।
अहि फनिमनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन ।
हस मानसर तक्यो, चक्क-चक्की न मिले अति ।
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहैं न करै रति ।
खल भलित सेस कवि गंग भनि, अमित तेज रविरथ खस्यो ।
खानखाना बैरम सुवन, जि दिन कोप करि तंग कस्यो ।।[1]

उक्त पारितोषिक का विवरण गंग के परवर्ती कवि खूबचन्द के निम्नलिखित छंद में प्राप्त होता है :

मान दस लाख दियो दोहा हरिनाथ के पै
हरिनाथ कोटि दै कलंक कवि कैहे को ।
बीरवर दै षट कोटि केशव कवित्तन में
शिवराज हाथी दियोभूषन ते पैहै को ।
छप्पै पै छत्तीस लाख गंगै खानखाना दियो
याते दीनह्वै दूनो दान ईदर में ऐहौको ।
राजा श्री गंभीरसिंह छंद खूबचंद के मैं
बिदामें दगा दईन दीन कोउपैहै कौ ।।[2]

शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि उक्त छप्पय पर राजा बीरवल ने भी गंग को एक लाख का पारितोषिक दिया था ।[3] किन्तु गंग को खानखाना द्वारा ३६ लाख रुपए का पुरस्कार ३६ लाख दाम मानना अधिक प्रतीतिपूर्ण जान पड़ता है । खूबचंद के उक्त छंद में भी सिक्के का कोई उल्लेख नहीं है । चालीस दाम का मूल्य चाँदी के एक रुपए के बराबर था और साधारण व्यवहार में दाम का प्रचलन ही अधिक था ।[4] बीरबल के एक लाख रुपयों के स्थान पर भी दाम मानना अधिक उचित होगा । अकबर ने रहीम को दक्षिण-विजय के लिए दो बार भेजा और दोनों बार रहीम ने वहाँ अपनी राजनीतिक कुशलता, बुद्धि-चातुरी और वीरता की धाक जमा दी ।

---

[1] कविवर गंग : जीवनी और काव्य ।
[2] शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ५३ ।
[3] वही, पृष्ठ ४०२ ।
[4] अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ ३८८ ।

जिस ओर भी वे चढ़ाई करते, उसी ओर उनका आतंक छा जाता था :

धमक निसान सुनि, धमक तुरान चित्त,
चमक किरान मुल्तान थहराना जू।
मारू मरदान कामरू के कर बान आनि,
मेवार के रान हिंदुवान आन माना जू।
पूरब भगान पच्छमाध पलटान उत्तराध,
गुजरात देस दच्छिन दवाना जू।
अरेबान, हवसान, हेट्टलान, रूम, साम,
खैल भैल खुरासान चढ़े खानखाना जू ॥[1]

निम्नलिखित कवित्त में ख़ानख़ाना की धन-संपन्नता, दानशीलता, रूप-सौंदर्य, गुणग्राहकता आदि अनेक विशेषताओं का एक साथ वर्णन मिलता है :

साहिबी की हद्द तू ही, साहिब सुमति तू ही,
साह को सुहेलो तू ही सपति का धाम है।
तू ही दान, तू ही जान, बलवीर खान तू ही,
तू ही ललनान उर लागत ललाम है।
कहै कवि गंग तैं अकेलो जान्यो खानखाना,
ऐसे खाए खरचे खजाने खोले काम है।
नवौ निधि नौ रसन निरखि निवाजे तातें,
नवल नवाव तेरो नौंऊं खंड नाम है ॥[2]

दानी हो तो ख़ानख़ाना जैसा, देखिए :

सीखे कहा नवाव जू ऐसी देनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचे करौं, त्यों-त्यों नीचे नैन ॥[3]

वीरवल और गंग की प्रगाढ़ मैत्री का उल्लेख पहले हो चुका है।

---

[1]कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छंद संख्या ४०२।

[2]वही, छंद संख्या ३६३।

[3]वही, छंद संख्या ३९१।

बीरबल ने ही गंग को अकबरी-दरबार में प्रवेश कराया था। कृतज्ञता-स्वरूप गंग ने उनका प्रशस्ति-गान अनेक छंदों में किया। उनका सुयश गाथा संबंधी निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है :

आवत हुतौ हौं सिव-सैल तें गिरीस जाँचे,
मिल्यो हुतो मोहि जहाँ सागर सगर को।
कविन की रसना की पालकी मैं बैठी देख्यो,
साथ सोहै रावरो प्रताप तेज कर को।
कवि गंग पूछयो तुम को हौ कित जैहौं, तब,
हमसों संदेशो उते बड़े थर को।
जस मेरो नाम, मोंहि दसो दिसि काम, मेरो,
कहियो प्रनाम, हौं गुलाम बीरबर को॥[1]

उक्त छंद में कवि ने कीर्ति गान के लिए संवाद-शैली का अवलंबन किया है। इसमें यशगान कथा के रूप में किया गया है। बीरबल का यश हिमालय से लेकर बंगाल तक फैला हुआ है और कवि लोग बराबर उसका गान करते रहते हैं। यश भी उनका दास है।

राजा बीरबल की 'मजलिस' का भी भव्य वर्णन कवि ने किया है :

मालती, सकुंतला सी, को है कामकंदला सी,
हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरै।
ऐल फैल फिरत खवास खास आसपास,
चोबन की चहल, गुलावन की गागरै।
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा बीरबर,
गंग कहै गूंगी ह्वैकै रही गिरा भागरै।
महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर,
गोरा रह्यो गोर ना अगर रह्यो आगरै॥[2]

राजा मानसिंह से गंग का घनिष्ट संपर्क था। उन्होंने कवि का यथेष्ट सम्मान भी किया था। कहा जाता है कि एक समय कोई याचक

---

[1]कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छंद संख्या ३७७।

[2]वही, छंद संख्या ३७८।

गंग के सम्मुख आ उपस्थित हुआ और अपनी पुत्री के विवाह के हेतु धन याचना की। कवि गंग के पास संभवत: उस समय धनाभाव था इसलिए उन्होंने तत्काल एक हजार की हुंडी राजा मानसिंह के नाम लिखकर उसको दे दी।

सिद्ध सिरी मानसिंह जी की कल कीरति,
विसद भई, राज रहौ जौ लौं तिरवेनी है।
रावरी कुसल हमसिसुन समेत चाहैं,
घरी घरी पल पल यहाँ हूँ सुचैनी है।
हुंडी एक तुम पै करी है हजार की, सो,
कविन को राखौ मान साह जोग देनी है।
पुहुमी प्रमान भानुवंस में सपूत मान,
रोक गिनि देने जस लेखे लिख देनी है।।[1]

याचक हुंडी लेकर राजा मानसिंह के पास गया और रुपए लेकर प्रसन्नमन होकर अपने घर चला गया किन्तु मानसिंह को कवि की इस अकिंचन सेवा से तृप्ति नहीं हुई क्योंकि गंग पर उनकी प्रवल श्रद्धा थी। उन्होंने प्रत्युत्तर में कवि को निम्नलिखित दोहा लिख कर भेज दिया :

इतमें हम महाराज हैं, उते आप कविराज।
हुंडी लिखत हजार की लिखत न आई लाज।।[2]

गंग ने राजा मानसिंह की गुणग्राहकता पर रीझकर उनकी वीरता संबंधी अनेक छंदों का गान किया। निम्नलिखित छंद में कवि ने बीभत्स भाव का निवारण करते हुए राजा मानसिंह के भय और आतंक का प्रभावशाली वर्णन किया है :

झुकन कृपान मयदान ज्यों उदोत भान
एकन ते एक मनों सुखमा जरद की।
कहै कवि गंग तेरे बलकी बयार लगे
फूटो गजघटा घनघटा ज्यों सरद की।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३८०।
[2]याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त।

एते मान सोनित की नदिया उमड़ि चली
रही न निसानी कहूं महि में गरद की।
गौरी गह्यो गनपति गनपति गह्यो गौरी
गौरीपति गह्यो पूछलपकि वरद की ।।[1]

युद्ध-भूमि में रुधिर की नदियाँ बहने लगती हैं। पार्वती शिव को, शिव नांदी की पूँछ पकड़ कर बहने से बच जाते हैं। उसमें भय के संचार से जुगुप्साभाव दब गया है।

दानियाल अकबर का तीसरा पुत्र और खानखाना का दामाद था। २२ वर्ष की अवस्था में ही अकबर ने उसे दक्षिण का सेनापति बनाकर भेजा था। ५ वर्ष के बाद बादशाह ने उसे दुबारा दक्षिण भेजा। दानियाल ने अहमदनगर, खानदेश पर विजय प्राप्त की। कवि गंग ने दानियाल के इसी अभियान का उल्लेख निम्नलिखित छंद में किया है जिसमें उसकी शुभ्र वीरता और वैरी स्त्रियों के भय का सुन्दर वर्णन हुआ है :

अकबरसाहि जू के महावली दानसाहि,
काहू पर तेग बाँधी तेज भौहैं तक्कवै।
सिंघल के दीप कहूँ दोष न लगत गंग,
दहै रिपु घर ही प्रताप ही के अक्कवै।
सोने सों सदन छाँडि लोने से बदन गौरी,
राव की मंदोदरी बन बन बक्कवै।
दक्खिन की ओर तेरे चादर की चाह सुनि,
चाहि भाजी चांदबीबी चौंकि भाजै चक्कवै ।।[2]

संभवत: खानखाना का संबंधी होने के कारण दानियाल की ओर गंग विशेष आकृष्ट थे और उसकी वीरता एवं सहृदयता संबंधी गुणों का अनेक छंदो में गान किया है। रामदास कछवाहै प्रारंभ में राजा टोडरमल के दीवान थे। अकबर की मृत्यु पर इन्होंने जहाँगीर का साथ दिया। अत: संवत् १६६८ वि० में इन्हें राजा की पदवी मिली। कवियों ने उनकी दान-

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३८९।
[2]वही, छंद संख्या ४३२।

शीलता से प्रेरित होकर उन्हें कर्ण की उपाधि से विभूषित किया है। कवि गंग ने भी उनके इसी गुण का निम्नलिखित छंद में उल्लेख किया है :

करन के खलकढ़ा, दधीच के हड़वेचा,
बलि के छलैया बीर माँगने कहाए हैं।
कहि कवि गंग जाके द्वार जैये मांगन कों,
सूधो कहै राम ! मेरे द्वार कहा आए हैं।
जगत विदित जगदेव ही की बातैं सुनि,
कुजस किवार कुल्लि कायरनि लाए हैं।
कूरम कुलीन कुल उदाग्रोत रामदास,
कौन गुन गुनी धौं तिहारे मन भाए हैं।।[1]

राजा जगन्नाथ कछवाहे आमेर के राजा और अकबर के विश्वासपात्र थे। उन्होंने अकबर और जहांगीर के आदेश से कई युद्धों में भाग लिया था। गंग ने उनकी वीरता का स्वाभाविक वर्णन निम्नलिखित छंद में किया है :

आमेर अवनिपाल भानुसुव जगन्नाथ,
कूरम रूहेलनि कों घाँस तेरे पनि की।
कीनो कोप कराकरि होत तहाँ सरासरि,
भराभरि बीती जहाँ पहिले गयनि की।
जीरनि जराइ जेर गिरिन गिराइ गंग,
करिन चढ़ाई तन कारिख तपनि की।
बरछी के बर अकबर के हुकुम वर,
तर तोरी जर सब ईसफ जयनि की।।[2]

अकबर के पुत्र सलीम और उत्तराधिकारी जहाँगीर की वीरता की प्रशंसा भी कवि गंग ने स्फुट छंदों में की है। निम्नलिखित छंद में कवि ने सलीम के कृपाकोर की याचना की है :

हाथी चाहै साल बन, साँप चाहै माथै मनि,
पानी को प्रवाह जैसे चाहै बेली पान की।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३५८।
[2]वही, छंद संख्या ३६६।

संजोगिनि रैनि चाहै, जोगी जैसे जोग चाहै,
आतुर नायक जैसे चाहै मिति मान की।
चंदहि चकोर चाहै, पिक घनघोर चाहै,
चकई चकवा ज्यों चाहै भेट भान की।
हंस चाहै मानसर, मोर चाहै मेघ-झर,
गंग चाहै नजर सलेम सुलतान की।।[१]

कवि गंग रचित जहाँगीर की प्रशंसा के छंद अत्यल्प ही मिलते हैं। इसका कारण-निर्देश कवि की जीवनी के प्रसंग में किया जा चुका है।

खानखाना के पुत्र एलिच बहादुर, दराबखाँ, तुराबखाँ की वीरता भी इतिहास-प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने पिता के सदृश ही भयंकर युद्धों में भाग लिया था और अपनी अतुलित वीरता और अदम्य उत्साह का परिचय दिया था। दुराबखाँ के गुणों की प्रशंसा कवि गंग के निम्नलिखित छंद में द्रष्टव्य है :

कस्यप के तरनि, तरनि के कत्न जैसे,
उदधि के इंदु जैसे भये यों जिजाना के।
दसरथ के राम, औ स्याम के समर जैसे,
ईस के गनेस औ कमलपत्र आना के।
सिंधु के ज्यों सुरतरु, पौन के ज्यों हनुमान,
चंद के ज्यों बुध, अनिरुद्ध सिंह बाना के।
तैसेई सपूत खान, बैरम के खानखाना,
वैसई दाराव खाँ सपूत खानखाना के।।[२]

कवि गंग ने एक छंद में रीवा नरेश राजा रामचंद्र बघेला की दान-शीलता की भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है :

मद्दनु विहद्द नद्द विध्य से उलहत है,
कहै कवि गंग ऐसे रोके रथ भान के।

---

[१]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४२२।
[२]वही, छंद संख्या ४१३।

जोरावर जैतवार जग-मनरंजन हैं,
अंजन से कारे मारे गंजन गुमान के।
तुंडनि पसारि कै पियूष-कुंड पान करैं,
सुंडनि सों पेलत महल मघवान के।
दैउत अमंद अति, मंदर से मंदगति,
ऐसै गजराज रामचंद जू के दान के ।।[१]

उपर्युक्त प्रतिष्ठित व्यक्तियों के अतिरिक्त जैसा कि पहले कहा गया है, कवि गंग ने कतिपय अन्य प्रसिद्ध पुरुषों जैसे मंगदराम, मधुसिंह, कीर्तिसिंह, मुकुटमणि, जुझारसिंह, प्रतापसाहि, वदरजहाँ आदि की प्रशंसा स्फुट छंदों में की है। कवि के इस प्रशस्ति गान में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का निर्वाह भी हो गया है। इनसे कुछ नए ऐतिहासिक तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है।

---

[१]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३६०।

कविवर गंग की रचनाएँ

नागरी प्रचारिणी सभा, त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्ट (सन् १९३२-३४) में गंग-रचित तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है— (१) गंग-पदावली, (२) गंग पच्चीसी, (३) गंग रत्नावली। 'गंग-पदावली' के कुल २२ पन्ने प्राप्त हुए हैं और यह एक संग्रह-ग्रंथ है जिसमें अन्य कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। गंग के नाम पर इसका नाम रख दिया गया है। 'गंग पच्चीसी' में केवल २५ छंद हैं। इसमें गंग की छाप आरंभ के एक छंद में मिलती है। इसमें राधाकृष्ण का संवाद दिया गया है। यह कोई अन्य गंग कवि शैव जान पड़ता है। प्रसिद्ध कवि गंग की काव्य-शैली का इसमें अभाव है। 'गंग रत्नावली' में १,४०० अनुष्टुप छंद हैं।[1] इसका संग्रह पं० मयाशंकर याज्ञिक और डा० भवानीशंकर याज्ञिक द्वारा तैयार किया गया है। डा० भवानीशंकर याज्ञिक के परामर्श से खोजकर्ताओं ने इसका नाम 'रत्नावली' रख दिया था। इसमें अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों से अकारादि क्रम में छंद संग्रहीत किए गए जिसमें कांकरौली और नाथद्वारे की प्रतियों के छंद भी सम्मिलित हैं। कविवर गंग का अभी तक यही सबसे बड़ा संग्रह उपलब्ध था।

पहले कहा गया है कि याज्ञिक जी के पास गंग के १,४०० अनुष्टुप छंद हैं। इसमें अधिकांश छंद तो उन्हीं की प्रीतियों के हैं और शेष कांकरौली तथा कामवन की हस्तलिखित प्रतियों तथा अन्य प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों द्वारा प्राप्त किए गए हैं जिनमें सुन्दरी-तिलक, नवीन-संग्रह, मनोज-मंजरी, शृङ्गार-संग्रह, हफ़ीजुल्लाखाँ का हजारा, साहित्य-रत्नाकर, कविता-कौमुदी षटऋतु-हजारा, काव्य-संग्रह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

'महाकवि श्री गंग के कवित्त' नाम से पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी० ए०, विद्याभूषण तथा मुंशी कन्हैयालाल माथुर, जयपुर ने गंग के छंदों का एक संग्रह सन् १९४४ ई० में प्रकाशित किया। इसमें गंग के २७३ छंद दिए हुए हैं। ४० छंद इसमें ऐसे हैं जो याज्ञिक जी द्वारा तैयार किए गए

[1] अनुष्टुप छंद—लिपिकार ने गंग के छंदों का नाम यह रख दिया है। वस्तुत: गंग की कविता कवित्त, सवैया आदि छंदों में ही उपलब्ध होती है।—सं०]

पूर्व संग्रह-ग्रंथ में नहीं मिलते। ये नवीन छंद हैं। अतः गंग के उपर्युक्त ३५० छंदों को लेकर कवि गंग के छंदों की संख्या ४०० के लगभग पहुँचती है।

'ब्रह्म-भट्ट-दर्पण' ग्रंथ में जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, गंग कृत 'गंग-विनोद' पुस्तक का परिचय मिलता है।[1] संभव है इसमें गंग के कुछ छंदों का संग्रह हो। हिन्दी खोज की तृतीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में चतुर्भुज सहाय वर्मा (बनारस) ने गंग कृत 'खानखाना कवित्त' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। इसमें गंग के ४२ अनुष्टुप श्लोक बताए गए हैं जो लगभग १० कवित्त अथवा १४ सवैये की संख्या है। गंग के अनेक छंद खानखाना की प्रशंसा में लिखे हुए लेखक को उक्त संग्रह ग्रंथों में मिले हैं। इनकी संख्या २५ है। अतः 'खानखाना कवित्त' कवि का लिखा हुआ कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मानना चाहिए। ज्ञात होता है कि खानखाना की प्रशंसा के छंदों का संग्रह कर यह एक कल्पित नाम दे दिया गया है। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय द्वारा गासाँ दतासी के अनूदित 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में गंग रचित काव्यशास्त्र संबंधी रचना का उल्लेख मिलता है। इसी वर्ष 'गंग-कवित्त' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने गंग की रचनाओं का संग्रह प्रकाशित किया है। इसमें गंग के ४४० छंदों का संग्रह है। परिशिष्ट में ३६ संदिग्ध छंद दिए गए हैं।

'चंद छंद वरनन की महिमा' खड़ी बोली कथित गद्य-ग्रंथ के लेखक भी अभी तक प्रसिद्ध कवि गंग भट्ट ही माने जाते रहे हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' नामक ग्रंथ में 'गंगा भाट' कृत 'चंद छंद वरनन की महिमा' नामक पुस्तक का परिचय दिया गया है।[2] त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (१९०९-१०-११) में उक्त ग्रंथ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति का वर्णन मिलता है। ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १६२७ और लिपि-काल संवत् १६२९ है।[3] इसी ग्रंथ की पांडुलिपि की एक प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइ-

[1] ब्रह्म-भट्ट-दर्पण, नरसिंहदास, पृष्ठ १९।

[2] हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२।

[3] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०९-१०-११ पृष्ठ १४६, १४७।

ब्रेरी कलकत्ता में सुरक्षित है । इसमें पांडुलिपिकार अथवा लिपिकाल का परिचय नहीं मिलता। प्रसिद्ध साहित्य समालोचक मिश्रबन्धुओं तथा स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल ने भी इस ग्रंथ को प्रसिद्ध कवि गंग रचित माना था। अतः इसे प्रसिद्ध कवि का लिखा हुआ ही ग्रंथ अन्य लेखक एवं इतिहासकार मानते आए हैं। अतएव यशस्वी इतिहासकारों की मान्यता के अनुसार ही 'अकबरी-दरबार के हिन्दी कवि' में प्रस्तुत ग्रंथ को गंग रचित ही मान लिया गया था क्योंकि उस समय ग्रंथ उपलब्ध न हो सका था। इसी वर्ष प्रकाशित 'गंग कवित्त' में इस संपूर्ण ग्रंथ की फोटो-प्रति दे दी गई है और ग्रंथ की प्रामाणिकता के संबंध में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ में सन्निविष्ट विविध कथाओं एवं ऐतिहासिक तथ्यों की अप्रामाणिकता स्पष्ट करते हुए उसे जाली सिद्ध किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि उक्त ग्रंथ में इसकी अप्रामाणिकता संबंधी प्रायः सभी तर्क युक्तिसंगत और समीचीन जान पड़ते हैं। संपूर्ण ग्रंथ में अनेक अविश्वसनीय और अनैतिहासिक घटनाओं के वर्णन मिलते हैं। तथाकथित ग्रंथ का पाठ गंग ने अकबर के समक्ष सं० १६२६ में किया और यह एक वर्ष तक चला। इस समय लखनऊ, हैदराबाद, रामपुर, भोपाल आदि के नवाबों, दक्षिण भारत में हैदराबाद, कर्नाटक, जामनगर आदि के राजाओं की उपस्थिति चिंत्य है क्योंकि अकबर का तब तक उक्त स्थानों पर आधिपत्य नहीं हुआ था। इसी प्रकार जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि राजस्थानी रियासतें सं० १६२७ के बाद अकबर के अधीन हुईं। उनके शासक ग्रंथ-पाठ के समय कैसे उपस्थित होते। बघेल नरेश रामचंद्र भी सं० १६२६ में अकबरी-दरबार में उपस्थित नहीं थे क्योंकि उसी समय अकबर द्वारा कालिंजर का किला जीता गया जो उनके राज्य में था। इससे स्पष्ट है कि मुग़ल शासक से उनके संबंध अच्छे नहीं थे। मानसिंह को राजा की उपाधि से संबोधित किया गया है जबकि उन्हें यह उपाधि सं० १६४६ में प्राप्त हुई।

ग्रंथ-पाठ के पूर्व गंग ने सब दरबारियों के अस्त्र-शस्त्र अलग करा दिए और जब वह दरबार में स्वयं उपस्थित हुए तो सम्राट अकबर ने भी सब दरबारियों सहित उठकर उनको सलाम किया तथा उसका पाठ दिन-रात पूरे एक वर्ष तक अनवरत चलता रहा, न एक दिन कम और न एक दिन अधिक आदि अविश्वसनीय बातें हैं। 'पृथ्वीराजरासो' में उनहत्तर समय मिलते हैं जब कि गंग द्वारा अकबर के समक्ष तिहत्तर समयों का पाठ

किया गया। महाराज पृथ्वीराज और चंद की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज का पुत्र रयणसी सिंहासन पर बैठा और तदनंतर उसका गौरीवंश से युद्ध हुआ। गंग ने इस वंश को भी चंद रचित यह कह कर स्पष्ट किया कि चंद को भगवती सिद्ध थीं और उसने पहले से ही भविष्य की बात जान ली थी। इस संबंध में अकबर ने शंका भी की किन्तु गंग उसकी शंका का कोई समुचित उत्तर न दे सके, जब कि इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि अपने पुत्र जल्हण को रासो पूर्ण करने का आदेश देकर चंद गजनी गए थे। रासों की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए अनेक राजाओं, कवियों, चारणों से उसकी पुष्टि कराई गई है। काशीनरेश, मेड़ता के राजा पृथ्वीराज राठौर, जोधपुर के राजा उदयसिंह के पुत्र सगतसिंह (शक्तिसिंह) द्वारा इसकी प्राचीनता की पुष्टि की गई जब कि दरबार में इन सबकी स्थिति उस समय सिद्ध नहीं होती। आचार्य केशवदास, राजस्थानी चारण ईश्वरदास, नरहरिदास, मुरारीदास, माधोदास ने भी रासो को प्राचीन ग्रंथ बताया। इनमें केशवदास का संबंध अकबरी दरबार से सं० १६३५ के बाद हुआ और उक्त चारों चारण जोधपुर के राजा उदयसिंह के आश्रित थे किन्तु जोधपुर नरेश की अवस्थिति ही उस समय अकबरी-दरबार में नहीं मिलती। इसलिए इन चारणों के उल्लेख कैसे प्रामाणिक हो सकते हैं। ग्रंथ के बाबा गंग भाट जी से ध्वनि निकलती है कि कवि की अवस्था अधिक होनी चाहिए जबकि प्रामाणिक सूत्रों से पहले स्पष्ट किया गया है कि गंग सं० १५९५ वि० में उत्पन्न हुए और संवत् १६२६ में उनकी उम्र केवल ३१ वर्ष ही थी।

गंग कवित्त के संपादक ने उक्त ग्रंथ का रचयिता गंग को न मान कर किसी विष्णुदास को माना है क्योंकि उसने संवत् १६२९ में ग्रंथ को अजमेर में राजा उदयसिंह के पुत्र संगतसिंह के विजय राज्य में लिखा। इस तथ्य का उल्लेख ग्रंथ में मिलता है। शक्तिसिंह का राज्य वहाँ उस समय किसी सूत्र से प्रमाणित नहीं होता। अंत में लिखा है कि प्रति बाबा गंग की उपस्थिति में लिखी गई। अतएव विष्णुदास लिपिकार भी हो सकते हैं। कथित ग्रंथ के रचयिता गंग ही हों। किन्तु जब ग्रंथ ही जाली है तो वह चाहे गंग का हो या विष्णुदास का, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंडया ने रासो की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए जैसे अनेक पट्टे, परवाने जाली तैयार कराए थे वैसे ही इस ग्रंथ को भी तैयार कराया। इसकी भाषा भी प्राचीन नहीं है। राजस्थानी

रूपों को ही बिगाड़ कर लिखा गया है। यहाँ पर ग्रंथ की भाषा के संबंध में विचार कर लेना समीचीन होगा।

ग्रंथ की भाषा में शब्दों की एकरूपता नहीं मिलती। उसे शब्दवर्तनी की अशुद्धि भी नहीं माना जा सकता क्योंकि लिपिकार एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न ढंग से क्यों कर लिखेगा ? ठेठ खड़ी बोली में महाप्राण व्यंजन प्राय: अल्पप्राण में परिणत हो जाते हैं किन्तु भाषा में यह प्रयोग शब्द विशेष में एक-सा मिलना चाहिए किन्तु ग्रंथ में इसका अभाव मिलता है। यथा—'पातशा ऊठ शलाम ले वांहां पशाव रीये अपनि वेठक वेट गये ईतने में बाबा मैंन भाटजि आये आशिश कही।' शब्दों में निरर्थक अनुस्वार का प्रयोग उसको प्राचीन दिखाने के लिए किया गया प्रतीत होता है। यथाशलाम, वांहां, मैंन। ऐसे निरर्थक अनुनासिक प्रयोगों से ग्रंथ भरा पड़ा है। यथा तुंही किंतावुं, रांजा, आदि। अनुनासिक व्यंजन न, भ के पूर्व अनुस्वार का प्रयोग समीयता के कारण भ्रमवश किया जाना संभव है किन्तु निरनुनासिक व्यंजनों के पूर्व इसका प्रयोग अनावश्यक ही कहा जाएगा। उक्त उद्धरण में जब 'ऊठ' का प्रयोग है तो 'वेट' के स्थान पर 'वेठ' का प्रयोग होना चाहिए जो ग्रंथ में अन्यत्र मिलता भी है। निम्नलिखित उद्धरण में वेट > बैट मिलता है,—'पातशा ऊठ शलाम ले : वाहां पसाब दीया अपनी वेठक पर वैह गया।' शब्द-वर्तनी में एकरूपता का अभाव ग्रंथ की प्रामाणिकता में निश्चय ही संदेह उत्पन्न करता है। इन वाक्यांशों—'विराजमान हो रयेह, मूजर हो रये है, रागनी शुणा रहे हे'—में 'रहे हैं' के लिए तीन प्रकार की शब्द-वर्तनी मिलती है। यहाँ किसको प्रामाणिक माना जाए ? ऐसे ही अनेक प्रयोग हैं। यथा किस्सा > कीसा, कीशा, कींशा; चौहान > चुंहान, चौहान; बैरम > बेहरंभ, वेरम, बहरम; सरदार > सिरदार, सीरदार; रासो > रास, रासा आदि। निम्नलिखित वाक्य-खंडों में पद-रचना और शब्द-वर्तनी का वैभिन्न चिन्त्य है–'अपनी बैठक पर बैठ ईतने में मे बाबा गंग भाट जी आय कर असीस कही।। अपनि बैठक बेट गये ईतने में बाबा मैंन भाटजि आये आशिश कही।।' एक ही स्थल पर सदृश वाक्य-खंडों में यह अन्तर अवश्य विचारणीय है। ऐसा अन्तर किसी स्वाभाविक भाषा में तो संभव नहीं हो सकता। कृत्रिम भाषा की ही यह विशेषता हो सकती है। कतिपय स्थलों पर शब्द-प्रयोग भी अशुद्ध है—यथा, 'अकबर शाहा पातसाहा कहि रहे रहे हे, ग्रंथु की रूचाता बाहोत आतुरी से हुई है।'

पंडिताऊं शैली के प्रयोग भी अप्रामाणिक हैं। यथा 'बोलत भये, बोलते भये, बोलत भय है, गरदन की पिड़ायमान नां हुई' आदि।

अर्धविराम, विरामादि चिह्नों के प्रयोग में भी एकरूपता नहीं मिलती। ग्रंथ के पूर्वार्ध में अर्धविराम के लिए प्रायः एक बिंदु या एक पाई और पूर्ण विराम के लिए दो बिंदु (कोलन) या दो पाई का प्रयोग किया गया है यद्यपि सर्वत्र इसमें भी एकरूपता का पालन नहीं हुआ है किन्तु ग्रंथ के उत्तरार्ध में अर्धविराम अथवा पूर्णविराम के लिए कोई भी चिह्न प्रायः नहीं मिलता। यथा—'नवाब बेरमष जिने अरज करके इसका बैयांन कहा के मै अेक रोज आपेट खेलने कुं गया था : तो मुजकुं अेक जगल में तपसि मीले थे सो वे वड़े जोगेसूर थे जो दुरवासा ऋसि जी के सीस्यास : गय थे सो वो बांहां से आये थे शो हमनें बीनु को बहोत आदर कीया वो हम दोनु अकेले थे :' यहाँ पर पूर्णविराम के लिए कोलन (:) का प्रयोग हुआ है। निम्नलिखित उद्धरण में इसके लिए विन्दु और पाई का प्रयोग है—'प्रथीराज रासा के शीतर दो बोहोत रशमीयें बान बेधत कहू ये हें तीहोतर मां प्रभाव रेनसिजुव। वंचने लगा और बाबा चंद भाट जी के वचन छुंदु म आने लगे ॥ जब पातशाहा जी श्री अकबर साहा जी हो कम कीया के सूनते हो आमकाश के मीर अमीर ईश बात का मुंज कुं वहोत अचिरज हुवा हे।' ग्रंथ के अंतिम पृष्ठों में अर्धविराम विराम के लिए कोई चिह्न प्रायः प्रयुक्त नहीं मिलता। केवल पैरा के अन्त में दो पाई का प्रयोग है। अतएव यह स्पष्ट है कि ग्रंथ की भाषा में स्वाभाविकता का अभाव है। राजस्थानी भाषा के संदर्भ में उसे खड़ी बोली रूप देने का कृत्रिम प्रयास किया गया जान पड़ता है जैसा कि ग्रंथ की अंतिम वारता के उद्धरण से स्पष्ट है—'श्री दोहा बाबा चंद कनवज चढाया जिशमें असवार होता आपके नागापत्र कारणरो कहूयो छै ॥ या पोथी माणेरी जी बीसनदास जी लाल जी राव ने बगसी ग्राम राहेला का डेरां समत सोला से पैंतीसे।'

ग्रंथ में कवि गंग और महापात्र नरहरि तथाकथित छप्पय और दोहे अन्य प्राचीन संग्रह ग्रंथों में उनकी अन्य रचनाओं के साथ उपलब्ध नहीं होते जिनसे इन छंदों की प्रामाणिकता भी सिद्ध नहीं होती। प्रस्तुत ग्रंथ में उनके छंदों की भाषा इनकी अन्य रचनाओं की भाषा से बिल्कुल भिन्न है। अतएव वर्ण्य-विषय और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह एक अप्रामाणिक

रचना है जिसे कविवर गंग से कभी भी संवद्ध नहीं किया जा सकता।

मिश्रबन्धुओं ने कवि गंग का रचना-काल संवत् १६२० के लगभग माना है।[1] भाषा परिमार्जन, मात्राभिव्यक्ति की पटुता के गुण उनके काव्य में उत्तरोत्तर वढ़े होंगे। इस काल की रचनाओं में उनका पांडित्य, काव्य-कला-ज्ञान और भाव-प्रदर्शन आदि विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। अतः गंग की प्रारंभिक रचना संवत् १६२० के पूर्व की होनी चाहिए। गार्सा द तासी के पूर्व उल्लिखित इतिहास में गंग रचित काव्य-शास्त्र ग्रंथ का रचना-काल सं० १६१२ दिया गया है। संभव है कि मुक्तक रचनाओं के पूर्व उन्होंने काव्य-शास्त्र पर कोई ग्रंथ लिखा हो। उनकी रचनाओं में कई स्थलों पर संस्कृत श्लोकों के भावसाम्य और कला-पांडित्य के दर्शन होते हैं। इससे भी स्पष्ट है कि गंग ने संस्कृत का सम्यक् अध्ययन किया था। उस समय कवि की आयु लगभग १७ वर्ष की ठहरती है। प्रतिभाशाली कवि के लिए इस उम्र में ग्रन्थ-रचना असंभव नहीं कही जा सकती। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए कवि गंग का प्रारंभिक रचनाकाल सम्वत् १६१२ मान लेने में किसी प्रकार की अयुक्ति ज्ञात नहीं होती। उनकी विशेष प्रसिद्धि संवत् १६२० के लगभग ही हुई होगी। स्वर्गीय पंडित रामचन्द शुक्ल ने गंग का कविताकाल सत्तरहवीं शताब्दी के बीच का समय माना है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि का रचना-काल सम्वत् १६५० के लगभग ही है। सत्तरहवीं शताब्दी के पूर्व मध्यकाल में इनकी रचना आरम्भ हुई और विशेष प्रौढ़ता उसमें इस शताब्दी के मध्यकाल में ही आई होगी।

---

[1] मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६।

पंडिताऊ शैली के प्रयोग भी अप्रामाणिक हैं। यथा 'बोलत भये, बोलते भये, बोलत भय है, गरदन की पिड़ायमान नां हुई' आदि।

अर्धविराम, विरामादि चिह्नों के प्रयोग में भी एकरूपता नहीं मिलती। ग्रंथ के पूर्वार्ध में अर्धविराम के लिए प्रायः एक बिंदु या एक पाई और पूर्ण विराम के लिए दो बिंदु (कोलन) या दो पाई का प्रयोग किया गया है यद्यपि सर्वत्र इसमें भी एकरूपता का पालन नहीं हुआ है किन्तु ग्रंथ के उत्तरार्ध में अर्धविराम अथवा पूर्णविराम के लिए कोई भी चिह्न प्रायः नहीं मिलता। यथा—'नवाव वेरमष जिने अरज करके इसका बैयांन कहा के मै अेक रोज आपेट खेलने कुं गया था : तो मुजकुं अेक जगल में तपसि मीले थे सो वे बड़े जोगेसूर थे जो दुरवासा ऋसि जी के सीस्यास : गय थे सो वो वांहां से आये थे शो हमनें बीनु को बहोत आदर कीया वो हम दोनु अकेले थे :' यहाँ पर पूर्णविराम के लिए कोलन (:) का प्रयोग हुआ है। निम्नलिखित उदधरण में इसके लिए विन्दु और पाई का प्रयोग है— 'प्रथीराज रासा के शीतर दो बोहोत रशमीयें वान बेधत कहू ये हें तीहोतर मां प्रभाव रेनसिजुव। बंचने लगा और बावा चंद भाट जी के वचन छुंदु म आने लगे ॥ जब पातशाहा जी श्री अकबर साहा जी हो कम कीया के सूनते हो आमकाश के मीर अमीर ईश बात का मुंज कुं वहोत अचिरज हुवा हे।' ग्रंथ के अंतिम पृष्ठों में अर्धविराम विराम के लिए कोई चिह्न प्रायः प्रयुक्त नहीं मिलता। केवल पैरा के अन्त में दो पाई का प्रयोग है। अतएव यह स्पष्ट है कि ग्रंथ की भाषा में स्वाभाविकता का अभाव है। राजस्थानी भाषा के संदर्भ में उसे खड़ी बोली रूप देने का कृत्रिम प्रयास किया गया जान पड़ता है जैसा कि ग्रंथ की अंतिम वारता के उद्धरण से स्पष्ट है—'श्री दोहा बाबा चंद कनवज चढाया जिशमें असवार होता आपके नागापत्र कारणरो कहूयौ छै ॥ या पोथी माणेरी जी वीसनदास जी लाल जी राव ने बगसी ग्राम राहेला का डेरां समत सोला से पैंतीसे।'

ग्रंथ में कवि गंग और महापात्र नरहरि तथाकथित छप्पय और दोहे अन्य प्राचीन संग्रह ग्रंथों में उनकी अन्य रचनाओं के साथ उपलब्ध नहीं होते जिनसे इन छंदों की प्रामाणिकता भी सिद्ध नहीं होती। प्रस्तुत ग्रंथ में उनके छंदों की भाषा इनकी अन्य रचनाओं की भाषा से बिल्कुल भिन्न है। अतएव वर्ण्य-विषय और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह एक अप्रामाणिक

रचना है जिसे कविवर गंग से कभी भी संवद्‌ध नहीं किया जा सकता।

मिश्रवन्धुओं ने कवि गंग का रचना-काल संवत् १६२० के लगभग माना है।[1] भाषा परिमार्जन, मात्राभिव्यक्ति की पटुता के गुण उनके काव्य में उत्तरोत्तर बढ़े होंगे। इस काल की रचनाओं में उनका पांडित्य, काव्य-कला-ज्ञान और भाव-प्रदर्शन आदि विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। अतः गंग की प्रारंभिक रचना संवत् १६२० के पूर्व की होनी चाहिए। गार्सां द तासी के पूर्व उल्लिखित इतिहास में गंग रचित काव्य-शास्त्र ग्रंथ का रचना-काल सं० १६१२ दिया गया है। संभव है कि मुक्तक रचनाओं के पूर्व उन्होंने काव्य-शास्त्र पर कोई ग्रंथ लिखा हो। उनकी रचनाओं में कई स्थलों पर संस्कृत श्लोकों के भावसाम्य और कला-पांडित्य के दर्शन होते हैं। इससे भी स्पष्ट है कि गंग ने संस्कृत का सम्यक् अध्ययन किया था। उस समय कवि की आयु लगभग १७ वर्ष की ठहरती है। प्रतिभाशाली कवि के लिए इस उम्र में ग्रन्थ-रचना असंभव नहीं कही जा सकती। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए कवि गंग का प्रारंभिक रचनाकाल सम्वत् १६१२ मान लेने में किसी प्रकार की अयुक्ति ज्ञात नहीं होती। उनकी विशेष प्रसिद्धि संवत् १६२० के लगभग ही हुई होगी। स्वर्गीय पंडित रामचन्द शुक्ल ने गंग का कविताकाल सत्तरहवीं शताब्दी के बीच का समय माना है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि का रचना-काल सम्वत् १६५० के लगभग ही है। सत्तरहवीं शताब्दी के पूर्व मध्यकाल में इनकी रचना आरम्भ हुई और विशेष प्रौढ़ता उसमें इस शताब्दी के मध्यकाल में ही आई होगी।

---

[1] मिश्रवंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६।

काव्यालोचन

पृष्ठभूमि :

भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्य युग स्वर्णकाल के नाम से अभिहित है। साहित्य के इतिहास में ऐसे बहुत कम सौभाग्यशाली क्षण आते हैं जब काव्य का आनन्द विलासी-विरक्त, एश्वर्यशाली-त्यागी, राजा-रंक दानी-भिखारी, नास्तिक-भक्त सभी वर्गों, समूहों के लोग व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप में ले सकें। साहित्य और काव्य का यही सार्वजनीन स्वरूप जनमानस को सर्वाधिक आन्दोलित एवं प्रभावित करता है। इस युग में साहित्य के मनन, चिन्तन और अध्ययन के सभी क्षेत्रों में साधारण व्यक्ति से लेकर उच्च व्यक्ति तक सभी ने समान रूप से सहयोग प्रदान किया। साधारण अशिक्षित जनता में कबीर, उनके अनुयायी एवं अन्यान्य निर्गुण साधकों ने धर्म-चर्चा काव्यमयी भाषा में प्रारम्भ की जिसका साहित्य में अनुपम स्थान है। दूसरी ओर, विशिष्ट सम्प्रदायों में दीक्षित उच्च ज्ञानसम्पन्न साधारण भक्तजनों में स्वामी बल्लभाचार्य एवं रामानन्द के शिष्य भी धर्मचर्चा का माध्यम काव्य को ही बनाकर जनमानस को सरस करने में किसी से पीछे नहीं थे।

इस युग में सार्वजनीन और सर्वसुलभ साहित्य के अतिरिक्त कुछ साहित्य ऐसा भी रचा जा रहा था जिसका आस्वादन केवल एक सीमित सहृदय वर्ग तक ही संभव था। वह लिखा भी इसी उद्देश्य से जाता था। इसके रचयिता भी गुणी जनों की खोज में रहते थे। गुणियों की प्रधान विशेषता एक उच्च कोटि की परख और सहृदयपरक रुचि समझी जाती था। मध्यकाल में इस कोटि के गुणी जनों का केन्द्रस्थल राजदरबार ही था। इस सीमित सहृदय वर्ग की रुचि विशेष के साहित्य-सर्जक इन्हीं राजदरबारों में आश्रय पाते अथवा अपनी मान-प्रतिष्ठा के लिए सम्राट् और राजाओं की सेवा में अपना समययापन करते थे। सम्राट्, राजा और नबाबों के सेवकों का ऐश्वर्य उन्हीं की प्रतिष्ठा का द्योतक होता था। इस युग में सम्राट् तथा उसके अधीनस्थ उच्च राजकर्मचारी, रईस, राजा, नबाब, कवि इत्यादि बड़ी शान से जीवनयापन करते थे। मुग़ल सम्राट् अकबर के समय में उसके साम्राज्य की शांति और समृद्धि में अपार वृद्धि हुई थी। ऐसे शान्ति और

सुख-समृद्धि के उपयुक्त अवसर पर नाना प्रकार की कलाओं-विद्याओं का विकास स्वाभाविक एवं युग की माँग थी।

भारतीय परम्परा और मुग़लों की शालीनता ने ऐश्वर्य और भोग के इन क्षणों में भी दरबार में किसी प्रकार की उच्छृङ्खलता एवं निम्नकोटि की रुचि को कभी प्रोत्साहित नहीं किया, इतिहास इस बात का साक्षी है। शांति और वैभव के इन क्षणों में और विशेष रूप से उस स्थिति में जबकि सम्राट् और दरबारी जनों के पास अपार धनराशि एकत्रित हो चुकी थी, विलासितों और विनोद के खुलकर उपभोग करने के पर्याप्त अवसर थे और अवकाश की कमी नहीं थी। सौभाग्य से अकबर से लेकर शाहजहां के काल तक हमें जो विलासिता मिलती है उसे हम साधारण कोटि की विलासिता में नहीं रख सकते। यह विलासिता नंगी बुभुक्षा, ओछी वृत्ति और थोथापन लिए हुए नहीं थी। उसे हम कलात्मक विलासिता कह सकते हैं। "पर कलात्मक विलासिता संयम चाहती है, शालीनता चाहती है, विवेक चाहती है। सो, कलात्मक विलास किसी जाति के भाग्य में सदा-सर्वदा नहीं जुटता। उसके लिए ऐश्वर्य चाहिए, समृद्धि चाहिए, त्याग और भोग की सामर्थ्य चाहिए और सबसे बढ़कर ऐसा पौरुष चाहिए जो सौन्दर्य और सुकुमारता की रक्षा कर सके।"[1] मुग़लों के युग में सभी सम्भव था। कवित्व और कला के लिए दान करने और आश्रय देने में अकबर और रहीम ऐसे व्यक्ति विद्यमान थे।[2]

मुगल राजदरबार और राजसभाओं में सहृदयों की गोष्ठी में भाग लेने तथा गोष्ठी का शृंगार बनने के इच्छुक व्यक्ति चाहे वह कवि हों, गायक हों अथवा अन्य किसी गुण विशेष में पारंगत हों सभी के लिए नाना कलाओं की जानकारी आवश्यक होती थी। उसे गोष्ठी में प्रविष्ठ होने का अधिकारी सिद्ध करने के लिए इन सारी कलाओं के परिचय की साक्षी देनी पड़ती थी। प्रमुखतः सभी शास्त्रों का ज्ञान, राजनीति-प्रयोग-कौशल, मान, संगीत, शृंगार-

[1] प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २।

[2] नांउ लिए घर तें निकस्यो, कवि गंग कहै सहजान तिहारो।
आइकै देख्यो है कल्पतरु, अरू कामदुधा मनिचिंतति भारो।
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहूँ नहिं बारो।
लोभ गयो सिगरो चित तें, अब ये भयो दारिद छेदन वारो।
[1] कविवर गंग, जीवन और काव्य, छन्द संख्या ४१६।

साहित्य, श्रुति, काव्य-नाटक, द्यूत-व्यापार-प्रगल्भता, विविध नायिकाओं के हास, परिहास, मान-प्रणय, मान-मोचन, सखी-दूती के व्यापार की सूक्ष्म, विविध यानों-वाहनों, सवारी के पशुओं, पुरुषों, स्त्रियों के लक्षणों का सम्यक् ज्ञान, अनेक लिपियों, भाषाओं की बहुज्ञता जिसमें पशु-पक्षियों की बातचीत तक सम्मिलित थी, का अनुभव प्राप्त करने वाले गोष्ठी में शीघ्र प्रवेश पाते थे। दरबारी जीवन में कला की अपनी निश्चित परिभाषा यही थी कि सभी प्रकार की सुकुमार और बुद्धिमूलक क्रियाएं कलाएं हैं। इनकी निश्चित संख्या भी यद्यपि कहीं मिल जाती है परन्तु मुग़ल काल के वातावरण में जब देशी-विदेशी जीवन-पद्धतियों का सम्मिश्रण हुआ तब इनकी संख्या निरन्तर बढ़ती गई।

विलास वैभव का उन्मुक्त अवसर, अवकाश की प्रचुरता आदि ने मिल कर जीवन को अधिकाधिक आनन्दमय बनाकर भोगने की प्रवृत्ति उत्पन्न की। इसकी प्रेरणा देने वाले शास्त्र भारत में संस्कृत में बहुत पहले लिखे जा चुके थे, उनमें वात्स्यायन का कामसूत्र प्रमुख स्थान रखता था। जीवन के प्रति मात्र ऐहिक दृष्टिकोण रखने वालों के लिए उसमें पर्याप्त सामग्री पहले से विद्यमान थी। वात्स्यायन की गिनाई हुई कलाओं में एक तिहाई तो विशुद्ध साहित्यिक हैं बाकी कुछ नायक-नायिकाओं की विलास-क्रीड़ा में सहायक हैं, कुछ मनोविनोद और कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें दैनिक प्रयोजनों का पूरक कहा जाता है।[1] उस युग का सभ्य गाना-बजाना, नाना प्रकार की चित्रकारियों से लेकर प्रेयसी को रिझाने आदि नाना कलाओं में दक्ष होता था। इस प्रकार की सैकड़ों कलाएं देखने को मिलती हैं। वात्स्यायन ने जिन कलाओं का निर्धारण किया था, मध्यकालीन साहित्य और नागरिक जीवन में उनका पूरा-पूरा अनुकरण मिलता है। नागरिक अर्थात् नगर के निवासी का यह जीवन पूर्णरूपेण सामन्तीय पद्धति पर था। सामन्तीय पद्धति में धन-सम्पत्ति, सुख-ऐश्वर्य, साधन-सुविधाएं एक वर्ग-विशेष में सिमट जाती हैं। फलत: इस वर्ग में जीवन के स्वच्छन्द उपभोग और निर्बाध जीवनयापन की मनोवृत्ति प्रबल हो उठती है। इसी मनोवृत्ति के अनुकूल लिखा जाने वाला साहित्य भी भोग की प्रवृत्ति, वासना के प्रसंगों से युक्त रहता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "काव्य-नाटकों

[1]प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृष्ठ १४।

के साहित्य में मनुष्य की भोग प्रवृत्ति का जब प्रसंग आता है तो वात्स्यायन की कलाएँ और कामसूत्रीय विधान कवि के प्रधान मार्गदर्शक हो जाते हैं[१]। संस्कृत-साहित्य में इन कामसूत्रीय विधान की रचनाओं का निर्माण पर्याप्त मात्रा में छठी शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक निरंतर होता रहा। संस्कृत में साहित्य-रचना के वेग के मन्द पड़ते ही, हिन्दी के दरबारी साहित्य में उसकी शृंगारिक प्रवृत्ति का अनवरत प्रवेश होने लगा क्योंकि हिन्दी के तद्युगीन साहित्यकार संस्कृत की सारी परम्परा में सिद्धहस्त होते थे।[२] मुग़ल काल के दरबारी कवियों में शिरोमणि कवि गंग के काव्य के विवेचन के लिए इन सब प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना परमावश्यक है।

विदेशी शासन की लम्बी अवधि के पश्चात् अकबर ही एक ऐसा पहला शासक हुआ जिसने भारतीय कवियों को राज्याश्रय प्रदान किया। पहली बार संस्कृत और हिन्दी के कवियों को देशी-राजाओ की राजसभाओं के अतिरिक्त सम्राट के राजसमाज में सम्मिलित होने की मान्यता प्राप्त हुई।[3] इन सब कवियों में गंग को ही सौभाग्य से कवियों का सरदार बनने का गौरव प्राप्त हुआ।[४] मध्य एशिया से आगत शासक जाति में फारसी का विशेष सम्मान था, गंग की कवित्त शक्ति ने हिन्दी की ओर उस सम्मान की दृष्टि को मोड़ा, परवर्ती हिन्दी काव्य में फ़ारसी काव्य का प्रभाव प्रचुर दिखाई देता है परन्तु फ़ारसी कवियों और फ़ारसी-पसन्द के लोगों से घिरे हुए होने पर भी गंग की रचनाओं में फ़ारसी प्रभाव नगण्य है। इसका कारण सम्भवतया उनके सभी आश्रयदाताओं की भारतीय भाषाओं में पूर्ण अभिरुचि को प्रदर्शित करता है। उनके आश्रयदाताओं में खानखाना अब्दुर्रहीम का नाम सर्व प्रमुख है। वे स्वयं हिन्दी के उच्च कोटि के कवि थे। भारतीय संस्कृति से उनका अनन्य अनुराग सर्व विदित है।

दरबार और राजसभा से बाहर जनता का विशद क्षेत्र था। मध्य-काल में सम्पूर्ण जन-संख्या शासक और शासित दो विभागों में विभाजित थी। सम्राट के दरबारी अथवा राजसभाओ के सभ्य सम्राट और राजा द्वारा सम्मानित होने के कारण किसी न किसी प्रकार का शासकीय अधिकार रखते

---

[१]वही, पृष्ठ १४।

[२]बिहारी वाग्विभूति।

[3]मुग़लकालीन भारत, डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६२०-२१।

[४]तुसी गंग दुवौ भये सुकविन के सरदार।

थे। अवशिष्ट शासितों का समुदाय था। यह युग शासित जन-जीवन के भीतर महान् सन्तों, साधकों और भक्तों का जिनमें निर्गुण-सगुण दोनों प्रकार के विचारक थे, आविर्भाव-काली था। सामान्य जन-जीवन के पथ-प्रदर्शक और उनकी अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम इतनी मात्रा में किसी युग में नहीं दिखाई देते। इन सन्तों, महात्माओं, भक्तों का प्रभाव सामान्य जन-जीवन पर ही नहीं वरन् शासक वर्ग पर भी खूब पड़ा। अकबरी-दरबार भी इन भावनाओं से अछूता नहीं रह सका। "अतः इस काल का घोर विलासी भी ईश्वर से डरता था। संसार की अनित्यता का, लौकिक अनीति का ज्ञान उसके हृदय में हरदम प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रूप में बना ही रहता था। यह विचारधारा शास्त्र के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति जगाती है जो उस काल में बहुत मिलती है।[1] गंग ने भी इस प्रवृत्ति का आश्रय लिया है। यत्र-तत्र कुछ ईश्वर-स्तुति के रूप में कुछ नीति तथा संसार की अनित्यता के बहाने उन्होंने ऐसी उक्तियाँ कही हैं, जो परम्परा-निर्वाह और उपरोक्त लोक-परलोक की चिन्ता की अपेक्षा तत्संबंधी गहरी श्रद्धा, दीर्घ अनुभव, वैराग्य आदि की कम परिचायक हैं।

सम्राट की राजसभा के आश्रित कवि गण शृंगारिक साहित्य के अतिरिक्त एक और दूसरे प्रकार की साहित्य रचना करते थे, वह थी आश्रय-दाता की प्रशस्ति। यों तो तत्कालीन सम्राट एवं राजाओं के आश्रय में रहने वाले सभी कविगण अपने आश्रयदाताओं की उदारता की प्रशंसा करते थे और अवसर मिलते ही उनका काव्यमय उल्लेख कर देना अपना परम कर्तव्य समझते थे। यह ठीक भी था क्योंकि मध्यकाल का सम्राट, राजा अथवा रईस कला और विद्या के पीछे मुक्तहस्त से धन लुटाता था। औद्योगिक क्रांति के पूर्व संसार में सर्वत्र धन के दो ही उपभोग के ढंग थे, दान और भोग अन्यथा धन का विनाश निश्चित था। फलतः वे केवल अपने धन के कृपण उपभोक्ता नहीं थे। धर्म के भोग का एक मार्ग उस युग में गुणियों का संग्रह और उन गुणों से अपना मनोरंजन और जिज्ञासातृप्ति भी था। नागरिक के जीवन में लोक-परलोक का भय निश्चित मात्रा में होने के कारण उसकी भोग प्रवृत्ति अधिकांशतः सुरुचिपूर्ण जीवन और सुकुमार कलाओं की ओर झुकती थी। कवि गंग भाट थे ही। चारणों की भाँति अपने आश्रय-दाताओं का यशगान उनके लिए साधारण बात थी। नायिका-भेद की

[1] गंग कवित्त, पृष्ठ ४०।

परम्परा से अनुमोदित शृंगारिक रचनाओं के साथ-साथ फुटकल छन्दों में वे प्रशस्ति का गायन भी कर देते थे। गंग में ये दोनों प्रवृत्तियाँ विशेषत: पाई जाती हैं। वैसे अकबरकालीन साहित्य की समस्त प्रवृत्तियाँ नीति, भक्ति शृंगार के दोनों पक्ष, संयोग-वियोग, प्रशस्ति में विशेषत: वीर और भयानक के प्रसंगों का अवसरोचित वर्णन अभी उनके काव्य की विषय-वस्तु के अनेक पहलू हैं। शृंगार के क्षेत्र में तो गंग ने इतनी ख्याति अर्जित की कि कोई भी रसमय उक्तियाँ, चुटीली पंक्तियाँ, भड़कीला छंद उनके नाम से संयुक्त कर देने से निरापद समझ लिया जाने लगा था। शृंगार की अनूठी उक्तियों के लिए इतना अधिक समादार साहित्य के क्षेत्र में बहुत कम लोगों को प्राप्त हुआ है। 'कहै कवि गंग' और गंग 'कहै सुनि साह अकब्बर' बोले छंदों का प्रचार गंग की इसी ख्याति के आधार पर सर्वत्र मिलता है।

वर्ण्य-विषय-समीक्षा :

गंग के जितने भी छंद प्राप्त हुए हैं उनमें विषय की विविधता और काव्योचित मौलिकता स्थल-स्थल पर द्रष्टव्य है। उन्होंने अपनी भक्ति भावना संबंधी छंदों में कृष्ण की महिमा, यमुना का माहात्म्य तथा रामनाम की महत्ता दर्शायी है। भक्ति भाव के छन्दों से यह भी स्पष्ट होता है कि कवि ने अपने जीवन में अंतिम काल में भक्ति मार्ग को अपनाया था क्योंकि शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और विप्रलम्भ पर कवि की दृष्टि विशेष रूप से रमी है। गंग के पूर्व उनके पूर्ववर्ती कवि जायसी और सूर शृंगार के अंतर्गत नख-शिख वर्णन कर चुके थे। जायसी ने रहस्योद्घाटन के लिए नख-शिख वर्णन को रूपक मात्र माना था और सूर ने नखशिख को भक्ति का उद्दीपन रूप दिया था। कवि गंग ने नखशिख को एक अलग ही रूप दिया, उसे भक्ति के साथ नहीं मिलाया। इसी पद्धति को गंग के परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने अपनाया। संयोग शृंगार का वर्णन करते समय काम चेष्टाओं, हाव-भाव आदि के चित्रण में गंग ने प्रेम के प्रकृत रूप को नहीं भुलाया है। विप्रलम्भ की सूक्ष्म भावनाओं तथा अवस्थाओं के रूप व्यक्त किए गए हैं।

भारत में सदैव से विचारों की प्रधानता रही है। विचारक प्रत्येक कार्य को अपने अनुभूत और ज्ञात अनेक तथ्यों के आधार पर निर्धारित पथ पर स्वयं चलता और दूसरों को इस ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार उपदेश करने के लिए नीति-कथन अथवा नीति-निर्धारण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन

काल से चल पड़ी है। भारतीय विश्वास के अनुसार यहाँ कवि भी केवल भावुक अथवा कल्पनाशील प्राणी न होकर किसी न किसी रूप में विचारक भी होता है, 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' कथन का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर अवश्य पड़ा है। दीर्घ जीवन के अनुभूत ज्ञान और अनेक ज्ञात तथ्यों के आधार पर संसार को शिक्षा देना वह अपना कर्तव्य समझता है। कुछ कथनों में यथार्थ जीवन की सत्यता पर भी प्रकाश डाला जाता है। परन्तु मध्यकाल के शृंगारी कवियों का नीतिकथन उनकी व्यापक प्रवृत्ति नहीं है, उसमें ये लोग यदा-कदा प्रवृत्त हो जाया करते थे।[1] सतसैया ऐसे शृंगार-ग्रन्थ में जो नीति-निरूपण है वह परम्परा निर्वाह के साथ सरस कथन भी है। रहीम नीति के क्षेत्र में सबसे आगे थे परन्तु उनका नीति-निरूपण शुष्क तथ्य कथन न होकर सरस उद्बोधन है। उनमें हृदयस्पर्शिता मार्मिक है। गंग की नीति उक्तियों में रहीम की सी सरसता उतनी मात्रा में ढूंढ़ना उचित नहीं है। विशुद्ध नीति कहने वालों से उन्हें सम्बद्ध करना ही ठीक होगा। ज्ञानवर्धन की दृष्टि से उनके नीति विषयक छन्दों में पर्याप्त सामग्री है। नीति का कथन करने वाले छन्द भी गंग ने बहुत कम कहे हैं।

वीर-रस-चित्रण गंग का प्रधान क्षेत्र नहीं था फिर भी इस रस के कुछ छन्द इन्होंने लिखे हैं। वीर-रस की कविता का आलम्बन अपने आश्रयदाता मुसलमान शासकों को ही अधिकतर बनाया है। इसलिए संभवतः इनकी तत्संबंधी रचना प्रचलित न हो सकी। वीर रस के भीतर कवि गंग ने भयानक और रौद्र रस का भी कहीं-कहीं सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने नीति और उपदेश संबंधी विविध आवश्यक बातों का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। इनकी नीति वर्णन पद्धति का खानखाना पर अधिक प्रभाव पड़ा था। प्रकृति-वर्णन का निर्वाह भी गंग की कविता में उचित रूप से हुआ है। प्रकृति के ये वर्णन उद्दीपन रूप में अधिकतर आए हैं। गंग का काव्य चित्रण सप्राण, स्वाभाविक, सुन्दर और चित्ताकर्षक है। प्रकृति के अन्य स्वतंत्र रूपों की प्रायः सभी शृंगारी कवियों ने उपेक्षा की है। गंग को भी अपने काव्य में उसके वर्णन करने का अवसर नहीं मिला, दरबारी वातावरण में कृत्रिम सौन्दर्य, बनाव-शृंगारों, नाना हाव-भावों का जितना महत्त्व होता है उतना प्रकृति के प्रांगण में क्रीड़ा करने वाली सौन्दर्य स्थलियों का नहीं।

---

[1] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गंग कवित्त, पृष्ठ १६।

प्राचीन काल के राजदरबारों में समस्यापूर्ति की कविता भी कवियों की जीवनसंगिनी रही है। इस दिशा की ओर भी गंग ने पूर्ण सफलता प्राप्त की। समस्यापूर्ति के लिए जिस विलक्षणता, वाक्चातुर्य, विदग्धवाणी विलास की आवश्यकता पड़ती है वह उनकी प्रतिभा में कूट-कूटकर भरी थी। दरबारी वातावरण में लम्बे महाकाव्यों, वृहत् प्रसंगो की, जिनमें धैर्य और प्रतीक्षा की आवश्यकता होती है, अपेक्षा नहीं रहती। वहाँ तो संक्षेप में थोड़े से शब्दों में चुटीली उक्ति, सरस शब्दों में सुनाने की आवश्यकता होती है जिसमें एक साथ अनेक गुण हों, यथा कौतूहल चमत्कार मनोरंजन, जिज्ञासातृप्ति और रसमयता। समस्यापूर्ति भी उस युग में इसी प्रकार का एक सरल, सहज माध्यम था। इससे कवियों की तात्कालिक बुद्धि प्रतिभा, उत्तर देने की पटुता का पता चल जाता था। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में मध्ययुगीन ये दरबारी कवि चमत्कार के लिए समस्यापूरण करते थे। अद्भुत संभावनाओं द्वारा आकर्षण उत्पन्न करते थे और साथ ही लोक जीवन के निरीक्षण द्वारा कभी यथार्थ का कथन, कभी नीति का निदर्शन और कभी अनुभूत या ज्ञात ज्ञान संपत्ति के आकलन द्वारा ज्ञान-वर्धन भी किया करते थे।[१] भारत में समस्यापूर्ति कला अर्थात् उपविधा कहा गया है। काव्य को कला नहीं माना गया है। इसमें किसी समस्या को लेकर चतुर्थ चरण में अथवा छंद के अंतिम चरण में उसे रखकर अन्य चरणों की पूर्ति करके छंद पूर्ण कर लेते थे। समस्या स्वयं गढ़ ली जाती थी। ये समस्याएँ बड़ी कौशलपूर्ण हुआ करती थी। गंग भावुक अकबर की दी हुई अनेक समस्याओं की पूर्ति सहज ही में करके सहृदयों की गोष्ठी को चमत्कृत कर देते थे जिसका परिचय अगले पृष्ठों में दिया गया है।

गंग द्वारा कथित उपर्युक्त विषयों के विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने लाक्षणिक तथा व्यंग्यात्मक शैली का भी अपने काव्य में सहारा लिया है। इन गुणों के कारण ही गंग के काव्य में उक्ति-वैचित्र्य तथा कल्पना-वैचित्र्य का परिचय मिलता है। अलंकारों की छटा की सज्जा में उनकी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन हुआ है। इसमें केवल चमत्कारों की भरमार न होकर स्वाभाविकता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। गंग की रचनाओं का पूर्ण पता अभी हिन्दी संसार को ज्ञात नहीं है तथापि जितना

---

[१] गंग कवित्व, संपादकीय, डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १८।

थोड़ा अंश सौभाग्य से मिल सका है उसी से उनकी बहुमुखी प्रतिभा का पता चलता है।

उनके वर्णनों में नीति, भक्ति, प्रशस्ति-गान के अतिरिक्त शृंगार के सम्बन्ध में कुछ कहना शेष रह जाता है। शृंगार मानव जीवन की रागात्मिका अभिव्यक्ति है। इसमें पुरुष-स्त्री के पारस्पारिक आकर्षण के साथ ही एक दूसरे का नैकट्य प्राप्त करने के लिए दोनों ओर से प्रयत्न प्रारंभ होते हैं। इस प्रयत्न में मर्यादा, परम्परा, अवस्था इत्यादि के अनुसार अनेक बाधाएँ पड़ती हैं जिससे प्रेमी-प्रेमिकाओं की विवशता, दृढ़ता, निष्ठा, उत्कटता, अधीरता, सहनशीलता, त्याग, उत्सर्ग, स्नेह इत्यादि अनेकानेक गुणों का परिचय प्राप्त होता है। प्रयत्न की सफलता पर हर्ष, निश्चिन्तता, कभी-कभी एक दूसरे की ओर उदासीनता, अवहेलना आदि भी मानव प्रकृति के अनुसार हुआ करते हैं। कभी एक पक्ष अधिक सजग और दूसरा मन्द पड़ जाने से विभिन्न परिस्थितियों का सामना दोनों को करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उदासीन पक्ष अपने कर्तव्य के ज्ञान हो जाने पर अपने किए का पश्चाताप एवं क्षमायाचना करता है। इस प्रकार जीवन के विभिन्न अवसरों के बीच कभी-कभी दोनों को कुछ काल के लिए एक दूसरे से दूर रहकर जीवन-यापन के लिए विवश हो जाना पड़ता है। इस प्रयास की स्थिति में दोनों का जीवन एक दूसरे की स्मृति में भारस्वरूप हो जाता है। वियुक्तावस्था में तो मरण की भी नौबत आ जाती है। संसार की कोई वस्तु रुचिकर नहीं लगती। फलतः कवियों ने प्रेमी-प्रेमिकाओं की इस स्थिति का बड़ा ही मार्मिक, हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। इसमें उनकी आंतरिक-वृत्ति खूब रमी है। अंत में या तो मिलन होता है जिसमें एक दूसरे को पाकर अपना पिछला दुःख भूल जाते हैं या दोनों में से एक का मरण हो जाता है, दूसरा उसकी राख लपेटे उन्मत्त घूमा करता है अथवा दोनों अपने दुःखमय जीवन का अंत कर देते हैं।

प्रेमी-प्रेमिका के इस मधुर प्रणय का गान भारतीय साहित्य में खूब हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार कवियों ने उसे मर्यादित भी किया है। रहन-सहन, जीवन-स्तर, परिस्थिति और अवसर तथा विभिन्न देशों की परम्परा के अनुसार वहाँ कवियों ने प्रणयी लोगों के सम्बन्धों, प्रयत्नों इत्यादि का वर्णन किया है। भारत ऐसे देश में जहाँ युगों की मर्यादाओं ने मानव-जीवन को एक निश्चित दिशा में ढाल दिया है कवियों ने पग-पग पर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने की यथेष्ठ चेष्टा की है। प्रणयी

श्रौर प्रणयिनी का प्रेम साधारणतया समान होता है तथापि यदा-कदा मानव-स्वभाव अथवा एक के गुणों से दूसरे का उनके प्रति खिच कर लोभ-रूप में आकर्षण अधिक होना स्वाभाविक है। यह दोनों प्रणयी और प्रणयिनी के लिए संभव है। ऐसी स्थिति में एक का प्रयत्न दूसरे को प्राप्त करने में चरम सीमा को पहुँच सकता है। परन्तु भारतीय परम्परा में नारी के यौवन के प्रारंभिक क्षणों से ही प्रेमिका की ओर आकर्षित होने का चित्रण विशेष हुआ है। प्रयत्न भी उसी की ओर से होता है। प्रेमी भी प्रयत्न करता है परन्तु व्यग्रता, अधीरता अधिक नारी-पक्ष में ही दिखाई गई है। मर्यादाओं के बोझ से दबी, परिजनों तथा वृद्ध-जनों द्वारा देख लिए जाने के भय से सहमी एवं अपनी विकलता, परवशता से अधीर नारी अपने प्रिय के लिए छटपटाती है। अपने हृदय की कोमल भावनाओं को प्रेमी तक पहुँचाने वाला ऐसा माध्यम चाहिए जो प्रेमी तक उसकी हृदय की सच्चाई ऐसे चातुर्य से प्रस्तुत करे कि उसे पूर्ण विश्वास हो जाए, साथ ही ऐसा भी न हो कि कहीं किसी को पता चल जाए अथवा भेद खुल जाने से बदनामी और धोखे का कुपरिणाम भोगना पड़े। इस कठिनाई को समाप्त करने के लिए दूती या दूतिका को भारतीय साहित्य में स्थान दिया गया। दूती चतुर संदेश-वाहिका ही नहीं, श्रृंगार के भव्य मंदिर के आधार स्तंभ का महत्त्व प्राप्त कर लेती है। गंग ने दूती के चातुर्य का विशदचित्रण किया जिस पर यथा-स्थान अगले पृष्ठों में अधिक विस्तार से विचार किया गया है।

प्रेमी-प्रेमिका को भारतीय साहित्य में नायक-नायिका नामों से अभिहित किया गया है। नारी की वेदना के आधिक्य तथा उसके विशेष स्थान के कारण इस प्रकार के श्रृंगारिक साहित्य को केवल नायिका के आधार पर 'नायिका भेद' नाम दिया गया है। प्रेमिका अथवा नायिका के प्रयत्नों से नायक की प्राप्ति हो जाने पर कवियों ने संयोग के अनेक चित्र खींचे हैं। इन चित्रों में श्रृंगारिकता के अतिरेक के कारण, कहीं-कहीं मर्यादा की सीमा रेखा का अतिक्रमण भी कर दिया गया है। ऐसे स्थलों को समीक्षकों ने अश्लील मानकर महत्त्वहीन करार दिया है। फिर भी कवियों ने ऐसे चित्रण कम ही किए हैं। संयोग के अन्तर्गत मानव की नाना रागात्मिका वृत्तियों का सुष्ठु वर्णन हुआ है। ऐसे अवसर पर प्रकृति भी अपना हाथ बढ़ाती है अर्थात् परिस्थिति या वातावरण को उद्दीप्त कर नायक-नायिका के मनोनुकूल रहा करती है। इसे प्रकृति का उद्दीपक रूप

कहा जा सकता है। संयोग की स्थिति में संयम और धैर्य दोनों के बाँध टूट जाते हैं और शारीरिक सौंदर्य का उन्मुक्त वासनात्मक उपभोग होने लगता है। भारत में नायिका भेद पर विस्तृत साहित्य लिखा गया। वात्स्यायन के कामसूत्र में वासनात्मक उपभोग के अनेक ढंग सुझाए गए हैं। नायिका-भेद की शैली में काव्य लिखने वालों ने उसी का अनुसरण करते हुए विपरीत रति और रति-रण का भी आयोजन किया है, संयोग की स्थिति में धीरे-धीरे एक पक्ष में निश्चिन्तता और उदासीनता बढ़ने लगती है। दूसरी ओर प्रेमाधिक्य के कारण यह सह्य नहीं होता। प्रेमी पर अपना आधिपत्य दिखाने के लिए प्रेमिका रूठ जाती है। यह 'मान' कहलाता है। प्रेमी अथवा नायक अपनी भूल पर पश्चाताप करता है, दूती उसके कर्तव्य का ज्ञान कराती है, नायिका से अनेक प्रकार से अनुनय-विनय कराई जाती है और अन्त में मान-मोचन होता है। मानव-स्वभाव का इसी में अन्त नहीं हो जाता। वह नाना प्रकार की चेष्टाओं, हाव-भावों और मनोवृत्तियों के चक्कर में पड़ता रहता है। नायिका उसकी एक-एक गतिविधि बड़े ध्यान से देखती है। कभी-कभी नायक को बड़ी विषम स्थिति का सामना करना पड़ता है। 'नायिका-भेद' में जहाँ के एक नायिका की प्राप्ति के पश्चात् अन्य की प्राप्ति के लिए वेसुध रहने, रात्रि अन्यत्र बिताने आदि अनेक स्थलों पर नायिका के हृदय में परस्त्रीगमन की आशंका और सन्देह उत्पन्न किया गया है, वहीं नायिका पर नायक द्वारा परपुरुषगमन अथवा परपुरुष के ध्यान तक की शंका नहीं की गई और न ऐसे स्थल कहीं आए हैं। प्रतीत होता है, भारतीय नारी के लिए यह पग या स्थिति अकल्पनीय है। जहाँ कहीं नायिका ने ऐसा दुस्साहस किया भी है उसे 'गणिका' कहकर अधम कोटि की नायिका में रख कर हतोत्साहित किया गया है। त्याग, प्रेम, बलिदान, विह्वलता, उत्कटता, निश्छलता, एकान्त-प्रेम आदि सद्गुणों में 'नायिका-भेद' की नायिका जितनी आगे बढ़ी हुई है, नायक उतना नहीं। इसका कारण भी भारत में नारी-जाति की मर्यादा का उत्तरदायित्व ही समझना चाहिए।

मध्य युग में भारतीय नरेशों के वैभव के अंतिम दिनों तथा राजपूतों के उत्कर्षकालीन वातावरण में 'संस्कृत साहित्य' में नायिका-भेद संबंधी साहित्य प्रचुरमात्रा में बढ़ता गया। राजसभाओं में विलासी नृपतियों, रईसों का सहारा यही काव्य था। भारत की राजनीति में परिवर्तन की दीर्घ अवधि के पश्चात् अकबर के समय में इसी संस्कृत साहित्य की प्रवृत्ति

को हिन्दी कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण ही नहीं किया वरन् मुग़ल शासन के आगामी वर्षों में उसमें उन्नति होती गई। 'नायिका-भेद' में प्रेमी-प्रेमिका का ही वर्णन नहीं था वरन् शास्त्रीय ढंग पर उनकी कई कोटियाँ निर्धारित की गई। अनेक अवस्थाओं का वर्गीकरण हुआ। नाना मनोवृत्तियों एवं हाव-भावों की छानवीन हुई। एक भेद या प्रकार के मध्य विभाजक रेखा अत्यधिक स्पष्ट और सूक्ष्म रखने की चेष्टा की गई। पुनः उनके सूक्ष्म भेद, उपभेदों, लक्षणों की खोज में कवियों को कठिन माथापच्ची करनी पड़ी। इसके लिए केवल कवित्त शक्ति ही पर्याप्त नहीं थी वरन् उच्च कोटि के शास्त्रीय ज्ञान और दीर्घ अनुभव की भी आवश्यकता थी। यही कारण है कि नायिका भेद के कवि को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता था। नायिका के विभिन्न अंगों और अवस्थाओं के वर्णन का एक क्रम निश्चित किया गया। नायिका के विविध अंगों के क्रमशः सौन्दर्य-वर्णन को 'शिखनख' कहा गया। 'शिखनख' शब्द उच्चारण की सुविधा के लिए धीरे-धीरे 'नखशिख' कहलाने लगा। नखशिख वर्णन के अन्तर्गत वेणी, बिंदुली, नेत्र, नेत्र कटाक्ष, भौंहें, कज्जल, कपोल-तिल, अधरोष्ठ, अधरोष्ठ पर पान की लाली, दंतमिस्सी, वाणी, मुख, घूंघट, नख मेंहदी, रोमराजि, त्रिवली, कटि, हाथ, चरण, महावर इत्यादि उन पर सुसज्जित अनेक आभूषण और आभूषणों में तनद्युति का प्रकार समाविष्ट है। उसमें नायिका दीपशिखा के समान जगमगाती हुई ज्योति प्रतीत होती है यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस साहित्य में नारी के ही सौन्दर्य का अधिक चित्रण हुआ है, पुरुष के सौन्दर्य का बहुत न्यून। कवि ने स्वयं नायिका दूती और नायक के मुख से नारी-सौन्दर्य की चर्चा की है। पुरुष उसके अंग-प्रत्यगों की गठन और छवि पर मुग्ध हो जाता है। दूती भी जब कभी नायक से मिलती है तो नायिका के सुगठित सौन्दर्य-वाह्यांग के उपभोग की ही प्रेरणा देती है। सामन्ती जीवन में नारी का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं प्रतीत होता। वह पुरुष के लिए स्वच्छन्द कामोपभोग के लिए शरीर धारण किया हुआ एक प्राणी-विशेष है जिसका और कोई अस्तित्व नहीं है। उसके सुख-दुख, हर्ष-शोक सभी यहीं तक सीमित हैं, आगे उनकी गति नहीं है। पुरुष उसके हर्ष, प्रसन्नता और यौवन का साथी है, जीवन की शेष अवस्थाओं और अन्य परिस्थितियों के प्रति वह उदासीन और अनभिज्ञ है। गंग यद्यपि हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य के प्रारम्भिक समय के कवि थे तथापि रीतिकालीन कवियों की अधिकांश मूल

प्रवृत्तियाँ उनमें स्पष्टतः आ गई थीं। इसका मुख्य कारण संस्कृत साहित्य को आधार बना कर चलना था।

नारी के वाह् यांगों के चित्रण के अतिरिक्त उसकी अवस्थाओं, शारीरिक-मानसिक विकास के साथ-साथ विभिन्न मनोभावनाओं, वृत्तियों के अनुसार नायिकाओं के भेदोपभेद किए गए हैं। वयः सन्धि, अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, मुग्धा, नवोढ़ा, प्रौढ़ा आदि अनेक भेद उसकी अवस्था और शारीरिक विकास को ध्यान में रखकर ही हैं। सद्यःस्नाता, रतिश्रान्ता, उत्कण्ठिता आदि अन्य विभिन्न भेद उसकी पृथक-पृथक परिस्थितियों के चित्रण हैं। स्वकीया, परकीया, गणिका नायिका के उत्तम, मध्यम तथा अधम चारित्रिक गुणों पर आधारित विभाग हैं। संयोग-वियोग की विभिन्न परिस्थितियों में खड़ा करके उसके मनोभावों, तथा शारीरिक, मानसिक दशाओं के अनुसार उसे खंडिता, स्वाधीनपतिका, कलहांतरिता, प्रवस्त्य-त्पतिका, प्रोषित पतिका, आगत पतिका आदि भेदों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। सुरति, क्रीड़ा, आलिंगन, चुम्बन, दिवासुरति, विपरीति, सुरतांत आदि अन्य उसकी वासनात्मक दशाएँ हैं। इसके अतिरिक्त भी विरह विदग्धा की बहुत-सी मनोदशाओं तथा तदनुसार उनके नामों का इस प्रकार के साहित्य में खूब उल्लेख हुआ है। इन सभी पूर्वोक्त स्थलों पर कवियों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रण करने की चेष्टा की है परन्तु कहीं-कहीं उनके इन चित्रों में शास्त्रीय नियमों के आग्रह तथा आचार्यों के लक्षणों के पूर्ण निर्वाह न करने पर फटकार मिलने एवं परिपाटी से पृथक् होने के भय से उनकी स्वाभाविकता छिन-सी गई। प्रायः कविगण बँधे बँधाये बंधानों में ही उलझ कर पिष्टपेषण करते से दिखाई देते हैं। महाकवि गंग का पूरा साहित्य यद्यपि उपलब्ध नहीं हो सका तथापि जितना उपलब्ध है उसमें संयोग शृंगार का ही अधिक चित्रण है।

प्रेमी-प्रेमिका के मिलने से पहले अर्थात् पूर्वराग की अवस्था में प्रेमिका की तड़पन, विकलता, विह् वलता का बड़ा सजीव चित्रण शृंगारी कवियों ने किया है। इसे वियोग पक्ष के अन्तर्गत ही माना जाता है। मिलन के पश्चात् भी 'मान' की अवस्था में वियोग की सी स्थिति आ जाती है। नायिका मान अवश्य किए रहती है परन्तु यह स्थिति उसे कुछ अच्छी नहीं लगती। केवल आत्मसम्मान की रक्षा और नायक को बुरी टेव पड़ जाने के भय से वह मानिनी नायक को शिक्षा देना चाहती है। परन्तु वियोग से वह

छटपटाती रहती है। बेचारी दूती उसकी छटपटाहट को अनुभव कर नायक द्वारा मान-मौचन करवाती है। इस बीच अनेक ऐसे क्षण आते रहते हैं जबकि प्रिय का क्षणिक वियोग भी उसे भयंकर पीड़ा पहुँचाता है। जिस प्रिय के एकटक दर्शन लाभ में पलकों का व्यवधान भी असह्य होता है वही एक दिन किसी आवश्यक कार्य से अनिश्चित अवधि के लिए प्रवासी जीवन की तैयारी करने लगता है। प्रियतमा अथवा नायिका के ऊपर उसके प्रवास की सूचना मात्र से विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है। प्रिय को रोकने के सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं, वह हिमहता नलिनी के सदृश निराश असहाय होकर धरणी पर लोट जाती है और प्रिय के प्रवास की अवधि समाप्त होने की बेला की उत्कण्ठित नेत्रों से प्रतीक्षा करने लगती है। विरह विदग्धा दिन-दिन क्षीण होती जाती है, अन्त में तो मरण की भी स्थिति आ जाती है। भारतीय कवियों ने मरण की इस दयनीय स्थिति का चित्रण साहित्य की मर्यादा के बाहर माना है। वियोग में नायिका की विभिन्न मनोदशाओं का वड़ा ही स्वाभाविक, सजीव वर्णन हिन्दी कवियों ने किया है। उनकी प्रतिभा ने जितना स्वतंत्र विकास इस क्षेत्र में दिखाया है वह एक आश्चर्य का विषय है। गंग के विरह सम्वन्धी छन्द कम ही हैं फिर भी उनकी भावना तथा कला की छटा दृष्टव्य है।

संयोग शृङ्गार :

दरवार तथा राजसभा के आश्रित कवियों की रचनाएँ अधिकांशतः मुक्तक हैं। नरहरि के छप्पय, तानसेन के पद, ब्रह्म, गंग के कवित्त और सवैये, रहीम के दोहे तथा वरवै आदि मुक्तक रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। नरहरि, गंग दरवार के कवि और तानसेन दरवारी संगीतज्ञ थे। ब्रह्म और रहीम दरवार के विशिष्ट पदों पर आसीन थे और उनका जीवन दरवार के कार्य-भार से इतना दवा हुआ था कि उन्होंने संभवतः किसी प्रकार की प्रवन्ध-रचना का अवकाश ही नहीं मिला और न दरबार के अधिकारी वर्ग में उसे सुनने का धैर्य और सहनशीलता ही थी। समय रहने पर वे फुटकर रचनाएँ ही कर पाते थे। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में काव्य की किसी शास्त्रीय पद्धति का अन्धानुकरण नहीं किया है। उनकी कविता जीवन के नित्य प्रति के अनुभवों और उक्ति सौन्दर्य से अनुप्राणित है। भावाभिव्यंजन भी उनमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। अपने काव्य में गंग ने रीति सम्बन्धी कलात्मक प्रसंगों का बड़े कौशल से निर्वाह किया है।

शृंगार के दो मुख्य पक्षों अर्थात् संयोग और वियोग के अन्तर्गत उसकी सारी परिस्थितियों, अवस्थाओं और विशेषताओं को समेटने का सफल प्रयत्न शृंगारी कवियों ने किया है। शृंगार का स्थायी भाव रति है। प्रकृति, दूती, सखी, वस्त्राभरण आदि भावोद्दीपन करते हैं। आलम्बन की चेष्टाएँ आश्रय के रूप में भावों को बढ़ाने या उद्दीप्त करने में सहायक होती हैं। नायक नायिका की चेष्टाएँ हाव के अन्तर्गत आती हैं। किसी भाव के अनेक अनुभाव हो सकते हैं। गंग ने हावों और अनुभावों द्वारा भावाभिव्यञ्जन करवाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। रीति ग्रंथों में हावों को भी अनुभावों के अन्तर्गत ही गिना गया है अर्थात् सत्वावस्था में प्रथम विकार उत्पन्न होने के पश्चात् जो भाव का अल्प प्रकाश होता है, वही हाव कहलाता है। अतः स्पष्ट है कि आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव के अन्तर्गत आएँगी और आलम्बन की उद्दीपन के अन्तर्गत। गंग ने एक भाव के साथ अनेक अनुभावों की योजना की है, कहीं अनेक भावों के साथ अनेक अनुभाव भी व्यक्त हुए हैं। क्षण-क्षण परिवर्तित होने वाले संचारी भावों के द्वारा कवि ने बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया है। जिससे शृंगार रस की सटीक अभिव्यक्ति करने में वे सफल हो सके हैं।

विभाव में आलम्बन के रूप और उद्दीपक सामग्री जैसे सखी, दूती, आलम्बन की साज-सज्जा, रूप सौन्दर्य एवं प्रकृति इत्यादि आते हैं। मिलन और परिहास वर्णन भी इसी के अन्तर्गत हैं। मिलन में नायिका नायक की मिलनोत्सुकता से लेकर, आलिंगन, चुम्बन, रति, विपरीत रति, क्रीड़ा, सुरतांत, सहेट, अभिसार इत्यादि सभी प्रसंग सम्मिलित हैं। परिहास में सखियों और दूती का विदग्ध विलास, नायक-नायिका का विनोदपूर्ण वार्तालाप एवं क्रियाएँ आती हैं। गंग ने इनमें से अधिकांश विषयों का चित्रण किया है। उनके सभी वर्णन वस्तुपरक अधिक हैं भावपरक कम। साधारणतया सभी मध्यकालीन कवियों ने वस्तुपरक वर्णन को ही विशेष रूप से अपनाया है। इसके अन्तर्गत नायक-नायिकाओं के वाह्यांगों का स्थूल वर्णन किया गया है। स्थूलता के साथ ऐन्द्रिकता का चित्रण यत्र-तत्र मिलता है। शृंगार के मुख्य पाँच वर्ण्य माने गए हैं—रूप, उद्दीपन, अनुभाव, मिलन और परिहास। इन सबका परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। रूप वर्णन के अंतर्गत ही नखशिख वर्णन में मानव शरीर के विभिन्न अंगों और अभिरुचि के अनुसार सौंदर्य का मनोहारी चिणत्र हुआ है।

भारतीय काव्यधारा की एक बहुत बड़ी विशेषता रूप वर्णन में निहित है। संस्कृत साहित्य के लगभग प्रत्येक कवि ने रूप वर्णन को अपने काव्य का मुख्य अंग बनाया है। प्राकृत साहित्य भी इस प्रकार के रूप राग से भरा पड़ा है। हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति साहित्य में नारी सौन्दर्यानुभूति द्वारा अधिकतर अलौकिक सौन्दर्य की कल्पना की गई है। भौतिक वेश में उसे सर्वथा त्याज्य ठहराया गया है किन्तु शृंगार और रीति के कवियों में इस सौन्दर्या-नुभूति की आध्यात्मिक भावना का ह्रास-सा हो गया और इस पद्धति के निर्वाह में भौतिक सौन्दर्य का चित्रण ही कवियों का लक्ष्य बन गया। परम्परा में राधा-कृष्ण अब तक लौकिक नायक-नायिका का रूप धारण कर चुके थे। व्यक्तिगत रति को व्यक्त करना भारतीय साहित्य में मर्यादा की दृष्टि से अनुचित माना गया है। फलतः कवियों ने लौकिक रति को व्यक्तिगत न मानकर राधा-कृष्ण के नामों का आवरण लेकर उसे अभिव्यक्त किया है, रूप वर्णन के अंतर्गत मुख, कपोल, अधर, नेत्र, भृकुटी, नासिका, अधर चिबुक, ग्रीवा कुच, नीवी, स्कन्ध, भुजाएँ, नाभि, त्रिवली, कटि, जघन प्रदेश आदि अंग तथा नाना वस्त्र, आभरण की छवि चित्रित की जाती है। साहित्य में रूप वर्णन का दूसरा नाम नखशिख वर्णन है। नायिका की वेणी का वर्णन गंग के निम्नलिखित कवित्त में देखिए :

कचन की लकुट कि लसत कसौटी लीक,
मौरन की माल किधौं अग्रबास लेनी है।
कहै कवि गंग किधौं वारी कारी कादंबिनी,
दामिनी सी कामिनी ह्वै मिलिछबिदेनी है।
सुंदर सिंगार सूर-सुता की सी धार किधौं,
जोवन नदी धार कै सिवार सेनी है।
कराचोली काम की, कि शोभा करै स्याम की कि,
जिय ही की वैरिनि विराजमान वेनी[1] है॥

उल्लेख अलंकार में कवि ने वेणी का अनेक प्रकार से वर्णन किया है। नायिका के गौर वर्ण और छवि युक्त अंगों में 'बिंदुली' की अद्भुत शोभा देखिए :

अंग छबीले रह्यौ खुलि छीवरू, छीन सी लंक सबै छवि छीनै।
गंग कहे लहंगा लखि लाली को मोहनलाल भए गति हीनै।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १८५।

छूटी चुरी छुटी मोतिन पोति त्यों छूटी तनी अंगियाऊ रंगीनै ।
रंचक बंदन की बिंदुली सिगरेई, सिंगार बिदा करि दीनै ॥[1]

नायिका के भाल पर लगी 'बिंदुली' ने शृंगार के अन्य उपकरणों से सर्वोपरि स्थान पा लिया है ।

नेत्रों की चंचलता, विदग्धता, बांकपन, वेधकता आदि का साहित्य में यथेष्ट वर्णन हुआ है । सूरदास ऐसे भक्त कवि ने श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी के उत्कर्ष के लिए साहित्यिक जगत का एक भी उपमान बाकी नहीं छोड़ा । उनका एक भी धर्म चित्रित होने से नहीं बच सका ।[2] बड़े-बड़े नेत्र और उनमें भी श्वेतिमा के मध्य काली पुतली वाले नेत्रों की चपलता को देखकर कवि गंग उनकी मैन के तुरंग से उपमा देते हुए कहते हैं :

दीरघ ढरारे तहाँ डोरे रतनारे लगैं,
कारे तहाँ तारे अति भारे जो सुरंग हैं ।
कहै गुनि गंग जनु दूध ही सों धोए पुनि,
कोए बिकसित सित असित दुरंग हैं ।
पारद सरिस चार थिर में थिरकि जात,
तिरछे चलत मानो कूदत कुरंग हैं ।
खैंचे ना रहत अनुरागहूं के बाग वर,
मानिनी के नैन कैधौं मैन के तुरंग हैं ॥[3]

नेत्रों के प्रसंग में आलंबन और आश्रय के अनुभाव, संचारी भावों की छटा देखिए :

तन की बनक नहीं तनक कनक पूजै,
जोवत खनक जुवजन बिदलत हैं ।
आलस की चालदल मंजुल मराल लखि,
लोपनि विसाल उर साल से सलत हैं ।
कहै कवि गंग जुग कोए विगसित सित,
तैसेई असित तारे चंचल चलत हैं ।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १६४ ।
[2]सूर सौरभ, मुन्शीराम शर्मा ।
[3]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १६० ।

ऐसी छवि छाजत छवीली अंखियन मनों।
छीरधि के छीर में छपद उछलत हैं ॥[1]

नेत्रों के नाना व्यापारों से नायक की विचित्र दशा हो रही है। नायिका तो चली गई, परन्तु उसके साथ चार आँखें होने के फलस्वरूप नायक की विह्वल दशा देखिए :

झांकी झूमि झटित झरोखा तें झमिक वारी,
झिलमिल जोतिन सों झपि-झपि झोंकदार।
कवि गंग दरसत कलित कटाच्छ मानों,
सान धरे साइक बुझाइ विष फोंकदार।
गजब गुजारै म्यान कोरन सों काढ़ि मंजु,
होते जौ न पाहरन पलक पल रोंकदार।
मनमथ नेजे लौं करेजे कसकत अजौं,
नागरी के नवल उनींदे नैन नोंकदार ॥[2]

शृंगार रस के सम्पूर्ण अवयवों से परिपूर्ण निम्नलिखित कविता में कवि ने आलंबन के उद्दीपक अंगों की छटा तथा आश्रय पर उसका प्रभाव और उसके हृदय में अनेक भावों का उदय एवं उसकी शारीरिक-मानसिक स्थिति का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण किया है :

अधर मधूक से वदन अधिकानी छवि,
विधि मानो विधु कीन्हो रूप को उदधि के।
कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्‌यो,
वदन छपाइ सखियनि लीन्हों मधि के।
मारि गई गंग दृग-सर बींधि गिरिधर,
आधी चितवनि में अधीन कीन्हों अधिकै।
बान बींधि बधिक बधे को खोज लेति फिरि,
बधिक बधू ना खोज लीन्हों फेरि बधिकै।[3]

भौंहों, कटाक्षों और नेत्रों पर लगे काजल नायिका की द्युति को

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १९४।
[2]वही, छंद संख्या १९३।
[3]वही, छंद संख्या १९१।

द्विगुणित कर देते हैं। इनकी आकर्षक मुद्रा देखते ही बनती है :

भौंहैं कमान के बान कटाछन, आछी बनाइ करी विधि फोंकै।
ता पर कज्जल की द्युति रेख, सो गंग कहै निसिवासर झोंकै।
साजत अंग अनंग महासठ, भारत है विरहीजन चोंकै।
नाहर के निहुरे निहुरी, निहुरीं नहिं नारि के नैन की नोकैं ॥[1]

परम्परागत उपमान-विधान का ही कवि ने सर्वत्र सहारा लिया है। फिर उसमें रंगों की रमणीयता, भावों की विदग्धता आदि के संयोग से चित्र अधिक मनमोहक और सुन्दर हो गए हैं। नायिका के अधरों की लाली के लिए कवि को उसकी समता करने वाला कोई उचित उपमान ही नहीं जान पड़ता :

जावक सुरंग में न, ईंगुर के रंग में न,
इन्द्रबधू अंग में न रंग आनिवाल में।
बिंबफल विद्रुम विलोके बहु भांतिन के,
विलै जा न ऐसी छवि बंधुज विसाल में।
कहै कवि गंग लख ललना-अधर-लाली,
लाल बारि डारौं लाल भाँति रंग लाल में।
किंसुक रसाल में न, कुसुम किलाल में न,
गुंजन गुलाल में न गुललाला लाल में ॥[2]

दंतमिस्सी, वाणी तथा वाणी की कोमलता, वक्रता पर भी कवि ने अत्यन्त अलंकृत शैली में भावाभिव्यक्ति की है। प्यारी जू अर्थात् नागरी के मुख की शोभा के समक्ष संसार की सारी सुन्दर वस्तुएँ अथवा परम्परागत सौन्दर्योद्बोधक सभी उपमाएँ फीकी पड़ गई हैं..............अलंकार के अन्तर्गत कवि ने उपमानों की हीनता प्रदर्शित करते हुए नागर-नवेली के मुख की शोभा का चित्रण किया है। शब्दों की व्यंजकता और अलंकृत शैली की छटा दृष्टव्य है :

चांद कों कलंक दीनों, घनुष कों टेढों कीनो,
बानहू कों चूक, मृग पसुही दिसीजिए।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १८६।
[2]वही, छंद संख्या २०२।

कीर हाटहू विकात, विम्बहू न कोउ खात,
हीरा तौ हलाहल है, ईख रस लीजिये।
पंकज कों कांटे भारी, कोकिला तौ कीनी कारी,
सर्पन कों विष दुख दामिनी सुनीजिये।
कहै कवि गंग और अंगनि वसन छाए,
प्यारी जू के मुखहू कों कौन सोभा दीजिए।[1]

गंग के वर्णनों में अधिकांशतः सभी वस्तुपरक अलंकृत वर्णन ही आए हैं। भावपरक चित्रणों का अभाव प्रायः खटकता है। उन्होंने नायिका अथवा नायक के जिस किसी अंग का वर्णन किया है, उसमें एक ही के लिए अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और अन्य अलंकारों की झड़ी लगा दी है। सहृदय व्यक्ति अलंकार-योजना के लिए एकत्रित उपमान-विधान के चाकचिक्य में ही उलझ जाता है। अतिरंजनापूर्ण वर्णन में भी उन्होंने किसी अंग-विशेष के एकाध सौंदर्यात्मक गुण का संकेत करके झट से उसके चारों ओर अपनी अलंकृत शैली का ताना-वाना बुनना प्रारम्भ कर दिया है। फलतः जिसका वे सौन्दर्यवोध कराना चाहते हैं उसके संवंध में इतना तो पाठक जान लेता है कि वह अतीव सुन्दर होगा परन्तु उसकी सुन्दरता के अन्य गुणों के चित्रण के अभाव में उसका पूर्ण ज्ञान नहीं होता। निम्नलिखित छन्द में कवि ने मुख-छवि का वर्णन किया है। इसमें चित्रण की यही कमी दृष्टिगोचर होती है :

एक समै पून जोत ससि को उदोत भयो,
सुनि कै गहन लोग देखैं सवै धाइ कै।
जोति कीसी ज्वाल-वाल, इन्दु सो मुखारविन्दु,
कहै कवि गंग भै महल ठाढ़ी आइ कै।
चंद और चंदमुखी याहि गहि याही गहै,
ऐसें ही वचार राति सारी को विताइकै।
चंद भयो अस्त, चंदमुखी निज भौन आई,
राहु गयो गेह निज हिये पछिताह कै॥[2]

'जोति की सी ज्वाल वाल' के 'इन्दु सो मुखारविन्दु' के कारण इतना वड़ा झमेला खड़ा करके अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से उसकी सौन्दर्याभिव्यक्ति

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २०६।
[2]वही, छंद संख्या २०८।

करने की चेष्टा की गई है। बाला के चन्द्रमुख की कांति का केवल एक गुण इसमें आ सका, और कुछ नहीं। इसे कवि का कौशल-प्रदर्शन और अलंकार-प्रियता के अतिरिक्त और क्या कहा जाए। काव्य में ऐसे चमत्कार-प्रदर्शन और कौतुहलवर्धक छन्दों का अधिक महत्त्व नहीं है। काव्य केवल कलामात्र हो तब तो ऐसे कथनों में रमणीयता की आशा की जा सकती है, अन्यथा अभिव्यक्त तथा अभिव्यक्ति दोनों पक्षों का सन्तुलन नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त गंग में ऐसे स्थल भी कम नहीं हैं जहाँ उन्होंने बिम्ब ग्रहण कर समूचे वातावरण, परिस्थिति आदि का चित्रण करके सजीवता लाने का सफल प्रयास किया है। कुचों की कठोरता, मसृणता एवं सुन्दरता का वर्णन करते हुए नायिका के भरपूर सौन्दर्य का भावनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। देखिए :

एक समै जल आनन को घरतें निकसी अबला ब्रजरानी।
जाति सु कोल में डोल लिये जल खींचत में अंगिया मसकानी।
देखत वै छतियाँ उघरी कवि गंग कहै मनसा ललचानी।
हाथ बिना पछिताइ रह्यो यहि कारन डोल में हालत पानी ॥[1]

उपर्युक्त छन्द समस्यापूर्ति की शैली में लिखा गया प्रतीत होता है। एक घटना-विशेष का उल्लेख करते हुए नायिका के सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना करने की परम्परा भी पुरानी है फिर भी उसे प्रस्तुत करने का ढंग कवि का अपना है। सुन्दर, माधुर्यपूर्ण और चित्ताकर्षक रूप से सहृदय व्यक्ति आत्म-विभोर हो उठता है।

वर्ण्य-विषयों में भी कवि में कहीं नवीनता नहीं है। घूंघट, कुच, नखमेंहदी, रोमराजि, कटि आदि सभी परंपरित हैं। यह बात दूसरी है कि इन वर्ण्य-विषयों के अंतर्गत कवि ने कुछ नए चित्र प्रस्तुत किए, प्रस्तुत करने की शैली भी उनकी अवश्य अपनी है। तब रीति-काल के प्रारम्भ होने के लक्षण-मात्र ही प्रकट हो रहे थे, इस दृष्टि से इस क्षेत्र में उनसे रीतिकाल के शीर्षस्थ आचार्यों की सी विषय-प्रतिपादन-शैली, चित्रण की मौलिकता आदि की आशा करना उचित नहीं है।

नखशिख के अतिरिक्त साहित्य में नायिका के सौन्दर्य की पृथक रूप से चित्रण की आवश्यकता बनी रहती है। इसी को ध्यान में रखते हुए कवियों ने उसके सम्पूर्ण शारीरिक अंगों के चित्रण को विशेष महत्त्व दिया है। गंग

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २११।

इस रूप में अधिक सफल अभिव्यक्ति कर सके हैं। नायिका के सौन्दर्यपूर्ण अंगों का आह्लादक चित्रण उपस्थित करते हुए उन्होंने लिखा है :

चंपे के से चारु फूल चमकत भुजमूल,
देखो धौं दुकूल कैसो रूप उफनात हैं।
गंग कहै लोइन की अधिकै दमकै दुति,
कानन की ओर कों चकोर ललचात हैं।
माते हाथी की सी गति, राते सोने की सी दुति,
राते पाय देखियत कौल के से पात हैं।
मूंगा से अधर, दांत चमकत मोतिन से,
ऐसी ही वारिन के घाले घर जात हैं॥[1]

उपमान सभी परम्परामुक्त हैं तथ कवि ने उनकी सजावट में अद्भुत कमाल कर दिया है। भावोद्रेक के सारे साधन एकत्रित हो गए हैं। परिसंख्या और यमक अलंकार की चमक और भावों की गमक के बीच नायिका की अद्भुत सुषमामयी सजीव प्रतिमा गढ़ने निम्न छन्द में कवि को बड़ी सफलता मिली है। यहाँ अलंकार कलात्मक प्रदर्शन के लिए न होकर रस बोध में सहायक होकर आया है जिससे काव्यत्व की मात्रा में वृद्धि हुई है देखिए :

उरज कठोर, वाकी वानी न कठोर कछू,
मंद मंद गति होए, न मंदमति भाइयै।
जाकी भौंह कुटिल, हिय मैं न कुटिलाई कहूं,
उदर तौ छीन, न नितंब छीन छाइयै।
चंचल नयन धै ना चंचल चरित्र ताको,
कारे केसपास धै न कारे गुन गाइयै।
नाभि तौ गंभीर, पै गंभीर नारवन गेह,
कहै गंग कामिनी कहूंहि ऐसी पाइयै॥[2]

कवि नायिका के सौन्दर्य-सुख में इतना अधिक मुग्ध है कि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी प्राप्ति हो जाने पर कोई कमी नहीं रह जाएगी :

रूप दुति गंग अति, स्वाद को सुधा की गति,
बोलत वचन कीर, कोकिला, रसाल सी।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३८।

[2]वही, छंद संख्या ४१।

घाम माहि चंदन सी, पावक में बूंदन सी,
सीतकाल सीतहारी कासमीरी साल सी।
उई अरुनाई भली, पीली तरुनाई भूली,
मानो मिलि बेलि फूली चंपक गुलाल सी।
सत सुख देत प्यारी, सोहै तन सेत सारी,
उरसों लपटि जाति मालती की माल सी।[1]

इस प्रकार की पंक्तियों में वासनात्मक प्रेम का ही विशेष रंग प्रतीत होता है। नायिका की छवि प्रेमी को अत्यधिक बेसुध कर देती है। इसे वासनात्मक प्रेम इसलिए कहा गया कि प्रेमी-प्रेमिका के किसी आंतरिक गुण विशेष पर मुग्ध नहीं है और न उसकी किसी मनोभावना की ओर ही संकेत किया गया है। प्रेमी तो केवल रूप की द्युति, वचन की मधुरता, 'उदित तरु-नाई सेत सारी' और 'उर सों लपटि जात मालती की माल सी' की कामना से वासना की ज्वाला को लेकर 'मालती की माल' का आश्रय चाहता है। दरबार और राजसभाओं में ऐसे स्थूल ऐंद्रिय वर्णनों का खूब स्वागत होता होगा। सुख और ऐश्वर्य के आवश्यकता से अधिक भोग करने वालों के लिए इससे कम में संतोष भी कैसे हो सकता था?

लज्जा नारी का जन्मजात गुण ही नहीं वरन् पुरुष समाज में उसकी कांति को द्विगुणित करने वाली भी मानी गई है। लज्जाशील दृष्टि, कटि की क्षीणता, अंगों की सुगढ़ता श्रृंगारी कवियों के लिए वर्ण्य-विषय की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करती है। गंग ने निम्नलिखित छंद में नारी-सुलभ लज्जा का सुन्दर चित्रण किया है साथ ही कटि की क्षीणता का अतिशयोक्ति पूर्ण ढँग से कहने की कवि-परंपरा का निर्वाह भी :

जीत से बोल लजीली विलोकन, देखैं सुने जो गोपाल अरैगो।
गंग कहै कबहूं रति के भ्रम मानि मनोजुवो अंक भरैगो।
फूल के मूल के तूल कियो, कटि फूंक लगेहूँ ते टूटि परैगो।
अंग की ऊठ उटान सु जोवन, होठनि को रंग राज करैगो।[2]

कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण कथन इतने हास्यास्पद हो गए हैं कि

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ५२।
[2]वही, छंद संख्या ५७।

भावपक्ष की दृष्टि से वे खिलवाड़ से लगते हैं। कला की दृष्टि से उनका महत्त्व अवश्य है। देखिए :

गोरस न लेत कोऊ गोरो आंग देखि देखि,
गारी सब कोऊ देइ काको मुख गहियैं।[1]

इत्यादि कथन इस कोटि में आते हैं। नारी के प्रति सामन्ती दृष्टिकोण के लिए निम्न पंक्तियाँ पर्याप्त हैं :

कहै कवि गंग ऐसी सुंदरी न पावै कोई,
जौ पै सेवै सौं सौं जुग वेनी औ वनारसी।
आंखिन तैं इत उत न कीजै जनि एकौछिन,
राति कों रतन कीजै औस कीजै आरसी।[2]

उपर्युक्त छंद में नारी के वर्ण अथवा कांति पर कवि विशेष रूप से रीझा है। अंगों की सुगढ़ता तभी चित्ताकर्षक होती है जबकि उनमें गोराई भी हो। परवर्ती रीतिकाल के कवियों ने भी नायिका के वर्ण अथवा कान्ति की सर्वत्र चर्चा की है। एक अन्य छंद में पुनः कवि के शब्दों में नायिका के वर्ण की प्रशंसा देखिए :

केतिक सोने की डींडि, केसर सों मारी मींडि,
ऐपन की पींडि जोति चंपाहू लजायो है।
दामिनी दिया की दुति देखत लीन होति,
फूल पियावासे फूल को वरन विवरायो है।
कहै कवि गंग रिखि भूले हैं निरखि अंग,
ऐसो रंग कहाँ ते विधाता आनि नायो है।
गोरी गोरी पातरी प्रवाल की सी ओप ओंठ,
ऐसी को परस कान्ह पूरि पुन्य पायो है।[3]

मध्यकालीन जीवन में नारी केवल भोग का साधनमात्र समझी जाती थी। इसी दृष्टिकोण से नारी को भोगवादियों ने वासना-तृप्ति का एकमात्र साधन समझ कर उसके बहिरंग सौन्दर्य के भड़कीले स्वरूप की भूरि-भूरि

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ५३।

[2]वही, छंद संख्या ३६।

[3]वही, छंद संख्या ५४।

प्रशंसा की और सन्तों ने इसी को वैराग्य में बाधक समझ कर घोर निन्द-नीय ठहराया। इन दोनों के लिए नारी का व्यक्तित्व यहीं तक सीमित था। उक्त छंद इसी भोगवादी-भावना का प्रतीक है। 'कान्ह' उपाधिधारी नायक उस गोरी को पाकर अमित पुण्य लूटता था। नायिका के बहुविध रूप का वर्णन कर कवि ने अपनी सूझ-बूझ और निरीक्षण का पर्याप्त उपयोग किया है। साथ ही परंपरा और काव्य में प्रचलित उपमेय-उपमानों का सहारा लिया है। संयोग की स्थिति में आकर्षण का केन्द्र विशेष रूप से नारी ही रहती है, फलतः नारी सौन्दर्य का ही अंकन गंग ने अधिक किया है। नायिका-रूप-वर्णन के पश्चात् नायक के स्वरूप का चित्रण हुआ है। जिस प्रकार नायिका असाधारण सुन्दरी है, अमित साज-सज्जा, चातुर्य, माधुर्य, शालीनता, सहिष्णुता आदि गुणों से युक्त है, वहाँ नायक भी उसी के अनुरूप है। पुरुष होने के नाते थोड़ी-सी उच्छृङ्खलता, अधीरता, असहिष्णुता आदि कठोरताएँ अवश्य हैं परन्तु केवल सांकेतिक रूप में नायक वही 'कान्ह' अथवा 'मन मोहन' उपाधिधारी व्यक्ति हैं। उन्हीं के रूप का अंकन निम्न छंद में कवि के शब्दों में देखिए :

मृगहु तें सरस विराजत बिसाल दृग,
राजत न ऐसी छवि कौलहूं के दल मैं।
गंग हरि घन तन माँहि लसे पीत-पटु,
ठाढ़े द्रुम-छांह देखि ह्वै गई विकल मैं।
चल चित चाय परै सोभा के समुद्र बीच,
रही न संभार दसा औरे भई पल मैं।
मन मेरो गरुओ गयो री बूड़ि, मैं न पायो,
नैन मेरे हरुए तिरत रूप जल मैं।[1]

कान्ह के कुल को लेकर उसका परिहास भी सखियों ने खूब किया है। यह परिहास घृणा, हीनता अथवा द्वेष का परिचायक न होकर सम्बन्ध की निकटता, आत्मीयता और प्रेम का द्योतक है :

उत्तम जात न राजकुंवार, अहीर गंवार गऊन चरावै।
गंग कहै गुन वामैं है एक, जो आछे सुढार सों बेनु बजावै।
जेवरी सर्प को सांचो पिछानोरी, को कहि आपु ही रारि बढावै।
कान्ह भयो सखि चौथ को चंद, चितोत ही लोग करंक लगावै।[2]

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २८।
[2] वही, छंद संख्या २४।

'चौथ का चंद' प्रसिद्ध लोकोक्ति है। कान्ह और सखियों के स्नेह में चौथ को चंद द्वारा कलंक की उद्भावना करके कवि ने व्यञ्जनापूर्ण अभिव्यक्ति की है।

दरबार और राजसभाओं में समस्यापूर्ति का मान था। इसके अन्तर्गत किसी रमणीय शृंगारिक उक्ति अथवा अन्य किसी चमत्कारोत्पादक कथन की पुष्टि की जाती थी। गंग ने इस पद्धति के द्वारा भी नायिका के सौन्दर्य का अंकन किया है, देखिए :

अंग अंग में सार सुगंध लगावत, बास भलो चहुंधा महको।
करि साज सिंगार अटाज्यों चढ़ी, मुख देखन लालन को लहको।
गिरि कंकन एक पर्यों कर सों परि सीढ़िन सीढ़ी फिरै बहको।
कवि गंग कहै इक सब्दभयो, ठननं ठननं ठननं ठहको।[1]

नायिका-भेद के अनुसार स्वकीया, नवोढ़ा, वयः सन्धि, सुरति, मध्या, सद्यःस्नाता, क्रीड़ा, आलिंगन, चुम्बन, दिवासुरति, विपरीति, सुरतांत परकीया तथा अष्ट नायिकाओं यथा खंडिता, कलहान्तरिता, स्वाधीनपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका, आगत पतिका सभी का परम्परागत वर्णन किया है। उन्हीं के समकालीन एवं उनके आश्रयदाता अब्दुर्रहीम खानखाना की 'वरवै-नायिका भेद' नामक रचना में भी इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इनमें अधिकांशतः संयोग शृंगार के ही चित्र हैं। स्वकीया नायिका की नायक को एकटक दृष्टि से देखते रहने की अभिलाषा को पड़ोसी जनों के भय से बहुत आघात पहुँचता है। लज्जारूपी वड़वाग्नि प्रेम-समुद्र की बाढ़ में बाधक हो रही है। नायिका की मनोभावना उसी के मुख से सुनिए :

जो चितऊं तो रहे चित में चुभि याही तें भूलि न दीठि उठाऊं।
प्यारे गोपालहिं के बस वास कहां लगि आंचर आंखि दुराऊं।
गंग कहै हरि को मुख चंद बिलोकत ही भरि आनंद आऊं।
देखि सखी बड़वानल लाज ते प्रैम समुद्र न बाढ़न पाऊं।

धीरे-धीरे लज्जा का लोप हो गया। सखियाँ चाहती थीं कि वह अपने संकोच को समाप्त करे, हरि से खुल कर बातें होने लगें। सखियों की इच्छा तो पूरी हुई परन्तु नायिका अब इतनी ढीठ हो गई कि वह सखियों के

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ७८।

लिए समस्या बन गई। उसी की चर्चा करती हुई वे कहती हैं :

तब दुरि दुरि मुरि भाजि भाजि जाति हुती,
अब कहि कान्ह में हौंसि ही लपटावनी ।
तब तो पिया के नाम कानि मूंदि बैठति ही,
अब तो निडर भई सौतिन डरावनी ।
कहै कवि गंग तव अति दुख पावति ही,
अब कछु गयी काहू सकुच घटावनी ।
तब सतराति ही रिसाति जाही ताही सन,
अब तुम दोऊ एक हम की वटावनी ।[1]

सद्यःस्नाता के प्रसंग में कवि ने नारी के सर्वांग का चित्रण बड़े हृदय-ग्राही रूप में किया है। इससे उनकी चित्रण-कुशलता एवं प्रतिभा का पता चलता है :

रैंन समै रस केलि कियो अति भोर भये उठि मज्जन धाई।
नीर के छीर में देह डुबी जमुना जल में जैसे चंदकि छांई।
लै बुड़की जल से उभरी उरझी अलकैं मुख ऊपर आईं।
दुऔ कर केस संवारि लियो, निकस्यो रवि फोरि पहार के ताईं।[2]

केलि-क्रीड़ा, आलिंगन, चुम्बन इत्यादि संयोगावस्था के चित्रणों में यद्यपि कामुकता भरी पड़ी है तथापि सजीवता एवं वर्णन-चातुरी की दृष्टि से वे अनुपम हैं :

दंपति के अनुराग बढ्यो, रस रीति सों रैंन सबै बितई।
इत कान्ह तजै नहिं राधिका कों, उत राधिका ह्वै रही कान्ह मई।
अपनो अपनो मुख चूमत यों, उपमा उपजी कवि गंग नई।
किधों वारिज को मधु चंद पिये किधों वारिज चंद सुधा पिवई।[3]

संयोग के अंतर्गत कवियों ने विपरीति, रति, सुरतांत का भी वर्णन किया है। उस युग के शृंगारी वातावरण में व्यंग्यात्मक शालीन चित्रणों की

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ८६।
[2]वही, छंद संख्या ९३।
[3]वही, छंद संख्या १६९।

अपेक्षा घोर वासनात्मक, नग्न चित्रणों की माँग अधिक रहती थी। बिना इसके उस समय में रसिकों की तृप्ति ही नहीं होती थी। इन चित्रणों में वात्स्यायन का 'कामसूत्र' विशेष सहायक सिद्ध हुआ। गंग ने विपरीति, रति और सुरतांत दोनों का यथास्थान वर्णन किया है। बिना इसके सम्भवतः श्रृंगारी कवियों का चित्रण अधूरा ही समझा जाता होगा।

परकीया प्रेम दृढ़ता, निःस्वार्थता एवं निश्छलता की दृष्टि से सर्वो-परि माना गया है। वंगी वैष्णव शाखा के भक्तों और नन्ददास, इत्यादि ने भी परकीया के प्रेम, लगन, उत्साह, त्याग, सहिष्णुता एवं धैर्य की सर्वत्र सराहना की है और अपने आराध्य से उसी के सदृश अनुरक्ति और दृढ़ता की याचना भी। परकीया लोकभय या लोकलाज का तिरस्कार करके साहसपूर्ण प्रेम की एकनिष्ठता में लीन होने की क्षमता रखती है। रीतिकालीन कवियों ने उनकी लोक-लाज की भय से रक्षा करने के लिए दूती, सखी आदि को बीच में डाल कर प्रेम का लम्बा-चौड़ा क्षेत्र तैयार किया है। गुरुजनों, पड़ोसियों के बीच प्रेम के संकेतों का विस्तार से उल्लेख किया है। इस लोकभय और लोक लाज से बचने के लिए परकीया नायिका अभिसार के लिए सहेठ-स्थल में निकल पड़ती है। श्रृंगारी कवियों ने इस घटना का भी बड़े रोमांचकारी ढंग से वर्णन किया है। भयंकर और कठोर परिस्थितियों, मेघों की गड़गड़ाहट, बिजली की गड़गड़ाहट तथा भयंकर अंधकारमय रात्रि में नायिका की साहसपूर्ण अभिसार-यात्रा प्रारंभ होती है। नायक की प्रतीक्षा और प्रकृति का कोप दोनों उसे प्रेम-पथ से विचलित करना चाहते हैं परन्तु वह पीछे हटना जानती ही नहीं। दरबारी कवि प्रेम-तीव्रता को यदि कहीं दिखाने में कुछ सफल हो सके हैं तो इसी क्षेत्र में, अन्यत्र तो काम-क्रीड़ा का एकछत्र राज्य-सा है। सखी, दूती के उपालम्भों-परि-हासों की भरमार है और नायक-नायिका के विदग्ध विलास का उन्मुक्त चित्रण है। गंग की परकीया नायिका नायक से अपने प्रेम की दृढ़ता का परिचय देते हुए कहती है :

मेरी तेरी प्रीति को चवाव चहूं ओर भयो,
नेक नेक बातन सों मीत कहा डरिहै।
नैना जब लागे बिना लाग तो न ह्वै हैं अब,
प्रेम रस पागे जासों भागे कहा सरिहै॥
कहै कवि गंग जो भलाई तें बुराई ओढ़ी,

खोटी खोटी बातन ते प्रेम फंद-परि है।
तांत जब बाजी तब बूझ्यो राग साजी जहाँ,
दोऊ भए राजी तहाँ काजी कहा करिहै।[1]

'दोनों राजी तो क्या करै काजी' प्रसिद्ध लोकोक्ति है। कवि ने इस उक्ति का आश्रय लेकर बड़ी ही अर्थपूर्ण व्यन्जना की है। गुरुजनों के भय से नायिका नायक के प्रति अपने प्रेमपूर्ण कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर पाती। इसी की उसे बड़ी चिन्ता लगी रहती है। वह बार-बार सोचती है गोपाल (नायक) को लेकर अन्यत्र बस जाना अच्छा है परन्तु लोकलाज के मध्य रात-दिन पिसते रहना उचित नहीं :

पहचानत जानत लोग सबै, तिनके अति त्रास हिये कसियै।
तकिवे न चितै भरि नैन गुपाल मल कर ही मन में गसियै।
कवि गंग अकेले ही केलि समै, जिन की तजि लाज जहां हंसियै।
यह आवत है इन लोगनि ते, मन मोहन लै अनतैं बसियै।[2]

'मन मोहन' के प्रति अपार निष्ठा और त्याग की भावना प्रेम की दृष्टि से सराहनीय है। परकीया से निम्नकोटि का गणिका का प्रेम है। इसमें न तो दाम्पत्य जीवन का पवित्र वातावरण है, न गार्हस्थ्य प्रेम की निश्छलता है और न परकीया की सहिष्णुता, एकनिष्ठता और दृढ़ता ही। इसमें रूपजीवा नारी अपने सौंदर्य को बेचा करती है। मनुष्य में उसके सम्पर्क से अनेक चारित्रिक दोष आ जाते हैं। मध्यकाल में 'बहुपत्नी' प्रथा थी जिससे एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से संबंध होना साधारण बात थी परन्तु गणिका-प्रेम को किसी भी स्थिति में सहन नहीं किया गया। कवियों ने उसे बार-बार निरुत्साहित किया। उसे कच्ची प्रीत करने वाली, प्रेम का बहाना करके धन छीनने वाली अधमा नारी माना गया है। फिर भी परंपरा में उसका वर्णन सभी शृंगारी कवियों ने किया। इसके अतिरिक्त गोपीलीला, पनघटलीला, दान-लीला, वंशीलीला आदि लीलाओं का भी गंग ने परंपरा निर्वाह की दृष्टि से वर्णन किया है।

विप्रलम्भ शृंगार :

सुख के पश्चात् दुःख, संयोग के पश्चात् वियोग का क्रम जीवन में

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ९९।

[2] वही, छंद संख्या १७।

अबाध गति से चलता रहता है। एक दूसरे की विद्‌यमानता में ही दोनों का महत्व है। जीवन में एकांगीपन कभी भी सरसता का संचार नहीं कर सकता। सदैव एक रस रहने वाला अपने जीवन के एकांगीपन की शुष्कता से ऊब जाता है। किसी के जीवन में एकमात्र संयोग ही बना रहे तो उसके भीतर संयोग की मधुरता, रमणीयता के प्रति कोई आदर का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। वियोग प्रेमी और प्रेमिका की कसौटी है। संयोग में दोनों एक दूसरे को भूल से जाते हैं, नाना प्रकार के हास-परिहास में दोनों एक दूसरे पर अनेक व्यंग करते हैं। कभी-कभी नायक के थोड़े से अपराध पर ही नायिका रूठ कर भयंकर मान ठान लेती है। सखी दूती उसके मान को शांत करने में धरती और आकाश एक कर देती है। परन्तु वह मानिनी ऐसा कठोर हठ धारण कर लेती है कि पुनः जब तक नायक उसके पैरों में गिड़गिड़ा कर क्षमा-याचना नहीं कर लेता वह अपना व्रत जारी रखती है। संयोग के समय में मान के क्षणों में ही वह वियोग की असह्‌यता अनुभव करने लगती है परन्तु पुनः संयोग प्राप्त होने की अवश्यंभावी कामना उसे आश्वस्त किए रहती है। इसलिए यह स्थिति उसे अधिक दुर्वह नहीं प्रतीत होती। संयोग के क्षणों की जिस छोटी-सी भूल के लिए वह नायक को इतना कठोर दंड दे डालती है वही वियोग में नायक के बड़े से बड़े अपराध को क्षमा ही नहीं कर देती वरन् उसमें अपराध की भावना के आरोपमात्र पर उसकी आत्मा सिहर उठती है। वह रह-रह कर पश्चाताप की अग्नि में अपने को झुलसा डालती है। 'प्रोषित-पतिका, नायिका को प्रिय के अभाव में सारा संसार सूना-सा लगता है। संयोग में वह संसार की सारी विपत्तियों को प्रिय की मधुर छाया की ओट में हँसते-हँसते झेल लेती थी परन्तु जब उस 'हिमहता नलिनी' का एकमात्र सहारा भी उससे छीन लिया जाता है तो निराश्रित होकर तड़प-तड़प कर प्रेमपात्र की स्मृति में अपने अंगों की सम्पूर्ण ज्योति और कांति से हाथ धो बैठती है। उसके सौन्दर्य की सार्थकता प्रिय की विद्‌यमानता से ही थी। जब वही नहीं रहा तो किसके लिए हँसा, बोला और शृंगार किया जाए अथवा संसार में जीवित रहने की आवश्यकता ही क्या है। सुख-सुविधा के सारे साधन उसके लिए निस्सार और प्रकृति की सुरम्य क्रीड़ास्थली उसे उजाड़ और हृदय में काँटे के सदृश चुभकर पीड़ा उत्पन्न करते हैं। प्रेम की इस उच्च मनोभावना पर पहुँचकर, वासनामय जीवन का पंक धोकर वह निर्मल और निर्दोष हो उठती है। गंग जैसे कवियों के लिए इतनी ऊँची मनोभूमि पर पहुँचना कठिन नहीं था परन्तु जिस वर्ग के लिए वे काव्य-रचना कर रहे थे उनकी मानसिक

ग्रौर बौद्धिक स्थिति भी उनसे किसी प्रकार ग्रपरिचित नहीं थी। गंग ही क्यों रीतिकालीन जितने भी राज्याश्रित कवि थे सभी ने संयोग की ग्रपेक्षा वियोग का वर्णन न्यून मात्रा में ही किया है। उनके पाठकों, श्रोताग्रों में जीवन की इतनी गम्भीर पीड़ा को सुनने-समझने का साहस ग्रौर धैर्य नहीं था। वे तो संयोग के भड़कीले दृश्य चाहते थे। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि गंग से लेकर सभी रीतिकालीन श्रृंगारी राज्याश्रित कविगण वियोग की वेदना से भयभीत होने वाले पाठकों को वियोग की स्थिति का ग्रनुभव कराने में विजयी हुए। जहाँ वे एक ग्रोर सम्राटों, राजा-नवाबों, रईसों, उच्च राज-कर्मचारियों की मनोवृत्ति की ग्रोर मुड़े वहीं उन्होंने साहसपूर्वक उन्हें काव्य की उच्च भावभूमि पर प्रविष्ट कराने में ग्रपनी दक्षता का परिचय दिया।

काव्य साहित्य में विप्रलंभ के चार भेद माने गए हैं, (१) पूर्वराग, (२) मान, (३) प्रवास ग्रौर (४) करुणा। पूर्वराग प्रेमी-प्रेमिका के प्रथम मिलन के पूर्व की मिलनोत्सुक्ताजन्य ग्राकर्षण, एवं ग्रनिश्चय की ग्राशंका से होने वाली मानसिक पीड़ा है। इसमें दोनों का यह पूर्ण निश्चय नहीं रहता है कि वे एक दूसरे को प्राप्त हो सकेंगे। इस स्थिति में उनके मार्ग में ग्रनेक बाधाएँ पड़ती हैं। सबसे पहली बाधा तो यही होती है कि वे इस क्षेत्र से पूर्णतया ग्रनभ्यस्त ग्रौर नए होते हैं। उनकी सिधाई, भोलापन, ग्रज्ञता किसी भी क्षण गुरुजनों के समक्ष गुरुतर ग्रपराध का रूप धारण कर सकती है। गंग ने इस स्थिति का बड़े सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है :

सोचत नैन परै नहिं चैन सु रैन बिना मिलिबो चहिये।
जी न सुहाइ बिहाइ बिहाल, सो हाल यहै नित को सहिये।
बेरी के बास सो गात इतै, उत नेह गुपाल सों क्यों रहिये।
कैं जो मिलैं मन मोहन जू मन मोहन सों मन की कहिये।[1]

पूर्वानुराग में प्रेमिका नायक की प्राप्ति के लिए ग्रनेक प्रयत्न करती है। ग्रंत में उसे ग्रपने प्रयत्नों में सफलता मिलती है, नायक उसे प्राप्त होता है। संयोग में ग्रकल्पनीय सुखों की उसे तृप्ति होती है। धीरे-धीरे उसकी निश्चिन्तता बढ़ने लगती है। नायक को पूर्णरूपेण ग्रपने वशीभूत समझ कर वह ग्रपने मनमाने हठों की पूर्ति करवाती है। उसे स्वप्न में भी ऐसा नहीं

[1]कविवर गंग : जीवन ग्रौर काव्य, छंद संख्या २३७।

लगता कि उसका प्रेमी कभी उसकी इच्छा के प्रतिकूल आचरण कर सकता है। परन्तु हाय री भाग्य की विडंबना! कुछ समय पश्चात् उसे किसी प्रकार ज्ञात होने लगता है कि आजकल उसके प्रेमी की वृत्तियाँ कुछ चंचल हो गई हैं। उसमें पहले की सी एकनिष्ठता नहीं रह गई अर्थात् वह किसी अन्य स्त्री से भी छिपे-छिपे प्रेम करने लगा है। सौत-ईर्ष्या की भीषण अग्नि में वह झुलसने लगती है कि किसी स्त्री को क्या अधिकार है कि वह उसके भाग्य का बँटवारा करे। अधिकार-मद से चूर नायिका मान कर बैठती है। मानिनी का मान-भंग करने के लिए दरबारी कवियों ने नाना प्रकार के दाँव-पेंच दिखाए हैं। इसमें उन्होंने बड़ी तन्मयता से अपनी लेखनी का कौशल दिखाया है। मानिनी मान तो ठान लेती है परन्तु प्रियतम को क्षणमात्र भी अपनी आँखों से दूर रखना उसके लिए असह्य हो जाता है। स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह हठ किए रहती है। मन ही मन पछताती भी है। कवियों ने इसे भी विरह के अंतर्गत ही माना है। मान-भंग करने में चतुर सखियों और दूतियों से काम लिया गया है।

तारनि जान्यो वखान्यो चिरैयनि, चारहुँ ओर सुहाग तिहारो।
गंग कहै करि मान कहा रही, चाहत हौ ब कछ करिडारो।
कान्ह न जी है न जी हैं, न जी हैं, यहै ले उठ्यो हैं बड़ो अरु बारो।[1]
याही तै आली अलोकहि मेटिये, तातै करो हठ को मुंहुकारो॥

मान-भंग करवाने की एक अन्य युक्ति सखी के शब्दों में सुनिए :

आपुन पधारौ वलि दूसरो विचारौ जिनि,
हिले मिले नैक नेक सेंक सो सुहाइगो।
अंचरा की एंचाखैंची, अंगिया की नोचा खौंची,
छतिया की छुईछुवा छुटि मान जाइगो।[2]

मानिनी चाहती है कि उसके सम्मान की रक्षा हो और नायक अपनी भूल स्वीकार करे। अंत में उसकी इच्छापूर्ति होती है। सखी दूती के अथक परिश्रम के पश्चात् नायक नायिका के अनेक अनुनय-विनय करता है। मानिनी अपना मान समाप्त करती है। संयोग की सुखद घड़ी का शुभागमन होता है,

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २५८।
[2]वही, छंद संख्या २५४।

पुनः दोनों भोग के सागर में अबाध गति से निमग्न हो जाते हैं। एकाएक सखियों के गोल में नायक के प्रवास की चर्चा बड़ी तेजी से चलने लगती है। जिसके पलकान्तर वियोग से प्रेमिका दग्ध हो उठती थी, प्रवास की दीर्घ अवधि की अमंगलसूचक बात सुनकर विह्वल हो उठती है। गंग ने उसकी मनोव्यथा का ऊहात्मक वर्णन किया है :

बैठी ही सखिन मध्य पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग आगि भरकी।
गंग कवि त्रिविध सुगन्ध लै पवन बह्यो,
लागत ही ताकं तन भई विथा जुर की।
प्यारी कों परसि पौन गयो मानसर पहँ,
लागत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सिवार जरि छार भया,
जल जरि गयो पंक सूख्यो, भूमि दरकी।[1]

अंतिम दो पंक्तियों में कवि ने विरह को खिलवाड़ कर दिया है। गंग चाहते तो इसमें अधिक भावपूर्ण व्यञ्जना कर सकते थे। गंग का अधिकांश वियोग-वर्णन ऊहात्मक ही है। गंग ही क्यों सभी रीतिकालीन शृंगारी कवियों में इस प्रकार के उक्ति वैचित्र्यपूर्ण, चमत्कार-प्रधान कथनों की ही भरमार है। उदाहरणार्थ :

(१) नीचे तें उठाई नारि डीठि परी चंद तन,
आगि आगि आगि कै कै भाजि गई भौन में।

(२) डासन डसत आली वासर वितीत भयौ,
हियो हहरात अति, बात न सोहाति है।
विरह अगिनि अति, अंग अंग आंच बाढ़ी,
आंचर जो ढँप्यो त्यों त्यों छाती जरी जाति है।[2]

गंग ने पूर्वराग में गुण-श्रवण, रूप-दर्शन आदि के कारण मिलन की अभिलाषा और तत्सम्बन्धी जो तड़प या वेदना होती है, उसी का अधिक वर्णन किया है। पूर्वराग के चित्र-दर्शन और स्वप्न-दर्शनादि अन्य परम्परामुक्त

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १९९।
[2]वही, छंद संख्या १४०।

कारणों का वर्णन नहीं किया। मान के अन्तर्गत प्रणय-मान और ईर्ष्या-मान दोनों में प्रणय-मान का अधिक विस्तार से चित्रण किया है। पति के कार्यवश अथवा शापवश विदेश-गमन में प्रवास होता है। करुण विप्रलंभ में आशावादी दृष्टिकोण के कारण मृत्यु के उपरान्त भी मिलन की आशा बनी रहती है। विप्रलंभ के चारों भेदों में प्रवास ही प्रधान है। इसके भीतर नायिका-भेद में से प्रवत्सत्पतिका, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका, आगतपतिका आती हैं। इसी स्थिति में पत्रिका और संदेश का भी वर्णन आता है। गंग ने पत्रिका का तो उल्लेख नहीं किया परन्तु संदेश का उल्लेख किया है :

बैठी ही सखिन मध्य पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग आगि भरकी।[1] इत्यादि।

वियोग की एकादश दशाओं के अनुसार मध्यकाल में दरबारी रचनाएँ लिखी जाती थीं। इनका आधार नायिका की वियुक्तावस्था की विशिष्ट परिस्थितियाँ होती हैं। शास्त्रीय शब्दों में इन्हें 'काम दशाएँ' भी कहा जाता है। ये मुख्य एकादश मनोदशाएँ यथा अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण हैं। अभिलाष और चिन्ता पूर्वराग में भी मिलते हैं। प्रिय के मिलन की अभिलाषा और विघ्न पड़ने पर चिन्ता स्वाभाविक होती है। नायिका की अभिलाषा का कवि ने बड़ा मनोग्राही वर्णन किया है देखिए :

सोचत नैन परै नहिं चैन सु रैन दिना मिलिबो चहिये।
जी न सुहाइ बिहाइ बिहाल, सौ हाल यहे नित को सहिये।
बैरी के वास सो गात इतै, उत नेह गुपाल सों क्यों रहिये।
कैं जो मिलै मन मोहन जू, मन मोहन सों मन की कहिये।[2]

तथा

नभहू तें ध्रुव टरै, सीसी सों सुमेरु फूटै,
पै न छूटै प्रीत जो मैं हरि सों लगाईरी।[3]

चिन्ता :

कान्ह चले कहि आयो कछून, कंपी कदलीदल ज्यों थहरानी।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १३९।
वही, छंद संख्या ११९।
[2]वही, छंद संख्या २३७।
[3]वही, छंद संख्या २३८।
वही, छंद संख्या १२१।

सोचतहीं सब द्यौस गयो पुनि रात पुकारत राधिका रानी।
आई निवास कों ज्यों नित आवति, आंखिन में ते रह्यो झरि पानी।
गंग सु तौ फिरि फेरि फिरी नहिं, बूड़न के डर नींद डरानी।

प्रिय के दूर चले जाने से उसके अभाव में उसके संबंध में अनेक मधुर स्मृतियाँ आती हैं। विरहिणी के लिए इन स्मृतियों का वड़ा महत्व होता है। उन्हीं का स्मरण आते ही वह विह्वल हो उठती है :

स्मृति :

सीतल समीर अति फूंक सी लागत तन,
कोकिला की हूक हिये हूक हेलियत है।
तरल तमाल अवलोकत विसाल दुःख,
तैंसिये विरहज्वाल जाल फैलियत है।
आली जिहि ठौर केलि करी है कमल नैन,
तिहि ठौर अंसुवनरेल रेलियत है।
वृज बिररानो वृजवासी वृजराज बिन,
रही वृजरज सोई मुंड मेलियत है।[1]

गुण-कथन :

नायक-नायिका एक दूसरे के गुणों से आकर्षित होकर ही प्रेम-पाश में आबद्ध होते हैं। वियुक्तावस्था में उन गुणों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। विरहिणी अपने प्रेमपात्र के अनेक गुणों की याद करके अश्रुपात करती रहती है। इस अवस्था में पहुँच कर उसे प्रिय पात्र के सारे दोष भूल जाते हैं। केवल गुणों का चित्र ही उसके स्मृति-पटल में घूमा करता है :

कालिंदी के कूल कूल कुंजन की छाया मधि,
कोइल की कूकन करे जो जारियतु है।
दोहनी को नाम सुनैं दूनो दुख होत दई,
बांसुरी की सुधि आएं आंसू ढारियतु है।
कहै कवि गंग तुम दीनबंधु दीनानाथ,
एल्हो गोपीनाथ जनयों बिसारियतु है।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २७९।

गोधन की छाया में छिपाइ राखे छातीतर,
मेंह तें बचाइ अब नेह मारियतु है।[1]

उद्वेग :

नायिका प्रिय के वियोग में अत्यधिक उद्विग्न हो उठती है। प्रिय के शीघ्र लौटने की आशा क्षीण हो जाती है। अवधि के विशाल पहाड़ के लाँघने की हिम्मत वह हार बैठती है। उसकी शारीरिक और मानसिक अवस्था विचित्र-सी हो जाती है। उसके दैनिक व्यवहारों में भी प्रिय के अभाव में महान् अन्तर आ जाता है। संयोगावस्था की सभी सुखद वस्तुएँ दुःखद प्रतीत होती हैं :

तुम विन सूनी राति कारि सांपिनी ह्वै खाति,
रीती सेज देखे वाकी छाती उमगति है।
हा हा नेकु जाइ लेहु, कह्यो है तिहारो नेहु,
कोई ह्वै दिखाइ देहु गोरी ज्यों जगति है।
कहै कवि गंग कान्ह विकल इते ही मान,
नाज की कनाई जैसे करेजे रवगति है।
कोइल अलग डारि वोलत उहारी लगे,
उहउही जोन्ह जो मैं डाँस सी लगति है।[2]

प्रलाप :

प्रेमिका प्रिय के वियोग में शरीर की सुध-बुध भूल-सी जाती है। ऐसी अवस्था में वह नाना प्रकार के असंगत भाषण करने लगती है। कभी-कभी अपने ऊपर ही झुँझला उठती है और स्वयं को कोसने लगती है क्योंकि वह प्रियतम को वापस ला सकने में असमर्थ है :

धीर न धरति, धरी देखे बिनु जाति मरी,
ऐसी कछु करी, दियो धाइनि में नौन है।
सुधि बुधि टरी, मानो खाइ ठगवरी जीभ,
खरी अरबरी, न गहति क्यों हू मौन है।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २८४।

[2]वही, छंद संख्या १३२।

लाज परिहरी, खरी उघरी, न डरी काहू,
कहै कवि गंग समुझहि सखी सौं न है।
कौन ठेव परी, साठ्यौ धरी कहै हरी हरी,
पूछै सहचरी अरी हरी तेरो कौन है।

उन्माद :

इस अवस्था में प्रेमी-प्रेमिका विवेक शून्य होकर मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं वे अपनी विचित्र दशा में कभी एकाएक हँसने लगते हैं। कभी रोने लगते हैं और कभी किसी बात के उल्टे-उल्टे उत्तर देने लगते हैं। गंग ने प्रेमिका अथवा नायिका की उन्मादिनी स्थिति का चित्रण किया है। देखिए :

प्रान की पियारी सुख देन हारी भारी अति,
रूप की उज्यारी ऐसे मींड़ि मारियति है।
फूलनि की सेज मांझ फूलनि के धोखे जाति,
हेरे हू न पाइयति हेरि हारियति है।
कहै कवि गंग ऐसो जिय को कठोर सुनि,
वैरी कैंधौ एक बार वैर बारियति है।
देखौं धौ निकट ह्वै तिया के हाल हाय हाय,
नयो बटपार ऐसी बाट पारियति है।[1]

व्याधि :

यह रोग और वियोग से उत्पन्न मन का सन्ताप है। इसमें प्रेमी अथवा प्रेमिका को वेदना के कारण प्रस्वेद, कम्प, ताप, पीड़ा, दाह आदि का अनुभव होने लगता है। गंग ने अन्य सभी रीतिकालीन कवियों के सदृश व्याधि का सभी आंतरिक दशाओं में पर्याप्त वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए :

सीतल नीर समीर भयो अब, धीर धरौं कस के मम मीतल।
मीत लगै सर पंच मनोज के, घूमत घायल सी घर भीतल॥
भीत लगे सखि मारग जात, सुहात नहीं बिन प्यो जगतीतल।
तीतल बोल कलोल करें, लखि मो मन गंग कहो किमि सीतल॥[2]

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १३७।
वही, छंद संख्या १३५।
[2]वही, छंद संख्या १२८।

जड़ता :

इस स्थिति में पहुँचकर प्रेमी-प्रेमिका किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, वे अपनी सुध-बुध खोकर कुछ कर सकने में असमर्थ हो जाते हैं :

अंजन मंजन तेल तंबोल तजे, बिलखे बिनु हार हियो है।
बेंदी ललाट न बेसरि नाक, सिंगारनि को मनो भेंट कियो हैं।
गंग कहै नख ते सिख लौं पुनि सेंति को मान समेटि दियो हैं।
तेरे चले बिनु मोहन लाल, वे मान दृगीजिनि जोग लियो हैं।[1]

मूर्छा :

जब वेदना का वेग अत्यधिक तीव्र हो उठता है, प्रेमिका व्यथित हो संज्ञा को खो बैठती है। सखियाँ नाना प्रकार से औषधोपचार करके उसमें चेतना का संचार करती हैं। गंग ने मूर्छा का वर्णन नहीं-सा किया है। यद्यपि अनेक स्थानों पर इस दशा की ओर संकेत मात्र हुआ है। काव्य-शास्त्र में मरण-वर्णन निषिद्ध माना गया है तथापि कवियों ने मरणासन्न स्थिति का चित्रण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। हाँ, मरण अथवा मृत्यु का दृश्य न दिखाकर उन्होंने काव्यदोष से अपनी रक्षा कर ली है। गंग ने नायिका की मरणासन्न अवस्था की ओर संकेत किया है :

जा दिन कंत विदेश चले, गलहू न लगी परी चरना।
ता दिन ते तन ताप रह्यो मन झूर रही पिय को मिलना।
भूलि गयी सुख फूलि रह्यो दुख, नैन लगे गिरि के झरना।
कवि गंग यों नारि विचारि करैं, पिय के बिछुरे तैं भलो मरना॥[2]

इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों में गंग ने स्वतंत्र उद्भावनाएँ भी की हैं। वे प्रसिद्ध लोकोक्तियों द्वारा अपने कथन की सफल अभिव्यञ्जनपूर्ण पुष्टि करने में सिद्धहस्त व्यक्ति थे। जहाँ-जहाँ उन्होंने अपनी इस लोकप्रिय शैली का प्रयोग किया है, वहाँ उनका काव्य प्रभावयुक्त अभिव्यक्ति की सौन्दर्यपूर्ण छटा बिखेरने में किसी से पीछे नहीं है। इन स्थलों में उनके कथन में मोहकता, मर्मस्पर्शिता आदि अनेक गुण सहज ही में आ गए हैं। निम्न-लिखित सवैये में 'दुःख दूना होना,' 'गुन टूटे की नाव भई,' 'करिया बिन क्यों तरियै,' 'विधि ऐसी लिखी तौका करियै' आदि लोक-प्रसिद्ध उक्तियों के प्रयोग द्वारा कवि ने विरहावस्था की भावपूर्ण व्यंजना की है।

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १२०।
[2] वही, छंद संख्या १४६।

दुख दूनो भयो निसि वासर ते अलि रैन दिना दुख क्यों धरियै।
रिसे सूर सुखावत है उनके उत चंद उतै उलकै जरियै।
गुन टूटे की नाव भई अबकी बरियां करियां विन क्यों तरियै।
जरियै मरियै भरियै रस कै विधि ऐसी लिखी तौ कहा करियै।[1]

विरही जन जड़-चेतन का भेद-भाव भूल जाते हैं। एकान्त में जड़ प्रकृति से विरह निवेदन करना स्वाभाविक है। जब विरहीजन अकेले होते हैं तब प्रकृति ही उनके सुख-दुःख में हाथ बटाती है। 'विरहे तन्मयं जगत्' की काव्य-प्रसिद्धि के अनुसार भी इसका औचित्य महत्वपूर्ण है। विरही संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति सहानुभूति प्रकट करने लगता है, साथ ही वह उनसे भी यही आशा रखता है। गंग ने नायिका की इसी आंतरिक दशा का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है :

जल ढारि सनीचर गंग बध बिनवै कर जोरि सु पीपर सौं।
तरुदेव गोसाई बड़े तुम हौ, यह मांगति दीन ह्वै पी पर सौं।
आवन के दिन तीस कहे, गति औधि की ठोक तची परसौ।
भूलि गए हरि दूरि विदेस, किधौं अटके कहूँ पी पर सौं।[2]

विरहिणी के विरहविगलित हृदय का सादृश्य सभी रससिद्ध पुराने कवियों ने 'पीपल के पत्ते' से दिया है। पीपल से विरह-निवेदन करवाना कितना स्वाभाविक और व्यञ्जक हो गया है। 'घाव में नमक डालना' पीड़ित व्यक्ति को और दुःखी करने के लिए प्रयुक्त होता है। कवि ने नायिका की मानसिक स्थिति का चित्रण करने के लिए इसका प्रयोग किया है जिससे पाठक भाव-विभोर हो उठता है।

धीर न धरति, धरी देखे बिनु जाति मरी,
ऐसी कछु करी, दियो घाइनि में नौन है।
सुधि बुधि टरि, मानो खाइ ठगवरी जीभ,
खरी रवरी, न गहति क्यों हू मौन है।[3] इत्यादि।

प्रिय के प्रवास की सूचना पाकर संयोगिनी नायिका का सिहर उठना, वियोग में चिन्तित होना आदि उसकी मानसिक दशाओं के बहुविध चित्रण में कवि ने बड़ी सजीवता एवं स्वाभाविकता का समावेश कर दिया है। 'कदलीदल'

---

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १४५।

[2] वही, छंद संख्या १२७।

[3] वही, छंद संख्या १३७।

के सदृश प्रवास-सूचना से कंप होना और थहराना सचमुच बड़ा हृदय-द्रावक है :

कान्ह चले कहि आयो कछू, न कंपी कदलीदल ज्यों थहरानी।
सोचतही सब धौस गयौ पुनि, रात पुकारत राधिका रानी।
आई निवास कों ज्यों नित आवति, आंखिन में ते रह्यो झरि पानी।
गंग सु तौ फिरि फेरि फिरी नहिं, बूड़न के डर नींद डरानी।[1]

विरह में प्रेम-भावना की दृढ़ता, एकनिष्ठता कितनी पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, इसका शृंगारी कवियों ने विप्रलंभ के अन्तर्गत बड़ा ही उत्कृष्ट चित्रण किया है। सचमुच इस समय नायिका का धैर्य, साहस, त्याग एवं सहिष्णुता सराहनीय है। वह एकमात्र प्रेमी के लिए संसार के सारे प्रलोभनों, संबंधियों, गुरुजनों को मोह मुक्त कर प्रेम के क्षेत्र में लोकलाज का भय त्याग कर उतर पड़ती है। निन्दा-स्तुति की उसे चिन्ता नहीं रह जाती है। प्रेमिका की यह अद्वितीय त्याग-भावना और प्रतिज्ञा की कठोरता धन्य हो उठती है। प्रेम की आदर्श भाव-भूमि पर पहुँच कर कवि नायिका की अंतर्दशा का चित्रण करता हुआ उससे कहलाता है :

सुमिरत प्रीति रीति वृच्छ वन बीथिन की,
कैसे परमारथ को पंथ गहियत है।
वार वार आवत हौ विष ऐसी बातैं कहौ,
थोरो नहिं विछुरे को सोग सहियत है।
कहै कवि गंग कहा राखि के लगाए अंग,
याही अभिलाख हम लाखलहियत है।
कान्ह ही के साथ जौ पै जूआ सो जनम हार्यो,
कूआ परें ऊधो कहूँ वीचि रहियत है।[2]

नायिकाओं में कृष्ण के प्रति प्रेम की दृढ़ता इतनी अधिक बढ़ चुकी है, कि वे कृष्ण के अतिरिक्त और के प्रति अपनी निष्ठा रखने के लिए प्रेरित करने वाले की जीभ काटने को कहती है :

काटो जीभ जेहि जीभि ऐसो कहि आवै गंग,
कान्ह है बटाऊ बनी हम हूँ बटावनी।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १२१।

[2]वही, छंद संख्या २७८।

ऊधो यह सुधो लोग कहा जानैं कैसो जोग,
तिनही पढायौ क्यों न देहि जु पढ़ावनी ।[1] इत्यादि ।

क्योंकि—

गंग कहै जा मुख पियूख-पान कियौ ऊधौ,
ता मुख में कैसे विष फेरि पीजियतु है ।

इससे आगे वे कृष्ण के वर्ण पर व्यंग की चुटकी लेते हुए ऊधो को टालती हैं :

कारे कारे लोगन की बातें हम जान पाई,
आप भए राजा हमे जोग दीजियतु है ।

ऊधो और राधा-गोपी-संवाद की घटना को लेकर कृष्णभक्त कवियों ने विरहावस्था की बड़ी ही व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति की है । सूर का विप्रलंभ-शृंगार का मूल कथानक यही उद्धव-गोपी-संवाद है । गंग ने उद्धव को गोपियों के बीच खड़ा करके उक्त घटना का थोड़ा-सा संकेत कर दिया है । यद्यपि उन्होंने इसका संकेतमात्र किया है तथापि वही स्थल प्रेम की गंभीरता और मार्मिकता से युक्त है ।

वीर रस :

हिन्दी में वीरकाव्य लिखने की परंपरा बहुत प्राचीन है । मध्यकालीन राजाओं के आश्रय में अनेक बड़े-बड़े चारण कवि रहा करते थे । इनका परंपरागत व्यवसाय अपने आश्रयदाता की वीरतापूर्ण प्रशस्ति में काव्य-रचना करना होता था । चन्दबरदाई भी ऐसे ही कवि थे । वे अपनी प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास के बल पर अपने आश्रयदाता वीर हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज के शौर्य और प्रतापपूर्ण जीवन की घटनाओं का रोचक वर्णन करके वीर काव्य के क्षेत्र में अमर ख्याति प्राप्त कर गए । गंग भी मुग़ल सम्राट् और उनके प्रमुख राज्याधिकारी रहीम और मानसिंह ऐसे पराक्रमी वीर पुरुषों के आश्रय में रहते थे । उन्होंने स्वयं को भाट कहा है । राजा और सम्राटों का यशोगान करना उनका परंपरागत व्यवसाय था । उनके आश्रयदाता रहीम स्वयं उच्चकोटि के प्रतापी, वीर पुरुष थे । काव्य-सृजन की अद्भुत प्रतिभा भी उनमें थी । ऐसी परिस्थिति में जब कि वीरतापूर्ण यशोगान जिसका परंपरागत व्यवसाय हो और स्वयं आश्रयदाताओं में उच्च गुणों का समावेश हो एवं

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २८० ।

वही, छंद संख्या २८३ ।

कवि में सृजन की क्षमता प्रकृतिसिद्ध हो, उसके द्वारा वीर रस से परिपूर्ण काव्य-रचना स्वभाविक है। गंग ने जलालुद्दीन अकबर, अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल, महाराजा मानसिंह, दानियाल, रामदास उदावत, जगन्नाथ, कीर्तिसिंह, मिरजा भावसिंह, सलीम, मुकुटमणि, मंगदराय, दानशाह, मधुसिंह, जुझारसिंह, हाड़ा प्रतापसाहि, रामचन्द्र बवेला, दरावखाँ, तुराबखाँ, बदरजहाँ आदि की प्रशंसा में अनेक छन्दों की रचना की है। इनमें सबसे अधिक रहीम खानखाना और उनके पुत्र दानियाल का यशोगान किया है। अकबर, बीरबल, मानसिंह का स्थान इनके बाद आता है। शेष व्यक्तियों के संबंध में एक दो छन्द कहे हैं। ये सभी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। मध्यकालीन भारत के इतिहास के निर्माण में सभी ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। यह प्रशस्ति अधिकांशतः युद्धों की विजय का वर्णन होने के कारण वीर रस से परिपूर्ण है।

वीर रस के स्थायी भाव उत्साह का कवि ने बड़े सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है :

अब तो चढ़ते बढ़ते दल के, गढ़ कैसे रहै सु विचारिये जू।
हलकान के हाल हलावत ही, हिल्यो मेरु सु मूधर भारिये जू।
भनि गंग अकब्बर कौन पै कोप्यो सुज्वाल प्रतापहि जारिये जू।
धरनि धंसकै मरु लै न सकै, टुक धीरे सों ही पग धरिये जू।[1]

निम्नलिखित छंदों में रौद्र रस वीर रस का सहयोगी बन कर आया है। जिससे उसकी प्रभविष्णुता वढ़ गई है :

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन तें एक मानो सुखमा जरद की।
कहै कवि गंग तेरे बल की बयार लागे,
फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की।
एते मान स्रोनित की नदियां उमड़ि चलीं,
रही ना निसानी कहूँ महि में गरद की।
गौरी गह्यो गनपति, गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूंछि लपकि बरद की।[2]

उपर्युक्त छन्द में वीर का स्थायी भाव उत्साह, शत्रु पक्ष अर्थात्

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४१८।

[2]वही, छंद संख्या ३८९।

आलंबन की सेनाओं के रक्त से मिट्टी सन जाना आदि उद्दीपन हैं। आश्रय अर्थात् विजेतापक्ष की कृपाणों का चलना, झुकना, गजघटा का उमड़ना आदि अनुभाव हैं। शत्रुपक्ष का भयभीत होना, गौरी-गिरीश का त्रस्त होकर बैल पर सवार हो जाना आदि संचारी भाव हैं। वीर रस के सारे अवयवों से परिपूर्ण निम्नलिखित छन्द जो खानखाना की प्रशंसा में कहा गया है, महत्वपूर्ण है :

धमक निसान सुनि, धमक तुरान चित्त,
चमक किरान मुलतान थहराना जू।
मारू मरदान कामरू के करवान आदि,
मेवार के रान हिंदुवान आन माना जू।
पूरब भगान पछिमाध पलटान,
राध गुजरात देस अरु दच्छिन दवाना जू।
ओरवान, हवसान, हेहलान, रूम, साम,
खैल मैल खुरासान चढ़ै खानखाना जू।[1]

युद्ध के अंतर्गत अनेक बीभत्स दृश्य दिखाकर आलम्वन के शौर्य और पराक्रम का उत्कर्ष कवि ने अनेक स्थानों में प्रदर्शित किया है। इससे नायक के वीरतापूर्ण कृत्यों की असाधारण प्रगति सिद्ध होती है। गंग ने अनेक स्थानों पर इसका वर्णन किया है :

नवल नवाब खानखाना जी रिसाने रस,
कीने अरि जेर समसेर सर सरजै।
मांस के पहाड़ समसान करि राखे सत्रु,
कीने घमसान, भूमि आसमान लरजै।
स्रोनित की धार सों छुअत चन्द्रमा सों धार,
भारी भयो भेद रुद्र नगन के वरजै।
न्यारो बोल बोलत कपाल मुंडमाल न्यारी,
न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजै॥[2]

गंग के अधिकांश युद्ध-वर्णन, सुने-सुनाए और परम्परागत चित्रों के आधार पर ही प्रतीत होते हैं। तलवारें चलना, घोड़ों-हाथियों का हिनहिनाना, चिंघाड़ना, माँस के ढेर लगना, लाशों से भूमि का पटना, रुधिर की नदी में धरती

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४०२।
[2] वही, छंद संख्या ३६७।

का डूब जाना, मुंडमाल पहनाना, गौरी-गिरीश को युद्ध की भयंकरता से स्तम्भित दिखाना इत्यादि वर्णन मौलिक नहीं हैं। अनेक वीर रस के छंदों में तो उन्होंने विविध देशों, विविध वीर जातियों, अनेक प्रकार के वाहनों, अस्त्र-शस्त्रों के नाम गिनाए हैं और अपने आश्रयदाता का उन पर अधिकार बताकर उनका यशोगान किया है। मौलिकता, रोचकता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से नाम गिना देने मात्र से कवि का उत्तरदायित्व पूरा नहीं हो जाता। भले ही पाठक उसकी नाम गिनाने की शैली से प्रभावित हो जाए परन्तु वह भी स्थायी प्रभाव न होकर क्षणिक कौतूहलवर्धक ही होता है। गंग ने जो नाम गिनाए हैं वे भी अधिकांशतः ऐसे ही हैं। एक उदाहरण देखिए :

राजे भाजे राज छोड़ि, रन छोड़ि राजपूत,
रौति छोड़ि राउत, रनाई छेड़ि रानाजू।
कहै कवि गंग इत समुद्र के चहूँ कूल,
कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू।
पच्छिम पुरतगाल, कासमीर, अबताल,
खख्खर को देस, वाढ्यो भख्खर भगाना जू।
रूम, साम, लोभ, सोभ बलक, बदाऊँसान,
खैल मैल खुरासान खीझै खानखाना जू।[1]

अद्भुत रस :

इस प्रकार के वर्णन बहुत कुछ भट्ट-भणन्त अथवा दरवारी भाटचारणों के प्रशस्ति की कोटि के ही हैं। अधिकांश स्थलों पर आश्रयदाता के भय से शत्रु सेना के पैर उखड़ जाना, उनमें भय का अपार संचार हो जाना, उनके रक्त से भूमि का रंजित हो जाना, आश्रयदाता का विकट परिस्थितियों में भी अदिद्वतीय शौर्य का प्रदर्शन करना आदि ही वर्णित है। अद्भुत रस का कहीं-कहीं प्रसंगानुसार चित्रण द्रष्टव्य है :

चकति भंवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल–बन।
अहि फनिमनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन।
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति।
बहु सुन्दरि पद्मिनि, पुरुस न चहैं, न करैं रति।
खलभलित सेस कवि गंग भनि, अमित तेज रविरथ खस्यो।
खानखाना वैरम सुवन जि दिन कोपकरि तंग करयो।[2]

---

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४०२।
[2] वही, छंद संख्या ३९९।

दानवीरता :

गंग ने अनेक पौराणिक पात्रों को अपने आश्रयदाताओं से युद्धवीरत्व, दानवीरत्व, यश आदि में उनकी हीनता प्रदर्शित करके नायक का उत्कर्ष दिखाया है। युद्धवीरत्व के अतिरिक्त दानवीरत्व का यशोगान भी उनके सदृश आश्रित कवि के लिए स्वाभाविक ही था। अकबर की दानवीरता कीं प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं :

> नांउ लिये घर तें निकस्यो, कवि गंग कहै सह जान तिहारो।
> आइकै देख्यो है कल्पतरु, अरूकाम दुधा मर्निचिततिमारो।
> आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहूँ नहिं वारो।
> लोभ गयौ सिगरो चिततें अब ये भयौ दारिद छेदनवारो।[1]

असंगति अलंकार के द्वारा गंग ने रहीम की दानवीरता, विनम्रता और निरभिमानी स्वभाव का चित्रण निम्नलिखित दोहे में बड़ी अभिव्यञ्जनापूर्ण शैली में किया है :

> सीखे कहा नवाब जू, ऐसी देनी दैन।
> ज्यों ज्यों कर ऊंचे करौ, त्यों त्यों नीचे नैन।[2]

इस प्रकार प्रशस्तिगान के अंतर्गत वीर रस के अतिरिक्त अद्भुत, भयानक, वीभत्स और रौद्र रस का भी कुछ स्थलों पर चित्रण हुआ है जो अधिकांशतः परंपरागत और पिष्टपेषित-सा लगता है।

भक्ति-भावना :

मध्य युग में अकबरी-दरबार के बाहर कई श्रेष्ठ भक्त कवि भक्ति-भावनाओं का प्रचार कर रहे थे जिसका प्रभाव दरबार पर पड़े बिना न रहा। इसके साथ अकबर की ज्ञान और भक्ति सम्बन्धी जिज्ञासा तथा इबादतखाने (प्रार्थनागृह) के धार्मिक वादविवादों का भी यथेष्ट प्रभाव दरबार के कवियों पर पड़ा था। शृंगारिक तथा विलासमय वातावरण होते हुए भी उक्त विशेषता के कारण ही, दरबार के इन हिन्दी कवियों नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग आदि ने अपनी रचनाओं में राधा, कृष्ण, राम, शिव और अन्य देवताओं को आलंवन मानकर भक्ति-भाव का प्रकाशन किया है। इनके काव्य में ईश्वर की निर्गुणो-

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४१६।

[2]वही, छंद संख्या ३९१।

पासना संम्बंधी छंद तथा सगुण-भक्ति भरे गान दोनों मिलते हैं। इन्होंने भक्ति की जिन भावनाओं को अपनाया है उनमें उनकी तन्मयता, तल्लीनता तथा ईश्वर में अटल विश्वास की झलक मिलती है।

गंग ने कई सवैयों और कवित्तों में अपनी कृष्णोपासना तथा अन्य प्रकार की भक्ति-भावना के परिचय दिए हैं, इसमें अपनी दीनता, ईश्वर अनुग्रह-प्राप्ति, प्रेमगत उपालंभ का प्रदर्शन कवि ने स्पष्ट रूप से किया है। उन्होंने भगवान के लोक-मंगलकारी रूप का ही चित्रण अधिक किया है।

निम्नलिखित छंद में गंग की ईश्वर के साथ तादात्म्य-प्राप्ति सम्बन्धी विविध उपायों की व्यंजना मार्मिक और गहन है :

जो कहो मोहन जू मथुरा में तो मन्दिर में मढ़ई एक छाऊं।
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचौं अरु गाऊं॥
स्वांग अनेक करौं कवि गंग जु कैसुहु कान्ह तिहारो कहाउं।
काल गहे कर डोलत मोहि कछू इकबेर खुसी कर पाऊं॥[1]

उपर्युक्त छंद में भक्त की व्याकुलता उसके आध्यात्मिक प्रेम की द्योतक है।

भक्त भगवान के वल पर ही अपनी जीवन-तरणि भवसागर में छोड़ देता है। सागर के मध्य-स्थल में पहुँचने पर प्रवल वायु के झोंके उठते हैं। उसकी नौका डगमगाने लगती है। भक्त ईश्वर की विरुदावलि का अवलंव ग्रहण करके विलंब होने के कारण उलाहना देता है। कवि गंग ने इसी प्रकार का भाव वर्णन निम्नलिखित छंद में किया है :

दीनवन्धु दीनानाथ द्रोपदी पुकार कहे वेदन विदित कैंधौ विरह भुलानो है।
दुखित प्रहलाद जानि संकट सहाय भये भक्त के प्रताप को न गिनो रंक रानो है।
छांड़ि गजराज खगराज लाज काज धाये कहै कवि गंग कैंधौं पौरुष पुरानो है।
देह भयो दूवरो कि नेह तज्यो दीनन सों चक्र भयो भीतरोकि वाहनखुरानो है।[2]

भौतिक संसार की अभिवृद्धि के लिए मनुष्य के संपूर्ण अंग कार्यरत रहते हैं किन्तु रामनाम नहीं लेना चाहते, जो संपूर्ण परमार्थों का आश्रय है :

मेरो चेरो मेरो घोरो मेरो घूरो मेरो घर मेरो मेरो कहत न रसना अघाति है।
कहि कवि गंगु और ओरु जू आक वाक कहत कहत क्योंहु क्योंहु न रसाति है।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १२।
[2]वही ,, ,, ,, छंद संख्या ७।

चार्यो वेद चावति पढ़ति छम्रो दरसन नवरस निरूपति षट रस खाति है।
देखो देखो पुरविले पाप को प्रताप यह राम नाम लेत जीभ एंडीवेडी जाति है।[1]

उपर्युक्त कवित्त में भक्ति के अन्तर्गत पूर्व-कर्म-संस्कारों पर भी कवि की आस्था जान पड़ती है।

भक्त की दीनता और आत्मसमर्पण निम्नलिखित छंद में अवलोकनीय है :

कामिनी कमल नैनी करै न रहसि केलि कमला बिसासिनी विशेषि वामे दयोहै।
घर के रहत कोऊ घरि कौ न पूछै बात मानौ किंकिधा वन्धि सिंधु छौरछयोहै।
कहि कवि गंग तुम करुनानिधान कान्ह कोटि जो हों ऐवदार और द्वारभयोहै।
तुमहि कीये की लाज करे ही बनेगी राज गाहक ते गयो सो गुसाईंहू ते गयोहै।[2]

ईश्वर का अनुग्रह ही भक्त का सर्वस्व है। गंग ने ईश्वर के इसी अनुग्रह का वर्णन निम्नलिखित छंद में दिया है और पापियों का भी उद्धार करने वाले यश का स्मरण दिलाया है :

पढ़्यो गुन्यो कीर ना कुलीन हुतो हंस कुल छुयो गीध छुतिहा तो छाती छापेकियेतो।
तार्यो अजामेल जौन परम मलीन पापी सदा को सुरापीचरनोदकन पिये तो।
गंग कहै तारिनी के त्रास ते मुकुत कियो काली नाग कहां को तिलक मुद्रा किये तो।
धाये हरि लोक ते इकार सुनि पायक लों हाथी कहाहाथ तुलसीकी माला लियेतो।[3]

गंग ने गंगा-यमुना-महिमा का वर्णन भी स्फुट छन्दों में किया है। यह कवि की भक्ति का परिचायक है। इस प्रकार गंग के काव्य में भी भक्ति का परंपरागत रूप देखने को मिलता है। उन्होंने संसार के समस्त सुखों का यापन करते हुए भक्ति में अपनी आस्था प्रकट की है। उनकी भक्ति-भावना सूर-तुलसी की कोटि की नहीं थी।

नीति और उपदेश :

काव्य का उद्देश्य सत्य का प्रकाशन है और सत्य का उद्घाटन ही सच्ची शिक्षा है। भारतीय कवियों ने काव्य में 'स्वांतः सुखाय' और लोकोपकाराय, दोनों स्वरूपों के चित्रण अपनी रचनाओं में किए हैं। वस्तुतः महान आत्माओं का निज सुख समष्टि के सुख में ही अन्तर्हित रहता है और इस विचार से

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २१।

[2]वही, छंद संख्या १५।

[3]वही, छंद संख्या ५।

उनकी 'स्वांतः सुखाय' रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में लोकोपकारिता के गुण मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लोकोपकारिता के भावों से पूर्ण है। हिन्दी साहित्य में अधिकांश कवियों की रचनाओं में नीति-उपदेश संबंधी विषय का थोड़ा बहुत परिचय मिलता है। यह ठीक है कि इस प्रकार के काव्य में भावों की विभोरकारिणी अभिव्यंजना नहीं मिलती किन्तु उनमें मनुष्य की सहज अनुभूति के पूर्ण दर्शन होते हैं।

अकबरी-दरबार के कवियों के काव्य में नीति और उपदेश का विशिष्ट स्थान है। नरहरि, गंग के छप्पय और कवित्त तथा रहीम के दोहे इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कवियों की ये रचनाएँ केवल सुनी-सुनाई बातों पर आश्रित नहीं है। उनकी रचनाओं से प्रकट होता है कि उन्होंने अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के बीच मार्मिक अनुभूति प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त वह काल ही कुछ ऐसा था कि अवसर-अवसर पर सभी को शासक के उचित पथ-प्रदर्शनार्थ नीति और उपदेश से अवगत और उसमें कुशल होना आवश्यक था। इसीलिए दरबारी कवियों के काव्य में इसका विशेष पुट मिलता है।

गंग ने व्यावहारिक जीवन को सफल बनाने के लिए नीति और उपदेश संबंधी तथ्यों के कई स्थलों पर वर्णन किए हैं। राजनीति की ओर उनका कोई लक्ष्य ज्ञात नहीं होता। अपनी सूक्तियों द्वारा उन्होंने इस प्रकार के वर्णन को रोचक बनाने का भी यत्न किया है। कवि के ये तथ्य सवैये, कवित्त तथा कुछ स्थलों पर छप्पय छंदों में भी निरूपित हुए हैं।

निम्नलिखित छंद में कवि ने कई तथ्यों के निरूपण में समान धर्म के अवलंबन द्वारा शास्त्रीयता का परिचय दिया है :

ज्ञान घटे कोऊ मूढ़ की संगति ध्यान घटे बिन धीरज लाए।
प्रीति घटे कोउ गूंगे के आगे मान घटे नित ही नित जाए।
सोचु घटे कोइ साधु की संगति रोग घटे कछु औखदि खाए।
गंग कहै सुन शा अकव्वर पाप घटे हरि के गुन गाए।[1]

उपर्युक्त छंद में 'प्रीति घटे कोउ गूंगे के आगे' की उक्ति में कवि के प्रेम-मनोविज्ञान का परिचय मिलता है। प्रेम का विकास प्रत्युत्तर के अभाव में संभव नहीं होता। छंद में लौकिक तथा पारलौकिक दोनों के अभ्युदय की ओर संकेत किया गया है।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २९०।

अन्योक्ति रूप में कवि ने विश्वासघाती पुरुष का प्रभावशाली चि[illegible] किया है। सेमर देखने में सुंदर और गुणयुक्त जान पड़ता है किन्तु व्यवहा[illegible] बिल्कुल विपरीत रूप में प्रकट होता है :

देखत कै वृच्छन में दीरघ सुभायमान,
कीर चल्यो चाखिबे को प्रैम जिय जग्यो है।
लाल फल देखि कै जटान मंडरान लाग,
देखत बटोही बहुतेरो डगमग्यो है।
गंग कवि फल फूटें भुआ उघिरान लखि,
सवन निरास ह्वै कै निज गृह भग्यो है।
ऐसो फलहीन वृच्छ बसुधा में भयो यारो;
सेमर विसासी बहुतेरन कों ठग्यो है।[1]

गुणी व्यक्ति ही गुण-विशेष की पहिचान कर सकते हैं अन्य नहीं। [illegible] तथ्य का उल्लेख कवि ने कई छंदों में किया है। निम्नलिखित कवित्त में [illegible] का वर्णन है :

गुनी की रसना बीच बसना फुलेलन को,
बोले और खोले बिन कैसे कर जानिए।
जुरिहैं बिरादरी महीपन की चारु जहां,
गुनी औ गंवार तहां कैसे पहचानिए।
मोती मोती एक रंग मोल भांति भांति कहै,
जौहारी के आए बिन कैसे कर जानिए।
कहै कवि गंग देखो भंवर कुरेवा दोउ,
एक रंग डार बैठें जाति अनुमानिए।[2]

मनुष्यता की कसौटी वचन-रक्षा है और इस संबंध में ऐसी ही [illegible] समान उक्तियों का निर्वाह कवि ने निम्नलिखित कवित्त में किया है :

कुपात्र की प्रीति कहा खाद बिन खेत जैसे,
प्रीति बिन मित्र वाकू चित्रहू न आनिये।
मति बिना मर्द औरु नूर बिन नारी कहा,
अर्थ बिना कवि वाकूं पशु ज्यों प्रमानिये।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३३८।

[2]वही, छंद संख्या ३३४।

तोपैं बिन फौज कहा हस्ती बिन हौदा जैसे,
द्रव्य बिन देवे दान देवकर मानिये ।
कहै कवि गंग सुनो साहिन के साहि सूरा,
आदमी को तोल एक बोल में पिछानिये ।[1]

उपर्युक्त छंद में कवि ने 'अर्थ बिन कवि' की उक्ति द्वारा कवित्त के आदर्श अर्थ-गौरव का स्पष्ट रूप से संकेत किया है ।

गंग ने निम्नलिखित छंद में फूट के कुपरिणाम का वर्णन कर पारस्परिक प्रेम-भावना को जगाने का प्रयास किया है :

फूटि गये हीरा की कनी बिकानी हाट हाट,
काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो ।
टूट गई लंका फूट मिल्यो जो विभीषन है,
रावन समेत वंस आसमान को गयो ।
कहै कवि गंग दुरयोधन से छत्रधारी,
तनक में फूटे ते गुमान वाकै नै गयो ।
फूट ते नरद उठि जाति बाजी चौसर की,
आपसु के फूटे कहुं कौन को भलो भयो ।[2]

एक ही वस्तु जो एक के लिए गुणकारी है वही दूसरों के लिए अपकारी बन जाती है । कवि ने इसी तथ्य का सुंदर निरूपण निम्नलिखित छंद में किया है :

दाख बड़ो फल है सुखदायक, काग भखै तो महा दुख पावै ।
मिस्री अमोल बहोत मिठास में, जो खर खावै तौ प्रान नसावै ।
सीत बिना फल खाइ छुहारे तौ, ताते तुरंग को तेज नसावै ।
गंग कहै सुनि साह अकब्बर, सीख कुमानुष कों नहिं भावै ।[3]

कवि गंग ने इसी प्रकार मनुष्य जीवन की छोटी-छोटी बातों के सांगोपांग अध्ययन का समुचित परिचय अपने इन छंदों में दिया है । अनेक सूक्तियाँ जनप्रचलित भी हो गई हैं ।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३२७ ।

[2]वही, छंद संख्या ३३१ ।

[3]वही, छंद संख्या ३१६ ।

प्रकृति चित्रण :

प्रकृति में साहचर्य और सहानुभूति की भावना मानव के जन्म के स ही उत्पन्न होती है। सुख-दुःख की अवस्था में मनुष्य अपनी इच्छानुसार प्रकृ में अनुकूल परिवर्तन देखना चाहता है। उसमें इस भावना से संबंधित प्र वृत्ति चिरकाल से ही चली आ रही है। संयोग के क्षणों में प्रिय के सौन् के निरूपण के हेतु उपमान रूप में प्रकृति के उपकरणों से सहायता ली जा है। वियोग में प्रकृति का सौन्दर्यशाली होना कष्टकारक प्रतीत होता है। क वह उसे सान्त्वना देती हुई भी प्रतीत होती है, कभी उसे चिढ़ाती-खिझाती- लगती है। इस प्रकार प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, सहयोग, मैत्री आदि अनेकों भा प्रकृति के माध्यम से प्रकट किए गए हैं। रीतिकालीन शृंगारी कवियों में स ने प्रकृति का केवल उद्दीपन के रूप में ही वर्णन किया है। आलंबन रूप चित्रण अत्यल्प मिलता है। गंग जसे शृंगारी कवि भी प्रकृति से केवल उद्दी पन का ही काम ले सके। उससे आगे बढ़कर प्रकृति के अन्य रूपों पर प्रका डालने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। उद्दीपन के अन्तर्गत षड्ऋतु वर्णन परंपरा पुरानी है। उपमान के रूप में प्रकृति के उपकरणों का कविवर गंग अधिक प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है :

> विंब जैसे होठ विवि विधु सो वदन, प्रति,
> विंब ऐसी रंभा, रति रूप की न कनो है।
> कमल से नैन गंग मेनका तें आगरी है,
> मधुर बयन गरें सुधा संग सनी है।
> गोकुल के धनी पुरी पुन्यन बनी है तुम्हें,
> कहत न बनै कछु ऐसी वनी बनी है।
> जहां तहां रही फवि कसी है कुचन छवि,
> पान ऐसी छाती लंकपान की सी अनी है।[1]

और—

> चैपे कैसे चारू फूल चमकत भुजमूल,
> देखौं धौं दुकूल कैसो रूप उफनात हैं।
> माते हाथी की सी गति राते सोने की सी द्युति,
> राते पाय देखियत कौल के से पात हैं।[2]

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य।

[2]वही।

संसार में प्रायः देखा गया है कि संयोगीजन जिसे संयोगावस्था में आनन्दकारी समझते हैं वियोग में वह दुःख प्रतीत होता है, इसी की अभिव्यक्ति निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है :

कालिंदी के कूल कूल, कुंजन की छाया माघि,
कोइल की कूकन करेजो जारियतु है।
दोहनी को नाम सुनें दूनों दुःख होत दई,
बांसुरी की सुधि आएं आँसू ढारियतु है।[1]

उक्त छन्द में प्रकृति की सम्पन्नता विरहिणी के लिए विपन्नता का कारण बनी हुई है।

महाकवि गंग ने परंपरा-निर्वाह के लिए छहों ऋतुओं का वर्णन किया है परन्तु उसे इतनी शीघ्रता से समाप्त कर दिया है, जिससे प्रतीत होता है कि प्रकृति-चित्रण में उनकी वृत्ति अधिक नहीं रमी, वे जैसी तड़क-भड़क, राजसी ठाटम्बाट, विदग्ध विलास, चातुर्यपूर्ण दृष्टि और विशेष प्रकार की चाल-ढाल देखने के अभ्यासी थे, वह सब प्रकृति में उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ। यही कारण है कि षड्-ऋतु-वर्णन में कोई नवीन बात न कह कर पुराने आचार्यों का पिष्टपेषण ही कर पाए हैं। 'कान्ह' प्रयाण कर जाने पर 'प्राची दिशा' पिशाच की सी, पिकी का रोर 'कृपान की धारा, चन्द्रमा 'ज्वाला,' हंस 'सांप' के सदृश लगने लगे। गंग का सारा प्रकृति-चित्रण प्रायः इसी कोटि का है। उदाहरणार्थ :

टेसू करहरे मानो क्वैला अधजरे धरे,
क्वैलहाई कोइल करेजु भूने खाति है।
फूली वनवेली पै न फलिहौ अकेली तन,
एती गंग वेली ना सहेली न सुहाति है।
चक्रिन ह्वै चौंकी चंचरीकन की चौंप चारू,
राती कौंप देखि देखि छाती सौंपि जाति है।
आयो है जु अंत पै न जानौं तंत मंत कछौ,
कंत सों बसाति न बसंत सों बसाति हैं।[2]

गंग ने वर्षा ऋतु का वर्णन अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक किया है। वर्षा का वर्णन भी ऊहात्मक ही है। देखिए :

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २८४।
[2]वही, -छंद संख्या २२१।

बन के बरही बिरही जन के रिपु, बोलि नचे अपनी गतियां।
बिसुहे इषु ह्वै बुंदियां बरषैं, करकैं मनमोहन की बतियां।
कवि गंग छितीचुति छीन भई नव नींद गई नभ की रतियां।
अधरैन कों नीर घनो घुमर्‍यो, घन सों धमक्यो घनि की छतियां।[1]

शैली :

काव्य में भाव पक्ष, बुद्धि पक्ष का जितना महत्व है उतना ही अभिव्यक्ति पक्ष अथवा शैली का भी। यदि अभिव्यक्ति निम्न कोटि की होगी तो वह काव्य बोझिल और शुष्क हो जाएगा। दूसरी ओर केवल अभिव्यक्ति अथवा शैली ही उच्चकोटि की और भाव शिथिल होंगे तो वह भी काव्य-कोटि में न आकर केवल चमत्कार या कलात्मक कृति से अधिक महत्व प्राप्त नहीं कर सकेगा। तात्पर्य यह है कि दोनों में संबंध अन्योन्याश्रित है, एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता। उच्चकोटि के भावों के लिए उच्चकोटि की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करना कवि या कलाकार की सफलता का चरम रहस्य होता है। तुलसी के शब्दों में :

गिरा अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

यहां पर 'गिरा' और उसका 'अर्थ' दोनों से भाव और अभिव्यक्ति का ही अभिप्राय है। किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की सजावट और उनकी ध्वनि आदि शैली के अन्तर्गत आते हैं। सफल शैलीकार अवस्था, समय, और परिस्थिति के अनुसार भावों की सुन्दर व्यवस्था करने में पटु होता है। भावों के अनुरूप ही वह अपने शब्द भंडार से शब्दों को चुन-चुन कर प्रभावशाली योजना करता है जिससे शब्दों में बोलने की शक्ति आ जाती है। शब्द कितने ही प्रभावोत्पादक क्यों न हों, उनकी शवित और गुणों का परिचय तब तक नहीं मिलता जब तक वे वाक्य में सुचारू रूप से गुंफित नहीं किए जाते। अनवसर और व्यतिक्रम रूप में प्रयुक्त शब्द शक्ति और गुण अंतर्निहित होने पर भी अपनी विशेषता, सामर्थ्य और महत्व से रहित होकर सुरंग चूनरी में पड़े धब्बे के सदृश प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि शब्दों का प्रयोग बिरले पारखी ही कर पाते हैं। उनका यथास्थान प्रयोग होने पर वाक्य में अद्भुत जीवनी-शक्ति आ जाती है। ववता का आशय थोड़े में अधिक चमत्कारोत्पादक एवं गम्भीर अभिव्यवित से युक्त हो जाता है। अपने भावों को व्यक्त करने तथा दूसरों को उसकी अनुभूति कराने वाली पद्धति शैली

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २३३।

[2]रामचरितमानस : बाल०, छंद संख्या १८५।

या विधिविधान का नाम कला है।[1] काव्य का उद्देश्य रसानुभूति उत्पन्न करना ही है; केवल सौन्दर्यानुभूतिमात्र नहीं। कला का अभिप्रेत भी भारत में इस दृष्टि से सार्थक होता है।

मध्यकालीन दरबारी काव्य में कला का विशेष महत्व था। एक ही बात को कवि कितने प्रकार से और कितने रंगों में प्रस्तुत कर सकता है, इसी ओर रसिकों की दृष्टि प्रधान रूप से जाती थी। दरबारों और कवि-गोष्ठियों में कविता सुनाना साधारण कार्य नहीं था। उसके लिए व्यापक लोकानुभव, अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता पड़ती थी। सबके विषय प्रायः मिलते से होने पर भी कथन की शैली बड़ी रोचक और पृथक होती थी। यही कारण है कि रीतिकालीन राज्याश्रित साहित्य में शब्दों की गढ़न, काट-छांट, साज-सज्जा और प्रयोग बड़ी सतर्कता तथा गंभीरता से हुए हैं जिससे काव्य में अपूर्व कलात्मक सौन्दर्य आ गया है। कविवर गंग के काव्य में इन सभी गुणों का समावेश यथास्थान हुआ है।

सभी राज्याश्रित शृंगारी कवियों की रचनाएं मुक्तक रूप में मिलती हैं। इसका उत्तरदायी राज दरबार का वातावरण है। राजसभाओं में कथा-बद्ध प्रबन्धों को सुनने का न तो स्थान था, न अवकाश और धैर्य ही, यह पहले कहा ही जा चुका है। वहां तो थोड़े से समय में रसमग्न कर देने वाली संक्षिप्त और व्यंग्यपूर्ण रसीली उक्तियां ही श्रोताओं को रसमग्न कर सकती थीं। जिस रचना में चमत्कार और कौतूहल उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती थी उसका पूरा रसास्वादन करने का धैर्य भी सभासदों में नहीं मिलता था। फलतः कविगण मुक्तक-रचना-पद्धति ही अधिक पसन्द करते थे। चमत्कार-प्रवण काव्य में कवि को अपने व्यक्तिगत कौशल का प्रदर्शन करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है। मुक्तक-रचना-पद्धति में कविगण थोड़े ही में अधिक भावों, चेष्टाओं, क्रियाओं का गुम्फन करने के प्रयास में पूर्ण सफल हुए। साथ ही उन्होंने उसकी रसमयता की भी रक्षा की।

दरबारी साहित्य में नाद-सौन्दर्य का विशेष सम्मान होता है। सुन्दर श्रुतिमधुर शब्दों की योजना से पंक्तियों में एक प्रकार का मधुर स्वारस्य उत्पन्न हो जाता है। जिससे श्रोतागण उनके निनाद से मुग्ध हो उठते हैं। नाद-सौन्दर्य के अंतर्गत ऐसी ही शब्द-योजना की अपेक्षा होती है। मध्यकाल में हिन्दी का सवैया छन्द नाद-तत्व की योजना की दृष्टि से सबसे अधिक प्रिय था। सवैया और दोहा मुक्तक छन्दों में सर्वोपरि समझे जाते थे। इन

[1] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बिहारी वसिवभूति, प०

दोनों में भी सवैया का महत्व अपने श्रुतिमाधुर्य के कारण प्रधान था। दरबारों में जो हिन्दी कवि अपनी धाक बैठाना चाहते थे वे नादसौन्दर्य-प्रधान सवैया छन्द में ही अपना काव्यकौशल दिखाते थे। कला की प्रधानता के साथ ही नादतत्व के समावेश से छन्दों में संगीतात्मकता का सहज ही प्रवेश हो जाता है। नादसौन्दर्य की वृद्धि में वर्णमैत्री और शब्दमैत्री बहुत सहायक होते हैं। इन दोनों गुणों के समावेश से काव्य में रोचकता, रमणीयता तो आ ही जाती है, साथ ही कवि के शब्द प्रयोग की क्षमता का भी पता चलता है। गंग के निम्नलिखित छन्द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है :

राधिका रमैया, रंगभूमि को चवैया, भारी
भय को भजैया, कवि गंग उर लाइयै।
कंस को मरैया, बलबंस को धरैया, काली
नाग को नथैया, नाथ निसिदिन गाइयै।
अघ को हरैया, सुख वृन्दा को करैया, तिहुं
लोक को तरैया जिन बिन तनु ताइयै।
बलि को छलैया, बलभद्रजू को भैया, ऐसो
देवकी को छैया छाँड़ि, और कौन ध्याइयै ॥[1]

शब्द को चुनचुन कर सौन्दर्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में गंग कितने सिद्धहस्त थे, निम्न छन्द इसका साक्षी है :

लांक छुटै, लरिकाई घटै तैं निकाई कछू अधिकाई भई है।
गंग कहै लघु ग्रीव लसै, भुज सींव उरोजनि नीव दई है।
खेलनि, बोलनि, लाज, हंसी, रिस, चालि, चितौनि, मनोजमई है।
गोरी सी ग्वालि गुलाब से ओंठ गली ही में मारि गिराई गई है।[2]

गंग का प्रत्येक सवैया, प्रत्येक कवित्त नादसौन्दर्य का अनुपम उदाहरण है। प्रशस्ति के प्रसंग में, जहां युद्धों का वर्णन है, शब्दों में प्रसंगानुसार कर्णकटुता, प्रखरता आ गई है तथापि उनमें भी उनकी शब्द-साधना सराहनीय है। उनके समूचे काव्य में एक एक शब्द मोती के सदृश चमकता हुआ प्रतीत हो रहा है। शब्द-साधना का एक अनूठा उदाहरण देखिए :

---

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १
[2] " ४६

छन अंजत है, छन मंजत है, छन केस संवारित वैठी अटा ।
भली कोमल कंजकली हैं दूऔ कुच शोभित बीचही झीन पटा ।
कवि गंग भनै छवि का बरनौं इहि रूप विलोकिकै को न लटा ।
भरि केस लसै मुख पीत भलो उनई जनु चन्द पै स्याम घटा ।।[1]

प्रत्येक शब्द का स्थान और आकार निश्चित है। उसके स्थान में जरा सा हेर फेरकर देने पर उसकी रसमयता नष्ट हो जाएगी। कवि-प्रतिभा का चमत्कार इसी में निहित है।

शब्दों के द्वारा समूचे वातावरण का चित्र खींच देने में भी गंग बड़े कुशल थे। उनके शब्दों की चित्रात्मकता यत्र-तत्र उनके काव्य के सौन्दर्य को द्विगुणित कर रही है। गंग ने शब्दों के द्वारा चित्र ही नहीं खींचे वरन् उनमें सजीवता और स्वाभाविकता तथा अवसरोचित अन्तर्द्वन्द को प्रस्तुत करने में भी काव्य-दक्षता का परिचय दिया है :

गाढ़े गहो गहिर गुहारियौ बिसारि कियौ,
ए हो दीन बन्धु अब दीन कहूं दलिगयो ।
स्रवन भनक परे धायो कमला को कंत,
अस्त्र वस्त्र छांड़ि प्रभु वाहन बिचाले गयो ।
भनि कवि गंग ताके पाछे पच्छिराज धायो,
अतल सुतल तलातलहू बितलि गयो ।
जौ लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइवे कों,
तौ लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारू चक्र चलिगयो ।[2]

कवि शब्दों की योजना करता चलता है और चित्र की रेखाएं एवं रंग निखरते जाते हैं। उसे अपनी ओर से कोई स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। रीतिकाल के कवियों ने इस प्रकार की नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं के अनेक चित्र खींचे हैं। गंग में भी ऐसे चित्रणों की कमी नहीं है। निम्नलिखित छन्द में कवि ने नागरी के वस्त्राभरणों और उसकी चाल-ढाल का ही वर्णन नहीं किया है वरन् सुगन्धित पदार्थों की महक और कंकन का लुढ़कना उसकी ध्वनि का अनुभव भी श्रोताओं को करवाया है :

---

[1] कविवर गंग, जीवन और काव्य, छंद संख्या ५७।

[2] वही, छन्द संख्या ६०।

अंग अंग में सार सुगंध लगावत, बास भलो चहुंधा महको।
करि साज सिंगार अटाज्यों चढ़ी मुख देखन लालन को लहको।
गिरि कंकन एक पर्यो कर सो, परि सीढ़िन सीढ़ी फिरै बहको।[1]
कवि गंग कहै इक शब्द भयो, ठननं ठननं ठननंटहको।

अंतिम पंक्ति में ध्वन्यात्मकता की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। शब्दों में चपलता और चंचलता की द्योतक निम्न पंक्तियां उद्धृत की जा रही है:

सेज को नाम लिये सकुचे, सकवि गंग कहै न कही छविजाती।
सोने से गात, सलोने से नैन, अनूठे से ओठ, अछूती सी छाती।[2]

अर्थ-चमत्कार की दृष्टि से गंग के छन्दों को पर्याप्त मात्रा में उद्धृत किया जा सकता है। अर्थ-चमत्कार कई प्रकार से प्रकट किया जाता है। यह कभी श्लिष्ट पदों के द्वारा, कभी अन्वय के द्वारा और कभी वर्णों के प्रयोग कौशल से प्रकट होता है। निम्न छंद में 'पीपर' शब्द के प्रयोग वैविध्य द्वारा अपूर्व कलात्मकता का कवि गंग ने परिचय दिया है:

जल ढारि सनीचर यंथ वधू विनवे कर जोरि सु पीपर सों।
तरुदेव गोसाई बड़े तुम हो, यह मांगति दीन ह्वै पी परसों।
आवन के दिन तीस कहै, गति औधि की ठीक तची परसों।
मूलि गए हरि दूरि विदेस, किधों अटके कहूं पी पर सों।[3]

उक्तिवैचित्र्य पूर्ण कथनों के लिए गंग प्रसिद्ध ही हैं। उक्ति वैचित्र्य में चमत्कारप्रवण शैली द्वारा किसी कथन को प्रस्तुत किया जाता है। उक्ति में वैचित्र्य दिखाने की दरबारी कवियों में प्रायः होड़ लगा करती थी। साथ ही दरबार के लोगों के मनोरंजन तथा कौतूहल के उपशमन की सामग्री भी उसमें पर्याप्तमात्रा में रखने के कारण काफी मांग रहती थी। इसमें वैचित्र्य अधिक होने के कारण काव्य की गरिमा नहीं आ पाती, तथापि रोचकता और तात्कालिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से इसका महत्व है।

[1]कविवर गंग, जीवन और काव्य, छंद संख्या १५३।

[2]वही, छंद संख्या ७९।

[3]वही, छंद संख्या १२७

गंग प्रत्येक उक्ति में कुछ न कुछ वैचित्र्य का पुट देने का प्रयत्न करते हैं। देखिए :

इंदुमुखी निज मंदिर में गहि मौन रही रिसरीति बढ़ाई।
ताहि मनावन कों मन मोहन आपुन आइ सखी बहराई।
गंग प्रभाकर प्रीतम को मुख, नैनन की किरनैं उर आई।
माननि को बिकस्यो हिय कंज ज्यों, मान गयो उड़ि भौंर की नाई।[1]

गंग में काव्य के तीनों गुण पाये जाते हैं। भक्ति-पूर्ण छन्दों में प्रसाद गुण की छटा दर्शनीय है :

जौ कहौ मोहन जू मथुरा में तौ मंदिर में मढ़ई इक छाऊं।
जौ कहौ तौं तुलसी तन माल तमालन बीच नचौं अरुगाऊं।
स्वांग अनेक करौं कवि गंग जु कैसुहु कान्ह तिहारो कहाऊं।
काल गहें कर डोलत मोहिं कछू इक वैरखुशी कर पाऊं।[2]

शृंगार में प्रधान गुण 'माधुर्य' ही माना गया है। गंग के अधिकांश छन्द शृंगारिक हैं फलतः माधुर्य गुण-प्रधान शब्दों की योजना से उनकी रचना परिपूर्ण है। माधुर्य के लिए कर्णकटु टवर्ग, आकार आदि का निषेध किया गया है। गंग की काव्य भाषा व्रज अपनी माधुरी के लिए लोक-विश्रुत ही है। देखिए गंग माधुर्य गुण का संचार करने में कितने सिद्धहस्त हैं :

खोजि फिरयो मघवा नगरी, अरू नाग के लोकेन लों मति गच्छी।
तेरी सी आंकि तुही नहिं आनत काम की कामिनी तो सिर दच्छी।
सीस तें पांयन लौं सुरझ्यो कवि गंग सुलच्छन लच्छी।
पार न पात कछू न बिसात, भए जुग नैन जहाज के पच्छी।[3]

ओज गुण उनकी वीर प्रधान प्रशस्तियों में सर्वत्र व्याप्त है। अकबर, रहीम, मानसिंह के युद्ध-प्रसंगों में कवि ने इस ओज गुण की सुन्दर योजना की है। इसमें परुष, कर्णकटु, द्वित्वटवर्ग-प्रधान, पाकार वाले शब्दों का प्राधान्य रहता है। शब्दों में प्रवाह पर्याप्त मात्रा में होने से उत्साह की वृद्धि होती है :—

[1] कविवर गंग, जीवन और काव्य, छंद संख्या २६२।
[2] वही, छंद संख्या १२।
[3] वही, छंद संख्या ६६।

साह अकव्वर तो चढ़तैं रन, धक्ककडक्कहि आवत है।
कवि गंग विभीषण जंपत यों, कत को तिहुं लोक सिहावत है।
छोनी रहैं घुटि त्याइ कैं ता दिन, जा दिन तू चढ़ि धावत है।
लफि सीस कमटठ् की पीठ लगैं जलवाजैं सौं सेस बजावत है।[1]

उक्त छंद में ओजगुण और परुषावृत्ति के संयोग से पंक्तियां फड़कती सी प्रतीत होती हैं। काव्य की तीनों वृत्तियों—उपनागरिका, कोमला और परुषा का कवि ने प्रसंगानुकूल सुन्दर प्रयोग किया है। शृंगार में उपनागरिका और कोमला दोनों वृत्तियां आ गई हैं।

अभिव्यञ्जना की शैली में प्रभावोत्पादकता और व्यन्यात्मकता उत्पन्न करने के लिए कवि गण लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। इससे उनके व्यापक लोकानुभव और निरीक्षण का पता चलता है। काव्य को लोकप्रियता प्रदान करने वाला भी प्रधान गुण यही है। प्रसिद्ध लोकोक्तियों के द्वारा कविगण छन्द के एकाध चरण में ही अनिर्वचनीय आनन्द का संचार कर डालते हैं। एक साथ कई भावों को व्वक्त करने तथा उनकी पुष्टि के लिए कवियों ने इसका अवलंबन ग्रहण किया है। इतने अधिक परिमाण में लोक प्रसिद्ध उक्तियों के प्रयोग में सम्भवतः गंग रीतिकाल के कवियों में सर्वप्रथन होंगे यद्यपि उनकी रचनाएं बहुत ही अल्पमात्रा में अभी तक उपलब्ध हो सकी हैं। गंग की लोकोक्तियों के प्रयोग की दक्षता देखिए :

आंखिन तें इत उत कीजैं जनि एकौ छिन,
राति कों रतन कीजैं औस कीजैं आरसी।[2]

रात को रत्न और ओस को आरसी करना मुहावरों का प्रयोग करके कवि ने नायिका के सौन्दर्य की दीप्ति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

मारगिराना उक्ति का सुन्दर प्रयोग निम्नलिखित छन्द में देखिए :

खेलनि, बोलनि, लाज, हंसी, रिस चलि, चितौंनि, मनोजमई है।
गोरी सी ग्वालि गुलाव से ओंठ गली ही में मारि गिगइ गई है।[3]

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४१९।
[2]वही, छंद संख्या ३९।
[3]वही, छंद संख्या ४६।

इसमें श्री कृष्ण ग्वालिन के सौन्दर्य से मुग्ध होकर बेसुध हो गये हैं। उसका व्यञ्जनापूर्ण चित्रण किया गया है।

यौवन को हाथ में लिए फिरना अर्थात् पूर्ण यौवन प्राप्त कर निर्द्वंद्व होकर घुमने के लिए प्रयुक्त होता है। सखी नागरी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहती है :

नेक न नीचियै बैठति नागरी जोवन हाथ लिये भ्रमै ऊरी।
आधे लिलाट धरै लुगरा सु तौ झांकी न यातैं झरोखनि दूरी।[1]

'आंख में गड़ना' उक्ति को लेकर कवि ने अत्यधिक सौन्दर्यमयी नायिका को सखी द्वारा शृंगार करने का निषेध करती हुई चित्रित किया है। देखिए :

ऐसो संवारि सिंगार करै जनि, काहू की आंखिन में गड़ि जैहौ।[2]

मुहाविरे और लोकोक्तियों के प्रयोग सर्वत्र भरे पड़े हैं, कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

(१) कान्ह भयौ सखि चौथ को चंद, चितौतही लोग करंक लगावै।
(२) आंचर आंखि दुरावै।
(३) अब ही तौ नहीं बिब भौंह जुरी, अब ही दृग सों दृग जोरित हैं।
(४) रस औ विष को मिल घोरत है।
(५) डूबत हाथी हथेरी के पानी।
(६) दोऊ भए राजी तहां काजी कहा करि है।
(७) गुन टूटे की नाव भई अबकी बरियां करिया बिन क्यों तरियै।
(८) विधि ऐसी लिखी तौ कहा करिए।
(९) दीयो घाइनि में नौन है।
(१०) पोथी सी उघारिदेहौ रावरे पुरान की।
(११) काहे कों हमारे घाइ लौन घसियतु है।
(१२) जौवन के गए मांस कूकरो न खाइगो।
(१३) पानि में आग लगावै लुगाई।
(१४) नैसुक सास को त्रास न होतो तौ लेती अकास तें तोरि तरैयां।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ७०।
[2]वही, छंद संख्या ७६।

(१५) तातें करो हठ को मुंहुकारो।
(१६) त्यों अति ही अति मूंड चढ़ाई।
(१७) बारेंहि तें यह टेव सिखाई।

गंग की समस्यापूर्तियों का भी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। समस्या पूर्ति को साहित्य में कला माना गया है। गंग कलात्मक योजना के अंतर्गत अनूठे प्रयोग करने में सिद्धहस्त थे। उनके बहुत सवैयों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि वे समस्यापूर्ति की शैली से अत्यधिक प्रभावित थे। गंग की समस्यापूर्ति का एक उदाहरण नीचे देखिए :

जा दिन तें जदुनाथ चले, तजि गोकुल को मथुरा गिरिधारी।
ता दिन तें ब्रजनायिका सुन्दरि, रंपति झंपति कंपति प्यारी।
नैननि तें उनके सरिता भइ अंजन आंसु चल्यो वहि वारी।
गंग कहै सुन साह अकब्बर ता दिन तें जमुना भइ कारी।[1]

तथा

जा दिन कंत विदेस चले सखि, ता दिन तें वहु लागत जी को।
अंग सिंगार अंगार से लागत, माननि के मन लागत फीको।
सेज समै कमला भइ व्याकुल, सीस रह्यो लटको तरुनी को।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, नैनुके नीर में भीजत टीको॥[2]

छन्द

मध्यकालीन शृंगारी कवियों में जिन्होंने दरवारों में रहकर रचनाएं कीं, उनकी अधिकांश रचनाएं मुक्तक हैं, इसके संबंध में पीछे लिखा जा चुका है। मुक्तक शैली में एक ही छन्द के अंतर्गत सारा वातावरण प्रस्तुत करके काव्य-रचना की जाती है। जीवन अथवा प्रकृति की एक छोटी सी घटना या चित्र प्रस्तुत करके कवि को भावों की सारी योजना करनी पड़ती है। विस्तार एवं अपने कथन की पुष्टि का जितना अवकाश और स्थान प्रवन्ध शैली में मिलना है, मुक्तक शैली में उसका एक ही अंश सामने आ पाता है। इसमें भी कवि की कुशलता ही उसे सफल बना सकती है। मुक्तक शैली वड़ी परिश्रम साध्य है।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या १३०।
[2]वही, छंद संख्या १२९।

एक ही छन्द में भाव, भाषा, छन्द-अलंकार, रस आदि का सन्निवेश कर पाना साधारण कार्य नहीं है। गंग ने इसी मुक्तक-शैली में अपनी सृजन-प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। उनके प्रिय छन्द कवित्त और सवैया हैं। वर्ण मैत्री, शब्द मैत्री, नादसौन्दर्य संगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से वे दोनों छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। रीतिकालीन कवियों में दोहा छन्द बहुत प्रचलित रहा परन्तु दोहों में कवित्त और सवैयों से भी कम स्थान रहता है। श्रृंगारिक चित्रण के लिए गंग का प्रिय छन्द कवित्त ही है। प्रायः प्रशास्तिकारों ने कवित्त के आकार प्रकार के अनुसार उसमें अपने आश्रयदाता के यश के प्रशस्त वर्णन के लिए अधिक महत्व दिया है। गंग की प्रतिभा कवित्त और सवैया दोनों में समान रूप से प्रस्फुटित हुई हैं। साथ ही उन्होंने छप्पय, दोहा और सोरठा का भी प्रयोग किया है जिसमें दोहे और सोरठे बहुत ही कम हैं।

अलंकार :

सौन्दर्योद्दीपन और भावोत्कर्ष एवं अभिव्यक्ति- कौशल के लिए अलंकार कहीं तो सहज ही आते हैं और कहीं कवि उनकी योजना कर लेते हैं। इस प्रकार कुछ अलंकार स्वाभाविक होते हैं और कुछ प्रयत्नज। भाव और भाषा दोनों के सौन्दर्यवर्धन के लिए अलंकार आवश्यक होते हैं। भाषा की सौन्दर्य बृद्धि करने वाले अलंकार शब्दालंकार और भाव अथवा अर्थ में दीप्ति, प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने वाले अर्थालंकार कहलाते हैं। काव्य के शब्द और अर्थ दोनों में रमणीय उक्तियों के संगठन और रसबोध में अलंकार पर्याप्त सहायक होते हैं। कभी कभी सायास लाये गए अलंकार काव्य में पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए भी प्रयुक्त होते हैं जिससे काव्य के स्वाभाविक धर्म अर्थात् सहजता, सरलता, रसमयता में बाधा पड़ा करती है। इसमें कवि का पाण्डित्य और कौशल-प्रदर्शन ही प्रमुख हो जाता है और भावोद्बोधन गौण ऐसी रचनाओं को उक्तिवैचित्र्य प्रधान कहा जा सकता है जिससे दुरूहता, क्लिष्टता और दुर्बोधता आदि रसमग्नता में बाधक हो जाते हैं। भारतीय काव्य शास्त्रियों ने काव्य का प्रधान 'रस बोध' करना ही माना है। यही कारण है कि वे काव्य और कला में स्पष्ट अन्तर करते थे।

राज्याश्रित मध्यकालीन श्रृंगारी कवियों ने अलंकार-योजना की ओर विशेष ध्यान दिया है। दरबार में उक्तिवैचित्र्य और पाण्डित्य-प्रदर्शन के

अवसर प्राय: आया करते थे जिससे अलंकारों की झड़ी लगाने की होड़ लगी रहती थी। फलत: एक एक छन्द में एक से अधिक अलंकारों का समावेश करना उनके लिए साधारण बात थी। इन कवियों में शब्द-साधना उच्च कोटि की थी। शब्द-साधना के बल पर नाद-सौन्दर्य, वर्ण और शब्दों की मैत्री, माधुर्य, प्रसाद आदि गुण तथा शब्दों की काट-छांट बड़ी अनूठी है। शब्दों के इसी अनूठेपन से श्रृंगारी कवियों की रचनाओं में शब्दालंकार पर्याप्त मात्रा में आ गये हैं। शब्दालंकारों से श्रुति माधुर्यपूर्ण काव्य का सृजन सहज ही में हो जाता है। गंग ने शब्दालंकारों का यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

शब्दालंकार :

वृत्यनुप्रास :

बार बार बरनै को बरन निकाई सुनि,
बारक बरुनी फांसि मेरी दीठि फंगासी।
हांसी औ चितौनि दोऊ चित में चहकि रहीं,
चितौनी न चितौन सी हंसीयौ न हंसी सी।
तेरे प्यारे घर जात, घरीयौ न घर जात,
तू तो घर बसी उर बसी उरवसी सी।[1]

इसमें वृत्यनुप्रास के साथ ही यमक अलंकार की भी अंतिम पंक्तियों में मोहक छटा है—घर जात—घर नष्ट हो रहा है, न घर जात घर नहीं जाता, नायिका के पास बैठा रहता है, घर बसी-उपपत्नी; उर बसी-हृदय में बसी, उरवसी—उर्वसी।

श्रुत्यनुप्रास :

(१) सोलै सिंगार सजी अति सुन्दरि, रैन रमी सु पिया संग रानी।
ऊठि प्रभात मुखांबुज धोवत, टीको खिसी हथेरीं लपटानी।
गंग कहै सुन साह अकव्वर, डूवत हाथी हथेरी के पानी॥[2]
(२) लीजिये जू ललन लिवाइ लाई ललन कों।[3]

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ९६।
[2]वही, छंद संख्या १७९।
[3]वही, छंद संख्या ६५।
वही छन्द संख्या ६३।

मालानुप्रास :

काचन की कचपची, चुरिन की चमकनि,
छकनि की चाहनि चहक चित रही है।
कुचन की उंचन में अंचरा समाइ जात,
चामीकर चंपक तें रूरी रुचि गही है।
चपला सी लसी चलै चीर को चुनाव वन्यो,
चोवा की चुपरि चोरी चारु चहचही है।
गंग कहै चंदन चढाइ चंद्रमुखी ठाढ़ी,
चंदाऊ तें, चांदनी तें अति डहडही है।[1]

अन्त्यनुप्रास :

सभी तुकान्त छन्दों में अन्त्यनुप्रास स्वतः ही आ जाता है परन्तु गंग के अन्त्यनुप्रासों की अपनी अलग विशेषता है :—

पीन पयोधर, खीन खरी कटि, लोचन मीन प्रवीन तिया के।
सुकुमार सिवार से वार बड़े, दसनावलि मानो अनार बिया के।
गंग कहै खरे नीके खए खगि, बेठिगए मुहरी अंगिया के।
सुबिचारि रचे बिधि मेरे ही जान मनोरथ कान्ह तिहारे हिया के[2]।

इसमें छेकानुप्रास और अन्त्यनुप्रास दोनों साथ साथ आये हैं।

यमक :

'जमना' शब्द को लेकर कवि ने शब्द क्रीड़ा का बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

(१) जमनाजल नैन निहारत ही जमना, जमना, जमना, जमना[3] ॥
यहां पर जमना के जल को आंखों से देखने पर यम जम नहीं सकता अर्थात टिक नहीं सकता है।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ६३।
[2]वही — — छंद संख्या ३०
[3]वही — — छंद संख्या १९

श्लेष—

काकु वक्रोक्ति—

कारे कारे लोगन की बातें हम जान पाई,
आप भए राजा हमें जोग दीजियतु हैं[1]।

इसमें व्यंग्य है, पर उक्ति की वक्रता के कारण अर्थ है कि कृष्ण बड़े चालाक बनते हैं, स्वयं राजा बनें और गोपियों को योग की शिक्षा देकर उनको विरत करना चाहते हैं।

पुनरुक्ति प्रकाश—

एक ही शब्द को कई बार दुहराने से कभी-कभी काव्य में अद्भुत रमणीयता आ जाती है, भावों में बल देने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है, देखिए :

(१) मेरो चेरो, मेरो घोरो, मेरो धूरो, मेरो घरू,
मेरो मेरो कहत न रसना अधाति है।[2]
(२) तब दुरि दुरि मुरि भाजि भाजि जाति हुती।[3]
(३) तोरि तोरि तामरस घोरि घोरि घनसार,
काठी सेज बोरि बोरि कहां लौ बखानियै॥[4]

पुनरुक्तिवदाभास—

जल ढारि सनीचर पंथ वधू बिनवै कर जोरि सु पीपर सों।
तरुदेव गौसांई बड़े तुम हों, यह मांगति दीन ह्वै, पी परसों।
आवन के दिन तीस कहे, गति औधिकी ठीक तची परसों।
भूलि गए हरि दूरि विदेस, किधों अटके कहूं पी पर सों[5]॥

इस छन्द में 'पीपर' शब्द की बार बार पुनरुक्ति हुई है परन्तु प्रत्येक पंक्ति में उसका अर्थ पृथक-पृथक है।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २८३।
[2]वही, छंद संख्या २१।
[3]वही, छंद संख्या ८५।
[4]वही, छंद संख्या १३३।
[5]वही, छंद संख्या १२७।

अर्थालंकार

जहां अर्थ में विशेष चमत्कार हो वहां अर्थालंकारों का समावेश रहता है। गंग में प्रधानतः निम्न-लिखित अलंकार पाये जाते हैं :

सादृश

(१) रूप दुति गंग अति, स्वाद कों सुधा की गति,
बोलत बचन कीर कोकिला रसाल सी।
घाम माँहि चंदन सी, पावस में बूंदन सी,
सीतकाल सीतहारी कासमीरी साल सी[1]।

(२) ढेल से ढरारे नैन, बेल से कठिन कुच,
बैंले के फुलेल भीजीं अलबेली अलकें[2]

सादृश्यमूलक अलंकार गंग ने स्थान-स्थान पर नायिका के सौन्दर्य के उत्कर्ष तथा वियोग में उसकी व्यथा के अतिरेक के लिए प्रयुक्त किये हैं।

उपमा :

(१) कंचन के करसे कुचमंडल, देखत गंग ठगोरी सी लावैं।
साप सो लाक, असीसि सी आंखि, सु ऐसी अहीरी गुपालहि भावैं[3]।

इसी प्रकार की उपमाओं को कवि ने नायिका के रूप-सौन्दर्योत्कर्ष के चित्रण में पर्याप्त प्रयोग किया है। गोपिकाओं की निम्न उक्ति में उपमा का चमत्कार द्रष्टव्य है।

(२) कान्ह ही के साथ जो पै जूआ सो जनमें हारयो
कूआ परे ऊधो कहूं बीच रहियत है[4]।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ५२।
[2]वही, छंद संख्या ३६।
[3]वही, छंद संख्या ६०।
[4]वही, छंद संख्या २७८।

अनन्वय —

(१) साहिबी की हद्द तू ही साहिब सुमति तू ही,
साह को सुहेलो तू ही संपति को धाम है ।
तू ही दान, तू ही जान, बलवीर खान तू ही,
तू ही ललनान उर लागत ललाम है ।
कहै कवि गंग है अकेलो जान्यो खानखाना,
ऐसे खाये खरचे खजाने खोले काम है ।[1]

(२) वीर बली नृप तेरी बराबर, और बिरंचि न दूजो बनायो ।
साहू के सोच, सिवा हूं के सूल, सचीहू के साथ सपूत न जायो ।।[2]

रूपक :

(१) कहै कवि गंग तिहूं भुवन उवन लागी,
तेरी तेग पातिसाहि तेज की दुपहरी[3] ।।

(२) कामधेनु और कल्पवृक्ष के रूप में अकबर की दानवीरता की प्रशंसा--
नाउ लिये घर ते निकस्यो, कवि गंग कहै सह जान तिहारो ।
आइके देख्यो है कल्पतरू, अरू, काम दुधा मनिचिंचति मारो ।
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै, कबहूं नहीं बारो ।
लोभ गयो सिगरो चित से, अब ये भयो दारिद छेदनबारो ।[4]

रूपक के अन्य अनेक भेद भी यथा स्थान उनके काव्य में विद्यमान है :

मालोपमा :

मान से, ममोला से, मयंक मृगछोना ऐसे,
नैन पुतरीन अलि सावक बिसेखे हैं ।

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३९३ ।

[2]वही, छंद संख्या ३७५

[3]वही, छंद संख्या ४०५

[4]वही, छंद संख्या ४१६

स्वेत स्वामताई वीच डोरे ना अरून ऐसे,
मानहु विचित्र चित्र मदन के रेखे हैं।
धुकत धुकाए ते झुकाए ते झुकत धुकि,
कहै कवि गंग सूत सारिख, बिसेखे है।
चितवत चित्त में लगत ऐसे कामबान,
ऐसे आछे नैना और काहु के न देखे हैं।[१]

नायिका के नेत्रों की महत्ता का अनेक उपमानों के द्वारा वर्णन है।

उत्प्रेक्षा :

गंग ने रूप वर्णन और भाव-चित्रण के अंतर्गत सबसे अधिक उत्प्रेक्षा का ही आश्रय लिया है। नायिका के एक एक अंग, प्रत्येक चेष्टा और मुद्राओं के लिए कितने ही उपमानों को जुटाया है। सौन्दर्य वर्णन के अंतर्गत तो अधिकांश छन्द उत्प्रेक्षाओं से भरे पड़े हैं।

कुछ उदाहरण देखिए :

(१) मनि मनमोहन के कंठ में वो झलकति
जानिये जुन्हैया जमुना में फैल गई है।[२]

(२) नैकु हंसी विहंसी मुख मोरि, मनो बखसीस करोर दये हैं।[3]

(३) मार मची रनभूमि रची, उमड़े दल साहि अकबर के।
अदले वदले भई बारहि वार परै तरबारिन के झढ़ के।
कवि गंग तहां जुग टूटि परै, फिरै संड मुसुंड विना सिर के।

(४) कहै कवि गंग तरै बलकी बयारि लगे,
फूटी गजघटा घन घटाज्यों सरद की।[५]

नायिका के अंग प्रत्यंग की शोभा का वर्णन व्याजस्तुति के अंतर्गत-नायिका की चोरी की निन्दा द्वारा, निम्नलिखित छन्द में किया है :—

[१] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद सं० १९६

[२] वही, छंद सं० २७

[३] वही, छंद सं० २६१

[४] वही, छंद सं० ४११

[५] वही, छंद संख्या ३९६।

अनन्वय —

(१) साहिबी की हद्द तू ही साहिव सुमति तू ही,
साह को सुहेलो तू ही संपति को धाम है ।
तू ही दान, तू ही जान, वलवीर खान तू ही,
तू ही ललनान उर लागत ललाम हैं ।
कहै कवि गंग है अकेलो जान्यो खानखाना,
ऐसे खाये खरचे खजाने खोले काम है ।[1]

(२) बीर बली नृप तेरी बरावर, और बिरंचि न दूजो बनायो ।
साहू के सोच, सिवा हूं के सूल, सचीहू के साथ सपूत न जायो ।।[2]

रूपक :

(१) कहै कवि गंग तिहूं भुवन उवन लागी,
तेरी तेग पातिसाहि तेज की दुपहरी[3] ।।

(२) कामधेनु और कल्पवृक्ष के रूप में अकवर की दानवीरता की प्रशंसा--
नाउ लिये घर ते निकस्यो, कवि गंग कहै सह जान तिहारो ।
आइके देख्यो है कल्पतरू, अरू, काम दुधा मनिचिंचति मारो ।
आज हमारी भई परिपूरन आस सवै, कवहूं नहीं बारो ।
लोभ गयो सिगरो चित से, अब ये भयो दारिद छेदनबारो ।[4]

रूपक के अन्य अनेक भेद भी यथा स्थान उनके काव्य में विद्यमान है :

मालोपमा :

मान से, ममोला से, मयंक मृगछोना ऐसे,
नैन पुतरीन अलि सावक विसेखे हैं ।

---

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ३९३ ।

[2]वही, छंद संख्या ३७५

[3]वही, छंद संख्या ४०५

[4]वही, छंद संख्या ४१६

स्वेत स्वामताई वीच डोरे ना अरून ऐसे,
मानहु विचित्र चित्र मदन के रेखे हैं।
धुकत धुकाए ते झुकाए ते झुकत धुकि,
कहै कवि गंग सूत सारिख. विसेखे है।
चितवत चित्त में लगत ऐसे कामबान,
ऐसे आछे नैना और काहु के न देखे हैं।[1]

नायिका के नेत्रों की महत्ता का अनेक उपमानों के द्वारा वर्णन है।

उत्प्रेक्षा :

गंग ने रूप वर्णन और भाव-चित्रण के अंतर्गत सबसे अधिक उत्प्रेक्षा का ही आश्रय लिया है। नायिका के एक एक अंग, प्रत्येक चेष्टा और मुद्राओं के लिए कितने ही उपमानों को जुटाया है। सौन्दर्य वर्णन के अंतर्गत तो अधिकांश छन्द उत्प्रेक्षाओं से भरे पड़े हैं।

कुछ उदाहरण देखिए :

(१) मनि मनमोहन के कंठ में वो झलकति
जानिये जुन्हैया जमुना में फैल गई है।[2]

(२) नैकु हंसी विहंसी मुख मोरि, मनो बखसीस करोर दये हैं।[3]

(३) मार मची रनभूमि रची, उमड़े दल साहि अकबर के।
अदले वदले भई वारहि बार परै तरबारिन के झढ़ के।
कवि गंग तहां जुग टूटि परै, फिरै संड मुसुंड बिना सिर के।

(४) कहै कवि गंग तरै बलकी बयारि लगे,
फूटी गजघटा घन घटाज्यों सरद की।[5]

नायिका के अंग प्रत्यंग की शोभा का वर्णन व्याजस्तुति के अंतर्गत-नायिका की चोरी की निन्दा द्वारा, निम्नलिखित छन्द में किया है :—

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद सं० १९६
[2] वही, छंद सं० २७
[3] वही, छंद सं० २६१
[4] वही, छंद सं० ४११
[5] वही, छंद संख्या ३९६।

गयंद की चुराई चाल, मँद को लंक चारयो,
मुख तेरे चन्द चोर्‌यो, नासा चोरी कीर की।
मृगनि के नैन चोर्‌यो, पिकनि के बैन चोर्‌यो।
ओठ तेरे लाल चोर्‌यो, दंत छवि हीर की।
कहे कवि गंग बेनी नाग ते चुराइ लाई,
मोह तो कमान पल अर्जुन के तीर की।
जेते तुम लुटे ते पुकारत कन्हैया जू पै,
रुतनि की चोरी कहा छपैगी अहीर की।[1]

व्याघात अलंकार

वस्तु विशेष के गुण का अनुभव कराने के लिए इसका प्रयोग होता है:
दाख बड़ो फल है सुखदायक, काग भखै तो महा दुख पावै।[2]

संदेहालंकार—

गंग द्वारा नायिका की कल्पनापूर्ण उक्ति, संदेहालंकार की पुष्टि करती है:

लीलैहि लेत निशाचर से मुख प्राचीं दिसा कि पिशाच कि दारा।
पीय पयान कि प्रान पयान पिकी पिक रोर कृपान कि धारा।
गंग बसंतकि अंतक सीत समीरकि तीर तरन्य कि तारा।
जोन्ह कि ज्वाल मृनाल कि ब्याल सखी घनसारकि सार कि आरा।[3]

अत्युक्ति—

भावना की तीव्रता दिखाने के लिए अत्युक्ति का प्रयोग भी अनेक स्थानों में किया है:

(१) गंग कहै वृन्दावन चन्द्र बिन चंदमुखी चंदको निहारिहै तो चं
जरि जायगो।[4]

---

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या ४२।
[2] वही छंद सं० ३१६।
[3] वही, छंद संख्या २२४।
[4] वही, छंद संख्या २८७।

(२) नायिका के सौन्दर्य वर्णन में अतिशयोक्ति—

नीचे निहारि ओ नागरी बावरी, ऊंची देखे असमान फटैगो।
इंदरलोक में होय कुलाहल, सूरज चंद कौ तेज घटैगो।
घटेगो तेज जबै रवि को तब, रामहि राम जहान रटैगो।
गंग कहै मोंहि यों डर लागत, तेरे लिए करतार लटैगो॥[1]

उदाहरण अलंकार—

हा हा नेकु आइ लेहु, बूडे लेति तेरो नेहु।
केहू ह्वै दिखाइ देहु, डोरू ज्यौ दगतु है॥[2]

दंपति के अनुराग बढ़यो, रसनीति सो रैन सबै बितई।
इत कान्ह तजै नहि राधिकाको, उत राधिका ह्वै रही कान्हमई।[3]

परिसंख्या :

वांधिवे को अंजलि बिलोकिवे को काल,
ढिग राखिवे को पास जिय मारिवे को रोस है।
जारिवे को तन मन मारिवे को हियो
आंखे धारिवे को पग मग गनिवे को कोस है।
खाइवे को सो है मांहे चढिवै-उतारिवै को,
सुनिये को खान ध्यात किये अफसोस है।
वैरम के खानखाना तेरे डर बैरी बवू,
लीवे को उसास मुख दीवे ही को दोस है।[4]

ोकोक्ति

इसका प्रयोग गंग ने पर्याप्त मात्रा में किया है, उदाहरणार्थ :—

[1]कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २९।
[2]वही, छंद संख्या १४९।
[3]वही, छंद संख्या १६९।
[4]वही, छंद संख्या ३९४।

(१) कान्ह न जी है, न जी है न जी है यह लै उठ्यो है वड़ो अरु बारो।
याही ते आली अलोकहिं मेटिये, ताते करो हठ् कों मुहुं कारो।[1]

(२) गंग कहै बरजै सब कोई ज्यों, त्यों अति ही अति मूंड चढाई।[2]

असंगति : निम्न छंद में कवि ने रहीम के दानवीरत्व के उत्कर्ष के लिए अनूठी उक्ति का प्रयोग करके काव्यगत सौन्दर्य की छटा अवलोकनीय बना दी है :

सीखे कहा नवावजू, ऐसी देनी देन,
ज्यों ज्यों कर ऊंचे करौ, त्यों त्यों नीचे नैन।[3]

स्वभावोक्ति :

सोचत नैन परै नहिं चैन सु रैन-दिना मिलिवो चहिये।
जी न सुहाइ बिहाइ बिहाल यहै नित को सहिये।
बैरी के वास सो गात इतै, उत नेंह गुपाल सों क्यों रहिये।
कें जो मिलैं मन मोहन जू, मनमोहन सों मन की कहिये।

दृष्टान्त, निदर्शना, उदाहरण, काव्यलिंग आदि अलंकार गंग ने नीति औ उपदेश के अंतर्गत रखे हैं। गंग की रचनाएं अलंकृत शैली में लिखी गई फलतः उसमें अलंकारों से रहित कदाचित ही कोई छन्द मिले।

भाषा — महाकवि गंग की भाषा की कलात्मक विशेषता पर पर्याप प्रकाश डाला जा चुका है अब थोड़ा सा उनके शब्द-भण्डार पर विचार कर भी आवश्यक है। मध्यकाल में विदेशी सम्पर्क विशेषतः फारस वालों अधिक वढ़ जाने और राजभाषा फारसी होने के कारण हिन्दी कवियों ने उस शब्द भण्डार से भी अनेक शब्दों को ग्रहण करके अपनी रचनाओं में स्था दिया। उस युग के हिन्दी कवि शब्द प्रयोग में बड़े चतुर थे। सभी विदे शब्दों को अपनी काव्य-भाषा के ढांचे में ढाल देने के पश्चात् उनके लिए

[1]वही, छंद संख्या २५८।
[2]वही, छंद संख्या २५९।
[3]वही, छंद संख्या ३९१।
४ कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या २३७।

भी अग्राह्य नहीं रह जाता था। तथापि विदेशी शब्दों के ग्रहण की एक सीमा है। फलतः राजदरबार, राज्यकर्मचारियों युद्ध से संबंधित अस्त्रों-शस्त्रों एवं तत्कालीन विदेशी साज-सज्जा के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों का ही ग्रहण इन कवियों ने किया है। गंग शुद्ध ब्रजभाषा के कवि थे। ब्रज की प्रकृति के अनूकल उनकी रचनाओं में निम्नलिखित फारसी शब्द पाये जाते हैं।

वखसीस, नवाव, साह, गुलाम, निसान, मरदान, खसमाना, अवताल, वदखसाम, आसमान, तोसखाने, फीलखाने, खजाने, दुरमखाने, खबर, महबूब, अस्पहान, लसकर, तुरकमान, साहिवी, निजाम, दखल, मुलक. जिहान, इत्यादि।

कवि ने ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार शब्दों को कहीं तरास कर कहीं उनमें मात्राओं आदि की वृद्धि करके अथवा कहीं कटुवर्ण के स्थान में माधुर्यपूर्ण वर्ण को लाकर ढाल लिया है।

गंग के कुछ छन्दों के एक आध चरण कहीं कहीं पूरे के पूरे फारसी में ही हैं। इससे कवि का उद्देश्य अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन ही प्रतीत होता है-

कौन घड़ी करि है विधना, जव रुयये आं दिलदार ववीनम्।
आनंद होय तवै सजनी, दर सोह्वते यार निगार नशीनम्।
प्रान पियारी मिलै जवही, दर वागये-वस्ल गुलेशव चीनम्।
सूरत मित्र की चित्त वसी, कवि गंग कहै चूंयै नक्श नगीनम्[1]।

रहीम ने भी संस्कृत और ब्रजभाषा में इस प्रकार फारसी पदों का अने स्थानों में प्रयोग किया है। अकवरी दरबार के अन्यकवि नरहरि, तानसेन आदि के भी इस प्रकार के कुछ छन्द मिलते हैं[2]।

हिन्दी के अर्धतत्सम और तद्भव शब्दों के प्रयोग प्रचुरमात्रा में गंग की रचनाओं में है। उन्होंने स्वरभक्ति, स्वरागम, स्वर संकोच आदि द्वारा अपनी भाषा में माधुर्य का संचार किया हैं। उदाहरणार्थ भक्त > भगत, भक्ति > भगति

[1] कविवर गंग : जीवन और काव्य, छंद संख्या, २४७।
[2] वही, छंद संख्या...?

पुरूषार्थ 7 पुरसारथ, क्लेश 7 कलेस, स्नेह 7 सनेह, वर्ण 7 वरन, दर्शन 7 दरसन, मुक्त 7 मुकत दीर्घ 7 दीरघ, लवण 7 लोन इत्यादि। प्राकृत्त भाषा के कुछ शुद्ध प्रयोग भी यत्र तत्र युद्ध-वर्णन प्रसंग में कर्कशता, प्रखरता के प्रदर्शन के लिए मिलते हैं। इनमें दिवलय युक्त शब्दों को प्रधान स्थान दिया गया है - मित्त ∠ मित्र, अख्खर ∠ अक्षर. दुज्जंन 7 दुज्जन, कीत्ति ∠ कीर्ति समत्थ ∠ समर्थ पुहुप ∠ पुष्प।

ब्रजभाषा की निकटस्थ बोलियों में कन्नौजी और बुन्देली के भी प्रभाव को गंग ने ग्रहण किया है। यह उनकी स्थानीय विशेषता से परिचय एवं पर्यटन का साक्षी है। ब्रज और कन्नौजी में अकारांन्त संज्ञाओं के स्थान पर उकरान्त रूप प्रायः अधिक मिलते हैं। गंग द्वारा प्रयुक्त धरु, संगु, साहुसु, गंगु, नीरू, जनमु, जतनु आदि शब्द इसी कोटि के हैं। एकाध स्थानों में हतै अथवा हुतो जो कन्नौजी की भूतकालिक क्रिया है का भी समावेश हो गया है।

बुंदेली के प्रथम पुरुष सर्वनाम 'में' का प्रयोग ब्रजभाषा के सभी कवियों में मिलता है। गंग भी इसके अपवाद नहीं हैं। उन्होंने तकिवे, बकिवे, लीवे दीवे, आदि अवधी क्रियाओं के प्रयोग भी अपनी रचनाओं में किये हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गंग की भाषा का मूल ढांचा ब्रज भाषा का ही है किन्तु उसमें प्रसंग विशेष, अवसर और सम्पर्क के अनुसार फारसी, संस्कृत अवधी आदि का मेल दिखाई पड़ता है।

———

हरि स्तवन

(कवित्त)—राधिका रमैया, रंग भूमि की चवैया,[1] भारी
भय को भजैया, कवि गंग उर लाइए।
कंस को मरैया, बल बंस को धरैया, काली,
नाग को नथैया, नाथ निसि दिन गाइए।
अघ को हरैया, सुख ब्रन्दा[2] को करैया, तिहुं,
लोक को तरैया, जिनु बिनु तनु[3] ताइए।
बलि को छलैया, बलभद्र जू को भैया, ऐसो
देवकी को छैया छांडि, और कौन घ्याइए ॥१॥

अनजाने ठौर जात, जाति जाति पै घिघात,
पत्रात करतु[4] फिरतु हो ही[5] हीनता।
काहू न लगायो मुख, देखे एक रुखे सब,[6]
सुनीये[7] बखानु दुख[8] दीन बन्द[9] दीनता।
हों तो हों न मांगनु[10] मंगावै मौहि औरनिसों।
गंग कवि कहै यहै कौन परबीनता।
पूजे सब साखौ[11] छिमा करो अपराधौ अब,
काटौ किन माधौ मेरे मन की मलीनता ॥२॥

मन्द मन्द गावै, पार ब्रह्मा[12] नहि पावै, जाय[13]
जसुधा खिलावै, मेरो महा बलदाई है।
वारेहि से[14] बंका, कंस की न माने संका, गढ,

पाठान्तर : छन्द १ — [1]नचैया (बटे०) [2]बृन्द (बटे०) [3]तिन बिन तन (बटे०)।

छन्द २ — [4] प्रातरात फिरत [5] फिरत होई (बटे०) [6] देखे सबै एक रुख (बटे०) [7] सुनिये (बटे०) [8] बखान दुख (बटे०) [9] दीनबन्धु (बटे०) [10] मांगत (बटे०) [11]साधौ (बटे०)।

छन्द ३ — [12] ब्रह्म (बटे०) [13]जाहि (बटे०) [14] बारे ही तें (बटे०)

वार पार लंका, वलभद्र जी को भाई है ।
कहै कवि गंग बृज बुड़त बचाय लीनो,[1]
इन्द्र की घटाई जोमे फेरी ग्रास घाई है ।[2]
बच्छन के पाछे, पर बधि मोर पच्छन के,
जमुना के कच्छन में नाचत कन्हाई है ॥३॥

द्रोपदी की लाज काज, द्वारका ते दौरि आये,
छूम छल छाइ रह्यो अचंभो अथाइए[3] ।
पेटहु में पेट मिलै राख्यौ राजा परिछत,[4]
हेर हेर हेर[5] ही विरद सरनाइए।
कहि कवि गंगु सब संसार[6] जंजीर जेर[7]
जंजीरनि जरयो जनु कैसे के छिड़ाइए ।
गिरि के धरन हार, गँवर के रछपाल[8]
गरूर के असवार, गरूर न लाइए ॥४॥

पढ्यो गुन्यो कीर न, कुलीन हुतो हंस कुल
छुयो गीध छुति हातो[9] छाती छापे[10] किए तो ।
तार्यो अजामेल हूं से[11] परम मलीन पापी,
सदा को सुरापी चरनोदक न पिए तो ।
गंगु कहै तारि केते त्रास में मुकुत कियो,[12]
काली नाग कहां ते तिलक मुद्रा दिए तो ।
दौरे हरि लोग[13]तें हकार एक पायक यों[14]
हाथी कहा हाथ तुलसी[15] की माला लिए तो ॥५॥

पाठान्तर : छन्द ३ [1]लीन्हो (बटे०) [2] जो में फेरि ग्रास छ (बटे०) ।

छन्द ४ [3] अघाइए (बटे०) [4] परीछत (बटे०) [5] हेरि हेरि (बटे०) [6] संसार (बटे०) [7] जंज जेर (बटे०) [8] रच्छपार (बटे०) ।

छन्द ५ [9] न (बटे०) [10] छाप (बटे०) [11] अजामलि सो (बटे०) [12] तारिछ के त्रास तें मुकत कि (बटे०) [13] लोक (बटे०) [14] पाइक (बटे०) [15] तुरसी (बटे०) ।

गाढे गहो गहिर गुहारिश्रौ बिसारी[1] कियो,
ऐही[2] दीनबंधु अब दीन कहूं दलि गयो।
स्रवन भनक परै, धायो[3] कमला को कंत,
अस्त्र वस्त्र छांडि प्रभु वाहन विचलि गयो।
भनि कवि गंग ताके पाछे पछिराज[4] धायो,
अतल सुतल[5] तलातलहू वितलि गयो।
जोलों चक्रधारी चक्र चाहत चलाहवे को,
तो लों ग्राह ग्रीवा पै अगारू चक्र चलि गयो ॥६॥

दीनानाथ द्रोपदी पुकारि कहै,
वेदन विदित कैधौं विरद भुलानो है।
दुखित प्रह्लाद जानि संकट सहाय भये,
भक्त के प्रताप को, न गिनो रंक रानो है।
छांड़ि खगराज गजराज लाज काजधाए,
कहै कवि गंग केधौं पौरुष पुरानो है।
देह भयो दूवरो कि नेह तज्यों दीनन सों,
चक्र भयो भोतरों[1] कि वाहन खुरानो[2] है ॥७॥

र : छन्द ६ १. चिहारि (बटे०) २. ए हो (बटे०) ३. परत भनक उठिधायो (बटे०) ४. पच्छिा-राज (बटे०) ५. वितल (ब टे०)।

छन्द ७ : १. भोथरो (बटे०)

भाव साम्य

ज्वाल में जरत ग्वालवाल तिहि काल राखे,
औरनिहु राखत यों भाषत पुरानो है।
प्राननि को ग्राहक हो, ग्राह उदग्राहक हो,
करी के कहत खन हियो पलुरानो है।
कहै नंद लाल दल सहित अहित सब,
हित अनहित हेत चित अतुरानो है।
बूढ़ो भयो देह किधों नेह तज्यो दीनन सो,
चक्र भयो भोथरौ कि गरूर खुरानो है।

कांकरौली : : छंद २४ : : नन्दलाल।

छप्पय :

गगन गंग गुंजरत[1] सु होत दसौं[2] दिसि पूरन।
हरत[3] धरनि कलमलत सेस संकर विष चूरन ॥
असुर संग सकपकति, धीर धकपकति धमक सुनि ।
भजति भीर महरात खंभ खहरात पटति पुनि ॥
बहु[4] बिकट दंत कटकट करत, चटचटात नख निकर तपु ।
लपलपत[5] जीह दुर्जन दलन, जय जय जय नरसिंह बपु ॥८॥

सवैया :

प्रभु[6] एक समै मन[7] भावन वावन, संत उपावन देह धरी ।
बलि कों छलि कै हरि[8] राज लियो, तिहुं लोक कि तीनहि पैंड करी ।
तिनके कर दंड हुतो सो बढ्यो, भुवदान दिश्रो लियो मांगि हरी ।
कवि गंग कहै यो अचंभो लखो, विन पालव[9] पेई बढ़ी लकरी ॥९॥

कवित्त :

कंचन के भौन[10] भए कंचन के धौरहर,
धुर सुरपुर जौं[11] पगार घालि गसे हैं ।
चपि चपि आगे ही तें मानिक जटिल[12] नग,
परदा की भीतिन प्रवाल लाल लसे हैं ।
कहै[13] कवि गंग तीनों[14] लोक की तिहारी संपै,
इनके तौ तंदुलऊ तेऊ तीनै[15] पसे हैं ।
हंसि हंसि कहति सुदामा जू की रामा ए जू,
ऐसे आइ घर बसे जैसे घर बसे हैं ॥१०॥

[7] खुटानो (बटे९)

पाठान्तर : छन्द ८ [1]गुजरत गंग (बटे०) [2]सोर दसहू (सभा) [3] हलत (बटे०) [4] अति (बटे०) [5] लफलफत (बटे०) ।

छन्द ९ [6] जब (बटे०) [7] प्रभु (बटे०) [8] प्रभु (बटे०) [9] पल्लव (बटे०) ।

छन्द १० [10] धाम (बटे०) [11]लौं (बटे०) [12]जटित मानिक (बटे०) [13]कहि (बटे०) [14] तीन (बटे०) [15] तीन (बटे०) ।

हाथी पै न हाथी मांगे घोरा पै न घोरा मांगे,
वे ही काज हथ ओहा होत नर नर को।
पंछी पसु कीट जैते मांगहि[1] न परस्पर,[2]
याही हौं विचारि छांड़ी जैबो दर दर को।
कहै कवि गंग दीनबंधु विन कौन मेटे,
सोई करतार दीवो, लीवो करतार को।
एक बार होइगो दरिद्रराउराइ तौऊ,
करिहै सुदामाहाई भाई हलधर को ॥११॥

सवैया :

जो कहो मोहन जू मथुरा में, तो मंदिर में मढ़ई[3] इक छांऊ।
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन वीच नचों अरू गांऊ।
स्वांग अनेक करो कवि गंग जू कैंसुहु[4] कान्ह तिहारो कहाऊं।
काल गहै कर डोलत मोंहि, कछू इक वेर खुशी[5] कर पाऊं ॥१२॥

कवित्त :

द्रोपदी की पीर पाय[6] चीर ह्वै प्रगटे हरि,
नीरे गहि नीरधि के तीर जाइ छाए ते।
कहे[7] कवि गंग खल खन में ही[8] साइ लीनो,
खंभ[9] ही में रामराइ कौने गढ़ि नाए ते।
कमला के केलि[10] छांड़ि कलम तें कोरे कोरे,
पायन[11] कमल नैन करी काज धाए ते।
तुम तो अनाथ ही के हाथ हो विकाने नाथ,
राजरानी रोएं राजा बंदि ते छिड़ाए ते ॥१३॥

पाठान्तर : छन्द ११ [1] मांगे (वटे०) [2] परसपर (बटे०)।

छन्द १२ [3] महई (वटे०) [4] कैसेहु (बटे०) [5] बैरख सी (वटे०) हरि वैरख सी (याज्ञिक)।

छन्द १३ [6] पाएं (वटे०) [7] कहि (बटे०) [8] खिन माहिं (वटे०) [9] खांभ (बटे०) [10] को कोरो (बटे०) [11] पाइनि (वटे०)।

कैसी रिपु केसौराइ कौन की सरन ताकों,
पाप लागि[१] लाग्यों तीनों[२] ताप ते तवन जू।
कहै[३] कवि गंग नंद घोषि के निवासी नाथ,
दोख[४] के दलनहार मोख के भवन जू।।
जानकी के जान,[५] जांबवंत के जमैया, रानी
रमा के रमैया, रूकमनि[६] के रवन जू।
बालि बैरी,[७] वनमाली, माली के मुकुति दाता,[८]
ग्वाली के रसिक कान्ह, काली के दवन जू ।।१४।।

कामिनी कमल नैंनी करे न रहसि केलि,
कमला बिसासनी विसेषि वामे दयो है।
घर के रहत कोऊ घरिको[९] न पूछे बात,
मानहुं किंकिधा वंधि[१०] सिधु छोर छयो है।
कहै[११] कवि गंग तुम करुनानिधान कान्ह,
कोटि जो हों[१२] ऐवदार ग्रौर द्वार भयो है ।।१५।।

हर स्तवन :

बारन की जटा बांधे, बाघपट[१३] डारे कांधे,
दै निदेस देस[१४] बम बम बोलिहौ।
कंथाधारी, विषधारी, त्रिपुरारी,[१५] सुलधारी,
लोचन समाधिहूं सों रंचक[१६] न खोलिहौ।
कहे कवि गंग कहूं गंग के करारे[१७] जाय,

पाठान्तर : १४ छन्द [१] लागे (बटे०) [२] त्रय (बटे०) [३] कहि (बटे०) [४] दोष (बटे०) [५] जानि (बटे०) [६] रुकमनि (बटे०) [७] बाली बैरी (बटे०) [८] मुकति दाता (बटे०)।

छन्द १५ [९] घर के (बटे०) [१०] विंधि (बटे०) [११] कहि (बटे०) [१२] है (बटे०)।

छन्द १६ [१३] बाघंबर (बटे०) [१४] दै अदेस देस देस (बटे०) आदेस दई देस देस (याज्ञिक) [१५] आधारी (बटे०) [१६] नेकहू (बटे०) [१७] निकट (बटे०)।

न्हाय कै कहा ये नेकु नखहू जो छोलिहौ।
नाग लपटाए, नगनंदनी लगायै तन,
भसम चढ़ाए, नाह नांगे नांगे डोलिहौ ॥१६॥

गंगा स्तवन :

कैयो बार[1] इहि छिति छोटनि में छोट भयो,
कैयो वार[2] छिति में छतीसा पायौ नाउं मैं।
कैयो वार[3] देव लोक देवन में देव भयो,
देखि देखि देह दुख दोखन[4] डराउं मैं।
कहे कवि गंग काहू ओर के सरन गए,
कछु न सरे ते[5] तुअ सरन समाउं मैं।
नाथ की सपथ तोहिं तीन पथ गामिनी री,
सुपथ लगाउ गंग ! [6] कुपथ न जाउं मैं ॥१७॥

यमुना स्तवन :

रोग न रहत नैकु जैसे आछी औषध तें,
पाप न रहत जैसे हरि गुन गाए तें।
तमु[7] न रहतु जैसे अरुन उद्योत[8] भए,
दारिद न रहे जैसे पारस के पाए तें।
पितरउ भ्रमि भ्रमि नरक न परें जैसे,
गंगु कवि कहत सपूत कुल जाए तें।
याही तें कलिन्दी सूरनंदिनी बंदत लोग,
देखिए न जमलोक जमुना के न्हाए तें ॥१८॥

पाठान्तर : छन्द १७ [1] : [2] : [3] : कई बार (वटे०) [4] दुंदनि (बटे०)
[5] सरयो न कछू तौ (वटे०) [6] नाथ की सपथ
तोहि त्रिपथ गामिनी गंगा, सुपथ लगाउ जैसे।
इसमें प्रवाह भंग दोष है। सं० (वटे०)।
छन्द १८ [7] तम (वटे०) [8] उदोत (वटे०)।

इसी छन्द का निम्नलिखित पाठान्तर "पुरोहित जी के संस्करण" में मिलता है :

जैसे नीकी औषधि तें रोग न रहत तन, दारिद रहत नाहिं पारस के पाए ते
तम न रहत जैसे अरुन के उदै होत पाप न रहत जैसे हरिगुन गाये ते।
पितृ मिलें ब्रह्म में न कबहूँ नरक परें, कहै कवि गंग एक साधु पूत जाए ते।
नंद नंद दर्स होत, चित्त अति हर्ष होत, देखिए न यमलोक यमुना के न्हाएते

छन्द २ : : पृष्ठ २ : : यमुना जी महिमा ॥

सवैया :

इक बार के न्हात पुजापन सों, लिए जात जहां मन की गम ना।
सुनि के दुख दंद मिटे जिय के, सनकादिक नारद हू सम ना ॥
अब यातें यहै व्रत धार वहै, कवि गंग कहै सुनि रे मन ना[1]।
जमुना जल नैन निहारत ही जमना जम ना जम ना जम ना ॥१९॥

द्विज स्तवन कवित्त :

जाके परताप तें अनेक दोष छीन होत,
कहै कवि गंग तप तेज की झलक तें।
जाके ही असीसें सुख संपदा अचल होइ,
निकसत बचन जैसे विस्नु के हलक तें।
तीन लोक जाहि माने[2] ठाकुर ते बड़ो[3] जाने
गहि लिये पद[3] मनो भ्रिगु की ललक तें।
केते ब्रह्मदोषी ब्रह्मदोष ही में छीन होत,
ब्राह्मन न मान्यो सु तो जायगो खलक तें ॥२०॥

निर्वेद :

मेरो चेरो मेरो घोरो मेरो घूरो मेरो घरू,
मेरो मेरो कहत न रसना अघाति है।
कहै कवि गंगु ओर ओर ऊ जु आक वाक,

पाठान्तर : छन्द १९ [1] रे म मना (बटे०)।
[2] मानि (सभा०) [3] नै अधिक (सभा०) ४. चरन
(सभा०)।

कहत कहत क्यों हूं क्यों हुं न रसाति है ।[1]
चारयो वेद चावति पढ़ति धरयो दरसन,
नव रस निरूपति पट रस खाति है ।
देखो देखो पूरविले पाप को प्रताप यह,
राम नाम लेत जीभ ऐंड़ी बेंड़ी जाति है ॥२१॥

गर्भ में कबूल्यो भक्ति बाहर सो भूलि गयो,
कीन्हों ना भजन छन एक सियराम[2] के ।
महल, अटारी, सुत, सहोदर, वित, नारी,
निसि वास[3] करत गुलामी बिना दाम के ।
बिन हरि भजै चतुराई धिग जीव नर
संग नहि जात तेरो कौडीहू छदाम के ।
कहे कवि गंग नर देखि ले विचार करि,
मूंद देहु आंख तव लाख कोन काम के ॥२२॥

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या :

रहेगी न राज रजधानी, न पवन पानी,
कहै वाक वानी जिमी आसमान जाइगो ।
संपत पताल, सातो दीप की मसाल एई,[4]
दुनिया को ख्याल चांद सूर लो बिलाइगो ।
जो कछु लिखी है सृष्टि करता ने आप ताहू,
सृष्टि करता जो[5] सांझ करता समाइगो ।
सदा सुख राम जस जानि कवि गंग कहे,
रहिवे के नाते राम नाम ठहराइगो ॥२३॥

नायक-छवि :

सवैया :

पाठान्तर : छन्द २१ [1] कहै कवि गंग सोइ बकत है आंड वांड,
बकत भकत नहि ने कु अलसात है (याज्ञिक)

छन्द २२ [2] हरि नाम (बटे०), भगवान (याज्ञिक) ।
[3] द्यौस (बटे०) ।

छन्द २३ [4] भई (बटे०) [5] सृष्टि करताऊ (बटे०)

उत्तम जात न राजकुंवार, अहीर गंयार[1] गऊन चरावै ।
गंग कहै गुन नीको[2] है एक, जो आछे सुढार सों वेनु बजावै ।
जेवरी सर्प[3] को सांचो पिछानो री, को कहि आपुही रारि बढ़ावै ।
कान्ह भयो सखि चौथ को चंद, चितौंत ही लोग करंक लगावै[4] ।।२४।।

कवित्त :

जैही देख्यो जेही सुन्यो तेही अवरेख्यो रूप,
रूप रंग रीझि रीझि तेही[5] तिन तोर्‌यो है ।
कहे कवि गंग कान्ह आजु लों न काहू कछु,
मूठि ते न मेलि डार्‌यो, गांठि ते न छोर्‌यो है ।
गोरी गांइ धोंरी बोलि पिपरी पिछोरी ओढ़ि,
बूझे तोहि काको चित सेव सेव[6] चोर्‌यो है ।
आइ हैं ते आइ आई[7] विन ही बुलाये आइ,
ढोटा तोरी बांसुरी समुद्र विस[8] घोर्‌यो है ।।२५।।

लट् ह्वै के हरि जी के आनन हमारो[9] हीय[10],
आनु तनु कटि आनु कोटे[11] जनु लेतु है ।
मोर को मुकुट माथे कटि कछिनी सु काछे
सुरति[12] न साथे हाथे मनो[14] मीन केतु है ।
कहे कवि गंग छवि छगुनी लगति वाकी,
छेवा सो छकत जीय जानि कहा हेतु हैं ।
घर[6] घट, ओघट उबट बंसीबट तट,
बैरी दुख देवे को दिखाई आनि देतु है ।।२६।।

पाठान्तर : छन्द २४ [1] गंवार (वटे०) [2] वामें (बटे०) [3] सां(प) (बटे०) [4] आपको (बटे०) [5] कलंक (बटे०)

छन्द २५ [6] रंग रीझि रीझि तेही तेही (वटे०) [7] व(...) वसि (वटे०) [8] आइ इतै आइ आइ (बटे०) [9] विष (बटे०) ।

छन्द २६ [10]. करि को आवनद मेरी ।सभा०। [11] मनु ।वटे०। [12] तनु कढि जात कोऊ काढे ।बटे०। [13] रति है ।ब(टे०)। [14] वेनु ।बटे०। [15] घरें ।बटे०।

मोर को मुकुट मुक्तानि के वे अवतंस,
रोम रोम रूप मानो मनमथमई है।
काछिनी रुचिर रुचि, सोहै पीतपट सुचि,
चटकीली[१] अंग अंग[२] पीत[3] छवि छई है।
कहे कवि गंग बनी बानिक विविध भांति,
आभा तीनों लोक की सु एक ठौर भई है।
मनि मनमोहन के कंठ में यों झलकति,
जानिये जुन्हैया जमुना में फैल[४] गई है ।।२७।।

मृगहु ते सरस बिराजत विसाल दृग,
राजत न ऐसी छवि[५] कौलहू के दल[६] में।
गंग हरि घन तन मांहि लसै पीतपट्ट[७],
ठाढे द्रुम छांह देखि ह्वै गई विकल में।
चल चित चाय परै सोभा के समुद्र बीच[८],
रही न संभार दसा औरे भई पल में।
मन मेरो गरूओं गयो री बूहि, मैं न पायो,
नैन मेरे हरूए तिरत रूप जल में ।।२८।।

पाठान्तर छन्द २७ : [१] चटकीले ।बटे०। [२] अंग पर ।पुरोहित।
[3] अति ।बटे०। [४] फैलि ।बटे०।

छन्द २८ : [५] देखिए न अति दुति ।कविता-कौमुदी।
[६] कोमल-कमल ।सभा०।
[७] गंग हरि घन ।के। से तन लसै पीतपट ।बटे०।
गंग हरि घसे तन में लसे पीतपट ।सभा०।
गंग घन दुज से लसत तन आभूषन ।कविता-कौमुदी।
गंग घन बीजु से लसत तन पीतपट ।पुरोहित।

छन्द २८ : [८] चित चख चाहि पर्यो शोभा के समुद्र बीच ।बटे०।
चित चख चौंधि परयो शोभा के सलिल मांझ ।पुरोहित।

नायिका-छवि

।सवैया। नीचे निहोरि ओ[1] नागरी बावरी ऊंचे देखे [2] असमान फटैंगो।
इन्दर लोक में होय कुलाहल सूरज चन्द को तेज घटैंगो।
घटैंगो तेज जबै रवि को तब रामहि राम जहान जपैंगो[3]।
गग कहे मोहि यों[4] डर लागत तेरे लिए करतार लटैंगो ॥२६॥

पीन पयोधर खीन खरी कटि लोचन मीन प्रवीन तिया के।
सुकुमार सिवार से बार बड़े दसनावरि मानो अनार[5] बिया के।
गंग कहैं खरे नीके खए खगि[6] बैठि गए मुहरा[7] अंगिया के।
सुविचारि[8] रचे विधि मेरे ही जान मनोरथ कान्ह तिहारे हिया के ॥३०॥

मन पायनि पायल घायल ह्वै[9] गढ़ लंक ते दूर निसंक गयो।
तहं[10] रूप नदी त्रिवली तरिके करि साहस सागर पार भयो[11]।
कवि गंग भने बटमार[12] मनोज हमावलि सो[13] ठग संग ठयो।
परि दोऊ सुमेरू के बीच मनोभव[14] मेरो मुसाफिर लूटि लयो ॥३१॥

पाठान्तर छन्द २६ : [1] हो ।बटे०। [2] दिखें ।बटे०।, दिखि ।सा०प्रभा०।
[3] राख लगाए बिरागि बने नर रामहि राम सुआंस रटैंगो ।बटे०। [4] हम को ।बटे०।

छन्द ३० : [5] अनंत ।सभा०। [6] खगी ।बटे०। [7] मुहरे ।बटे०।
[8] विचारि ।बटे०। इससे पिंगल नियम का विरोध होता है। इस छंद में निम्नोक्त क्रम है।

प्रथम एवं तृतीय चरण में सात भगण और अन्त में दो गुरु
द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में आठ सगण और अन्त में एक गुरु

छन्द ३१ : [9] मन घायल पायल मायल ह्वै ।कविता-कौमुदी।,
लखि पायन पायल पांय लहे ।सरोज।
[10] तब ।सरोज। जब ।पुरोहित।
[11] करिकै मति साहस पार भयो ।सरोज।, करि के अति साहस पार भयो ।पुरोहित।,
[12] घटपार ।बटे०। [13] ते ।सरोज।
[14] मनोमन ।बटे०। में री मन ।सरोज।

।कवित्त। कुन्दन सी कोवरी कुमुद से कटाच्छ जाके,
नए करतार एक मोहिनी बनाई है।
वेद तज्यो ब्रह्मा अरू[1] शिव ने समाधि तजी,
देखे जाके जादोनाथ टकी सी लगाई है।
रती हूं न रंभा हूं न, मेनका घृताची हूं न,
सारदा न सुरलोक तेऊ ढूंढि आई है।
कहै कवि गंग ऐसी गोरी जो गवारि[2] होति,
ऐसी अरुनाई तरुनाई कहां पाई है ।।३२।।

तनक हंसनि तिहुं लोक को है सुखसार,
तनक चितोनी[3] तिहु भवन[4] को भोग है।
कहे कवि गंग बिनु देखे क्यों निमेख[5] लागे,
मेरे जान कान्ह जू के[6] सेंति को वियोग है।
कंटक ले उवे कंज भटके भ्रमतभृंग,
सोने सों सुगंध कहैं बावरे वे[7] लोग है।
सेनि[8] की तियनि की निकाई बारि फेरि डारो,
राधे जू तिहारो रूप न्याइ[9] लागे जोग है ।।३३।।

केलि कौल केहरी हरन हाथी हरि कीर,
हंस हेम हिमकर काहे को बिगार्यो है[10]।
कहै कवि गंग छति कारय[11] प्रवाल दल,
व्याल मलि मृदुल मृनाल मीडि मार्यो है।

पाठान्तर छन्द ३२ : [1] और ।बटे०। [2] गवारि ।बटे०।
छन्द ३३ : [3] चितौनि ।बटे०। [4] भुवन ।बटे०। [5] निमेष ।बटे०।
[6] को ।बटे०। [7] पै ।बटे०। [8] सुर ।बटे०।
[9] पाइ ।बटे०।
छन्द ३४ : [10] केरा, कीर, केहरी, हरिन, हाथी, हिमकर, मुकर कपोत कंज काहे को बिगार्यो है ।बटे०।, केल कौलं केहरी हरिन हाथी हेम हंस, हिमकर हीर चीर कीर ही बिदार्यो है। ।पुरोहित।
[11] दुति दारिम ।बटे०। छवि करनि ।पुरोहित।

नीकी नीकी निपट निकाई नीकी नीकी लागी[1] ,
नीकी नीकी नाइका निकुंज पांउ धार्‌यो है।
ए तो कान्ह जू के नाई कान मूंदि बैठ रही[2] ,
न्याइ ही[3] विधाता माई[4] रूप मेलि डारयो है ।।३४।।

केलि को सो गाभो तन, कुंदन सी जोति जगे,
कमल वदन पर मोती को सो पानी है।
चकवा से कुच, कच बादर से छाइ रहे,
तिनमें दसन दामिनी सी दमकानी[5] है।
कहै कवि गंग और बातनि भली ही सही,
ऐसो[6] हठ लालन सों तू ही मन मानी है।
मेरी रानी मेरे पीछे मेरो बुरो मानि लीजो,
जैतो अंग रूप तोमें तैतिक अयानी है। ।।३५।।

ढेर से ढरार नैन, बेल से कठिन कुच,
बेले[7] के फुलेल मीजीं अलवेली अलके।
सघन जघन जिमि कदली के दल छवि[8],
करन की करै पहुप कवल रलके[9]।
कहै कवि गंग दोष भाषै जीव दामिनी[10],
दार्‌यो कैसे दाने दांत दूनी जोति झलके[11]।

पाठान्तर [1] नीके ही के निकट निकाई नीकी लागति है।बटे०।
[2] कान्ह जू के नांव लेत कान मूंदि बैठति हो। पुरोहित।
[3] मूरख ।पुरोहित।
[4] आली ।पुरोहित।
छंद ३५ : [5] चमकानी ।बटे०। [6] ऐसी ।बटे०।
छंद ३६ : [7] वेल ।बटे०। [8] अति कदली की दली दुति ।बटे।०
[9] कर की ओपनि कोंप कोमल कमल कैं ।बटे०।
[10] दुति दामिनी दसन छवि ।बटे०। [11] हू के दाने हुते दूनी जोति ।बटे०। हूं के दाने हूंते दूनी छवि ।कांकरौली।

सांवरी सलौनी ग्वारि वारिये गंगा गंवारि[1],
रति जोवन जमी सी आवे[2] रोवै लाल[3] ललके ॥३६॥
अंग[4] ओप आंगी भीजी अंग[5] अनुराग भीजे,
अधर तमोर भीजे विद्रुम से झलकैं।
गति भीजी आलस सहज सोहैं मोहैं भीजी[6],
लाज भीजी चितवनि प्रेम भीजी पलकैं।
आवो लाल दौरि दुरि देखें[7] मेरी पीठ पीछे,
जाके देखिवे को निसि द्योस लेत ललकैं।
बचन पियूष भीजे बुधि के विलास गंग,
रस भीजी आपुन[8] फुलेल भीजी अलकैं ॥३७॥
चंपे कैसे[9] चारू फूल चमकत मुजमूल,
देखो धौं दुकूल कैसो[10] रूप उफनात है।
गंग कहै लोइन की अधिकैं दमंके दुति[11],
कानन[12] की ओर कों चकोर ललचात है।
माते हाथी की सी गति, राते[13] सोने की सी दुति,
राते पाय देखियत[14] कील कैसे पात हैं।
मूंगा से अधर, दांत चमकत मोतिन से,[15]
ऐसी ही गवारिन[8] के घाले घर जात है ॥३८॥

पाठान्तर [1] ग्वारि वारिये ग्वारे रति ।बटे०।, वारैं अंगवारी अति ।कांकरौली। [2] जसी स्त्री आवै ।बटे०।, जिभी सी आई ।कांकरौली। [3] देखि ।बटे०।

छंद ३७ : [4] : [5] आंग ।बटे०। [6] सुहास भीजी सोहैं भौं हैं ।बटे०। [7] देखौ ।बटे०। [8] आंखनि ।बटे०।

छंद ३८ : [9] कैसे ।बटे०। [10] अति ।बटे०।, में से ।पुरोहित। [11] मदन मदकारे तारे ।बटे०।, की अधिक दमंके दुति । पुरोहित; कांकरौली।

[12] बदन ।बटे०।, आनन ।पुरोहित, कांकरौली। [13] ताते ।बटे०।

[14] राते हाथ राते पाय ।बटे०। [15] मुंगिया से ओठ, दांत दमकत मुतिया से ।बटे०। [16] अंगवारिन ।बटे०।

सांवरी सलोनी ससि बदनी सुरंग रूप[१],
सागर सी सोहै धारै[२] सकल सिंगार सी ।
लाज मुख लांबी लटें लागो लचकोहों लांक,
सील सांची लघु वैस काची कोरी डार सी[३] ।
कहैं कवि गंग ऐसी सुंदरी न पावैं कोई,
जो पै सेवैं सौ सौ जग वेनी औवनारसी[४] ।
आंखिन ते इत उत न कीजै जनि[५] एको छिन,
राति को रतनु कीजै ओस[६] कीजै आरसी ।।३९।।

गरे तो गुलाल माल करन[७] प्रवाल जाल,
पहरै ही लाल लाल चुनरी चुनाइ के ।
कुंकुम कपूर पान चंदन चमेली चोवा,
मृगमद बास आगे आगे आई[८] धाइ के ।
कहै कवि गंग हों न जानति कितहि गई[९] ,
मोह अरु मोहनहि[१०] मोहनी सी लाइ के ।
कमल से बदन किसोरी कऊ गोरी गोरी,[११]
होरी की सी झरथ झरोखा झांकी आइ के ।।४०।।

पाठान्तर छंद ३९ : [१] ओठ ।बटे०। [२] सागर सी सोहै धारैं ।बटे०। रूप को सिंगार सोहै ।सभा। [३] लांवी लटै लौनोतन लाग्यो लगयो लांक लाल, लूक सी लहक वैस कोरी काची डार सी ।पुरोहित।, ।बटे०। में केवल 'लघु' के स्थान 'लहु' है [४] वानारसी ।बटे०। [५] राखिये न ।बटे०। [६] द्योः ।बटे०।

छंद ४० : [७] काननि ।पुरोहित। [८] आवे ।पुरोहित। [९] आल हौं न जानौं कित गई ।पुरोहित।, वह मोहनी कितै को ग ।पुरोहित।, टिप्प०। [१०] मोहि मोहनो मोहिनीहि ।बटे० मोहि मोह्यो मोहिनी ने । पुरोहित। [११] भोरी गो ।पुरोहित, टिप्प०।

अंग तेरो केसर सो[1] करिहा केसरी की सी[2],
केसर[3] की सर कैसे कहि[4] सके को तमें।
कहै कवि गंग आछे छवि सों[5] छबीले नैन,
नीलेऊं नलिन ऐसे वाही[7] देखे हो तमें।
अहे है अहिरी तू धौं इही[8] कछु जानति है,
काके भाग औतरी है तोसी तोरे[9] गोत में।
तरुनी तिलक नंदलाल त्यों तिलक ताकि,
तो पर हौं वारों तिल तिल कै तिलोत्त में ॥४१॥

गयंद की चुराई[10] चाल मैंद[11] को लंक चोर्यो,
मुख तेरे चंद चोर्यो नासा चोरी कीर की।
मृगनि के नैन चोर्यो, पिकनि के बैन चोर्यो,
ओंठ तेरे लाल चोर्यो, दंत छवि हीर की।
कहै कवि गंग बैनी नाग तें[12] चुराइ लाई,
भौंह तो कमान पल[13]अर्जुन के तीर की।
जेते तुम लूटे ते पुकारत कन्हैया जू पै,
एतनि की चोरी कहा छपेगी अहीर की ॥४२॥

पाठान्तर छंद केसरि : [1] १४ सो।बटे०। [2] केसरी जैसी ।बटे०। केहरी की सी ।पुरोहित। [3] केसनि ।बटे०। पुरोहित, शृंगार-संग्रह। [4] करि ।बटे०। [5] के ।बटे०। [6] नीलऊं ।बटे०। [7] नाही ।बटे०। [8] इही ।बटे०। [9] तेरे ।बटे०।

छंद ४२ : [10] चोरी ।बटे०। [11] मयंद ।बटे०। [12] की ।बटे०। [13] चाल ।बटे०।

इसी छन्द से समता करने वाला वेनी कवि का छंद देखिए :

करि की चुराई चाल, सिंह को चुरायो लंक,
ससि को चुरायो मुख, नासा चोरी कीर की।
पिक को चुरायो बैन, मृग को चुरायो नैन,
दसन अनार हांसी, बीजरी गंभीर की।
कहै कवि वेनी वेनी व्याल की चुराइ लीनी,
रती रती सोभा सब रति के सरीर की।
अब तो कन्हैया जूको चित ही चुराइ लीन्हो,
छोरठी है गोरटी यो चोरटी अहीर की ॥

कविता-कौमुदी, प्रथम भाग, पृ० ४२६।

औरन, के गैहनि[1] सनेह सब भूलि जैहो,
बाही सों अधीन ह्वै के वाही सों उनाहुगे।
कहै कवि गंग मुख देखे सुख पैहो वति,
लोचन विसाल देखे लाल ललचाहुगे।
अंग की निकाई देखि अंग ना समैहो पुनि,
बैस की निकाई देखि बस ह्वै विकाहुगे।
जो पैं कहूं एक बार औचक हू देखि पैहो,
एक बार बीस बार एकै घर जाहुगे ॥४३॥

छांड़ि देहु अड़वारू[2] सैतिक[3] सिंगार हार[4],
कह्यो है जु कैसो राय[5] वैसे ही[6] ले आनिवी।
कहै कवि गंग कौन[7] तुम तै सलोनी ह्वै है,
सोंध[8] सी लपेटी अरू[9] सीधे[10] ही सो[11] सानिवी।
रोचना सो रुरो[12] गात पीक कैसे पागे ओंठ,
नैंना मोर[13] कैसे कोल कहां लौ वखानिवी।
रूप ही अनूप तुम ओज माने न्हाए जाए[14],
भूखन बनाये वीर वीरा खाए जानिवी ॥४४॥

। झूलना ।

केस पर सेष[15] दृग चलन पर खंजनी, भौंह पर धनुष धरि सुरति सारो।
दसन पर दामिनी, कंठ पर कोकिला, अधर परविंब रहि रहि सम्हारो।

पाठान्तर छंद ३४ : [1] गेह को ।बटे०।
छंद ४४ : [2] आड़ बार ।बटे०। [3] केतिक ।पुरोहित।
[4] भारु ।पुरोहित। [5] केसौ राय ।बटे०।
[6] ऐसे ही ।पुरोहित। [7] कोऊ ।पुरोहित।
[8] सोने ।पुरोहित। [9] लपेटी जो पै ।पुरोहित।
[10] सोंधे ।बटे०। [11] हूमें ।पुरोहित।
[12] सरीसो ।पुरोहित। [13] भोर ।बटे०।
[14] अनूप ही जु आजे मांजे न्हाए भाए ।बटे०।
छंद ४५ : [15] सेस ।बटे०।

जंघ पर कदलि, कटि छीन पर केहरी, कुचन पर मेघ महामंड[1] टारो।
जोति पर जोति, छवि अंग पर गंग, स्रीराधिका नखन पर चंद्र[2]
वारो ॥४५॥

। सवैया ।

लांक छुटै लरिकाई घटै तैं, निकाई कछु अधिकाई भई है।
गंग कहै लघु ग्रीव लसै, भुज सीवं उरोजन नीवं[3] दई है।
खेलनि, वोलनि, लाज, हंसी, रिस, चालि, चितोनि, मनोजमई है।
गोरी सी ग्वालि गुलाव से ओंठ गली ही में मारि गिराई गई है ॥४६॥

। कवित्त ।

विंबा जैसे होठ[4] विंवि[5] विधु सो वदन, प्रति,
विंव ऐसो,[6] रंभा, रति रूप की न कनी है।
कँवल[7] से नैन गंग मैनका तें आगरी है,
मधुर वथन[8] गरे, सुधा[9] संग सनी है।
गोकुल के धनी पुरी[10] पुन्यन बनी है तुम्हें,
कहत न वन कछू ऐसी वनी वनी है।
जहां तहां रही फवि,कसी है कुचन छवि,
पान ऐसी छाती, लंक पानकीसी अनी है ॥४७॥

वेसर को मोती मानो थहर थहर करै,
सोने को सो गात तामें दामिनी दुराई है।
चंद के पहासरे मैं आंगन में ठाढी भई,
आली तोरी जोति कैधों[11]चांदनी छिपाई है।
नैन तेरे मीन जैसे[12] चालू हू मराल जैसी[13],

---

[1] मेरू महासुंड ।वटे०। [2] चंद ।वटे०।
पाठान्तर छंद ४६ : [3] नीवी ।पुरोहित।, नीय ।कांकरौली।
छंद ४७ : [4] विंव से अधर ।वटे०। [5] विवि ।पुरोहित।
[6] ऐसी ।वटे०। [7] कमल ।वटे०। [8] गिरा ।वटे०।
[9] पियूष ।वटे०। [10] पूरे ।वटे०।
छंद ४८ : [11] किधौं ।वटे०। [12] मृग कैसे ।वटे०। [13] चाल गजराज की सी ।वटे०।

कुचन बनाव किधौं नारंगी नवाई है।
हियरे हमेल हार झलके समुद्र वीचि,
कहै कवि गंग वेनी वदरी[1] सी छाई है ।।४८।।

उरज कठोर, वाकी वानी न कठोर कछू,
मंद मंदगति होए, न मंदमति भाइए।
जाकी भौं कुटिल[2] हिय में न कुटिलाई[3] कहूं,
उदर तो छीन, न नितंव छीन छाइए।
चंचल नयन, पै ना[4] चंचल चरित्र ताको,[5]
कारो केस पास पै न[6] कारै गुन गाइए।
नाभि तौ गंभीर, पै गंभीर ना[7] रवन गेह।
कहै गंग कामिनी कहूंहि[8] ऐसी पाइए ।।४९।।

बीती[9] लरिकाई, तरुनाई आई धाइ दोरि,[10]
उपमा न पाई हौं[8] बताई स्रोतधार सी।
दृगनि की जोति जीति लीनी मृग सावक की,
जावक की जोति लीनी पावक की झार सी।
कहै कवि गंग चतुराई लीनी कबिन की,
धीरताई तपिन की सुमन की सार सी।
कहां लौ सराहों स्याम, आछी खरी ऊजरी है,
आरसी में देखिए, कि वामें देखि आरसी ।।५०।।

सवैया :

लांवी लटै, वटुरारो बदन्न, बनी वरुनी अरु आंखि अन्यारी।
गोरी अंगेठि अडीठ सी डीठि, सुपैठि रह्यो मनु पीठ पनारी।

पाठान्तर [1] वादर ।वटे०।
छंद ४९ : [2] भौह वक्र ।वटे०। [3] मन में न वक्रताई ।वटे०।
[4] हो न (वटे०) [5] ताके (वटे०) [6] कारे केस पास हो न। [7] न गंभीर हो (वटे०) [8] कहूँ (वटे०)।
छंद ५० : [9] छूटी (वटे०) [10] करि (बटे०) [11]मैं (वटे०)

गंग कहै कुच छोटो छिनी[१] कटि, छोटे छवा छवि कोटिकवारी।
फूली फराकी वनी बिहरै[२] वृज, नहिकहूं वृजनाह निहारी ॥५१॥

कवित्त :

रूप दुति[३] गंग अति, स्वाद को सुधा की गति,
बोलत बचन कीर, कोकिला रसाल सी।
घाम मांहि[४] चंदन सी, पावस[५] में बूंदन[६] सी,
सीतकाल सीतहारी[७] कासमीरी साल सी।
उई अकनाई भली, पीली तरुनाई भूली,[८]
कानो मिलि वेलि[९] फूली चंपक प्रवाल सी[१०]।
सत[११] सुख देत प्यारी, सौहे तन सैंत सारी,
उर सों लपटि जाति[१२] मालती की माल सी ॥५२॥

गोरस न लेति कोऊ गोरो अंग[१३] देखि देखि,
गारी सब लोग[१४] देइ[१५] काको मुख गहिए।
बाट परी[१६] बारी वैस, बोलि हूं न चालि आवे,
काहू को अनोखो डांड[१७] कहां लागि सहिए[१८]।
गंग कहे मोहि सब, तबही ये दोस देहु,[१९]
कान्ह को उमाहें जो पे कुंज को उमहिए।
सोभन[२०] सुढार कुच, बड़े नैना, बड़े बार,
करि डारे करतार तासों कहा कहिए ॥५३॥

पाठान्तर छंद ५१ : [१] छोटी (वटे०) [२] फरक्कि भई फिरती (वटे०)
छंद ५२ : [३] हती (पुरोहित) [४] धूपकाल (वटे०) [५] वरषा (वटे०) [६] बुंदन (वटे०) [७] सीत-रच्छा (वटे०) [८] उदित अरुनताई, पीत तौ तरुनताई (वटे०) [९] बैस (पुरोहित) [१०] गुलाब (वटे०)।
छं० ५२ : [११] अति (वटे०) [१२] जात (वटे०)।
छं० ५३ : [१३] आंगु (कांकरौली), मुख (पुरोहित) [१४] कोऊ (वटे०) [१५]देइं (वटे०), देत (पुरोहित) [१६]भटपरी (पुरोहित) [१७]डीठ (पुरोहित) [१८] काहे लागि (वटे०) कहां लागि (पुरोहित) [१९] तुम सबही पै दीजै दोस (पुरोहित) [२०] सुढर (वटे०)।

केतिक सोने की डींडि, केसर सों मारी मींडि,
ऐपन[1] की पींडि जोति चंपाहू[2] लजायो[3] है।
दामिनी दिया की दति[4] देखत मलीन[5] होति,
पियावसे फूल[6] को वरन बिबरायो[7] है
कहै कवि गंग रिखि[8] भूले हैं निरखि ग्रंग,
ऐसो रंग कहां ते बिधाता ग्रानि नायो है।
गोरी गोरी पातरी प्रवाल की सी ग्रोप ग्रोंठ,[9]
ऐसी को पसर कान्ह पूरि[10] पुन्य पायो है ।।५४।।

बैनी के[11] कसनि रही कसनि सुकारौ सांप,
दसन की लसनि, ग्रसनि दोहियत है।
छाती पीन, छीन लंक, छदस कला को बिधु,
छोटे छोटे बदन[12] की छवि छोहियत है।
कहै कवि गंग कान खुभित खुभत मन,
खरोपान सूखे तें खरोई सोहियत है।
कांचरी सो चीर, काच कांचन की ग्रौप ग्रांग,
कांच की चुरी की जेव जग मोहियत है ।।५५।।

सवैया :

लांबी लटें लुवराई को लौन मुखे बन्यो पानिय, नेननि पानी।
ग्रोंठनि बीच दुरी कुंदरी बंसुरी ते तनी[13] मधुरी पिक बानी।
गंग निकाई खरी निखरी, नख तें सिख लौं वृखभानु[14] बखानी।
ग्राहि ग्रहीर पै होति है बीर, बयंसहि मैन महीप की रानी ।।५६।।

पाठान्तर छं० ५४ : [1] ग्रैयनै (पुरोहित) [2] चंपाऊ (बटे०)
[3] चलयो (पुरोहित, सभा) [4] जोति (बटे०)
[5] मलिन (बटे०) [6] फूल पियावासे (बटे०)
फूल पीरे बासे (पुरोहित) [7] बीच लीयो (पुरो-
हित) [8] रिषि (बटे०) [9] गोरी पीरी पात
पवारी की सी वोप ग्रोठ (पुरोहित)।
[10] पूरे (बटे०)।
छं० ५५ : [11] की (बटे) [12] मोटे बदन (कांकरौली)।
छं० ५६ : [13] कछू (बटे०) [14] वृषभानु (बटे०)।

जील से बोल[1] लजीली विलोकनि, देखे सुने जो गोपाल अरैगो[2] ।
गंग कहै कबहूं रति के भ्रम, मानि मनोजुवौ[3] अंक भरैगो ।
फूल के मूल के तूल कियो, कटि फूंक लगेहूंत[4] टूटि परैगो ।
आंग की ऊठ उठान सु[5] जोवन, होठन[6] को रंग राज करैगौ ।।५७।।

सीस पै[7] फूल, गरैंमु कुतावलि,[8] सोहत मंजुल[9] नूपुर पाइनि ।
गंग कहै उमही छवि सिंधु सी हौले बिसूरति नीवी सुभाइनि[10] ।
खीर सों चीर खरो सो खुल्यो तनु, तांते कह्यो तिन तोरि गुसांइनि ।[11]
आज कहूं उपसेज न जाउगी, जोन्ह ते जीति हौ है ठकुराइनि[12] ।।५८।।

सिंधु सुता नहिं सोम सो आनन,[13] कुंदन से तन साचे भरी सी ।
गंग कहै कटि केहरि कौन, वराटिहुं तें कट्रि खीन खरी सी ।
पीन पयोधर के भर तें या परै जिन टूटि खरी हौं डरी सी ।
और जराइ जराइ जिते सत्र, जोवन जेव जराइ जरी सी ।।५९।।

पाठान्तर छं० ५७ : [1] बोल लजीले (बटे०) [2] लजीली विलोकनि, देखें सुनें हरि ध्यान धरैगो (बटे०), लजीले से बोल, लजीले से लोचन, देखे सुने हरि ध्यान धरैगो (कांकरौली), [3] रति को अति ही भ्रम मानि मनोहर (बटे०) [4] लगें मनो (बटे०) [5] सो (बटे) [6] ओठनि (बटे०) ।

छं० ५८ : [7] केसनि (बटे०) [8] मुकतालर (बटे०) [9] रूपे के (बटे०) [10] गंग जहां सुतहां उमगी छवि, नीर तें चीकनी ओप उपाइनि (बटे०) [11] खीर सों चीर खरोई रह्यो खुलि ताकि कह्यो तिनु तोरि लुगाइनि (बटे०) । [12] आज कहूं उपसीजि न जाहुगी, जोन्ह तें जीति हो मेरी गुसांइनि (बटे०) ।

छं० ५९ : [13] नहिं सिंधु सुता, सुत सिंधु सो आनन (बटे०) पिंगल शास्त्र के नियमानुसार इसमें नहिं अधिक है । सं०) ।

सांस[1] सी सूछम, इन्दु[2] सी स्वच्छ, दुकूल तिया[3] पहिरें सचु पावे।
ऊक सो अंग, उदै सो किये, मनु रूप कछू इतरात सो आवे।
कंचन के कर से[4] कुच मंडल, देखत गंग ठगोरी सी लावे।
स्त्राप सो लांक, असीसि सी आंखि, सु ऐसी अहीरी गुपालहिं भावे ।।६०।।

कवित्त :

वरुनी कंटीली भौंहें कुटिल कटारीं सी ये,
बान सी बनक दीठि[5] कौने पर डारिहै।
नैन अनियारे खुभी अनियारी अनी कोटि,
अनियारे उरज उतंग फिरि[6] धारि है।
कहै कवि गंग कान्ह नेकु जो चितैहै आइ,[7]
वेसुध[8] विकल ह्वैहै रीझ न संभारि है।
गरब गहेली ग्वारि अंचर सुधारि देहि,
दई की संवारी कहूं मान सहि मारि है ।।६१।।

जीते गजराज गति राजत न राजहंस,
पायनि राजीव नैन भानु सौ भरत है।[9]
विपुल नितंब तट, निपट सुछीन[10] कटि,
(त्रिवलि त्रिकाल सी)[11] बटि बटि जरत है।
दार्यो के बिया की, मुतिया की छवि छिया छिया,
दुतिया की दुति[12] ताते जियरा डरत है।
कहै कवि गंग हिया अंगिया उलेडे देति
रूप में जदाइ जेव जोवन करत है ।।६२।।

छं० ६० : [1] फूंक (वटे०) [2] फूल (वटे८) [3] त्रिया (व…
[4] कल से (वटे०)।

छं० ६१ : [5] डीठि (वटे०) [6] पुनि (वटे०) [7] आनि (व…
[8] बिह्वल (वटे०)।

छं० ६२ : [9] भानु सोभ रत है (वटे०) [10] पातरी (व…
[11] (वटे०) में कोष्ठांकित अंश नहीं है…
अनुमान से पूरा किया गया है (संपा०) [12]…
(वटे०)।

कांचन[1]की कचपची, चूरिन की चमकनि,
छकनि की चाहनि चहक चित रही है।
कुचन की उंचन में अंचरा समाइ जात,
चामीकार चंपक तें रुरी रुचि गही है।
चपला सी लसी चलै चीर कौ चुनाव बन्यो
चोवा की चुपरि चोरी चारू चहचही है।
गंग कहै चंदन चढ़ाइ चंदमुखी ठाढ़ी,
चंदाऊतें, चांदनी तें अति डह डही है ॥६३॥

दूरि ही तें दूरी चितवति, मुरि मुसकति,
ढुरनि लगति ढिग सिखै हारी सखियां।
वे तो बापुरी ह्वै आई उन उपरो है मान,
छाती में छपावें जैसे छीपी की सी बखियां।
कहै कवि गंग जब लागै तलवेली तब,
तलफत फिरें ज्यों मयूखवाली[2] मखियां।
बोलि लीजै बानी, कि छुवाइ लीजै ज्वानी नेकु,
छोलि लीजे रूप, कि[3] छिनाइ लीजे अंखियां ॥६४॥

लीजिये जू ललन लिवाइ लाई ललना कों,
लखें सुख पैहौ नखसिख है तमासे की।
कहैं कवि गंग याकी छवि बरनी न जाइ,[4]
वोन्ह लों जगमगात भकम के हासे की[5]।
केसरि यो तनक कनक कहूं[6] पटतर,
चपेऊ में चमक कहूं कि पियाबासे की।
पार्वती चौसर, सवाब स्त्री चूनर जू,
चारि को सो आंक लांक, आप चारि मासे की ॥६५॥

ठुमकि ठुमकि पग धरति धरति[7] पर,
बिधु[8] को सो बदन मनोज बीज बै गई।

पाठान्तर छं० ६३ : [1] कंचन (बटे०)।
६४ : [2] मयूप (बटे०) [3] के (बटे०)।
६५ : [4] जात (बटे०) [5] प्रभा काम हासे की (बटे०)
[6] हूं न(बटे०)।
छं० ६६ : [7] धरत धरनि (बटे०) [8] ससि (बटे०)

कहै कवि गंग लंक लहरि लहरि करै,
फूलन के भार नारि कैयौ[1] वार नै गई।
सुंदर सुघर नारि बिधना रची बिचारि,[2]
ऐसी हो[3] न देखी भलें देखें दूख दै गई।
चूरा चारु चमकाइ, झमकाइ झीनो पट,
लर लटकाइ, अटकाइ मन लै गई ॥६६॥

छप्पय :

गज्ज[4] हंस पर चढ़्यो, गज्ज[5] पर सिंह बिराजै[6]।
सिंह सागर सिर धर्‌यो, ताहिं[7] द्वै[8] गिरिबर साजै[9]।
गिरिवर पर इक कवंल,[10] कवंल बिच कोइल[11] बोलै।
कोइल पर इक कीर, कीर पर मृग ही डोलै।
मृगन ससी हरसिर धर्‌यो, तापै सेष सदा रहै।
कवि गंग भनै रे गुनिजनों हंस भार कितनो सहै ॥६७॥

सवैया :

जोवन जोर उतंग[12] मरोर, उठें कुच फोरि के दोऊ[13] तनी के
कंचन के कलसा मुख पै अलि चाखत वैठि सुस्वाद अनी के[14]।

पाठान्तर छं० ६६ : [1] केऊ (वटे०) [2] संवारि (वटे०) [3] हू (पुरोहित)
छं० ६७ : [4] [5] गिद्ध (पुरोहित) [6] विरज्जै (वटे०) [7]
(पुरोहित) [8] दो (पुरोहित) [9] सज्जै (व
गज्जै (पुरोहित) [10] कमल (वटे०) [11] को
(वटे०)।

इसी छन्द के समान राजस्थानी कवि गड्डु का निम्नलिखित छ
द्रष्टव्य है :

हंसहिं गज चढ़ि चल्यो, करी पर सिह विरज्जै।
सिंहहिं सागर धर्‌यो, सिंधु पर गिरि द्वै सज्जै।
गिरिवर पर इक कमल, कमल पर कोयल बोले।
कोयल पर इक कीर, कीर की पर मृगहू डोले।
ता ऊपर सिसु नाग के, निसु दिन फनिय धरे रहै।
कवि गड्डु कहै गुनिजनन सों, हंसभार केतो सहै॥
कविता- कौमुदी प्रथम भाग : छं० सं० ५० पृ०

छं० ६८ : [12] अनंग (वटे०) [13]दौर (वटे०) [14] र
वैठि अली जुग नीके (वटे०), रस चाखत
अनी के (सभा)

गंग कहै इक वाल विहाल है,[1] काम खरें मनो संग धनी के।
सोवत वेनी छुटी मुख ऊपर चंद पर्‌यो[2] जनु फंद फनी के ।।६८।।

खोजि[3] फिर्‌यो मथत्रा नगरी, अरू नाग के लोकन लौं मति मच्छी।
तेरी सी आंकि तुही नहिं आनत काम की कामिनि तो सिर दच्छी।
सीस तें पांयन लों सुर्‌इयो उरइयो कवि गंग सुलच्छन लच्छी।
पार न पात, कछू न विसात, भए जुग[4] नैन जहाज के पच्छी ।।६९।।

नेक न चिये वैठति नागरी, जीवन हाथ लिये भ्रमै[5] ऊरी।
आधे[6] लिलाट धरै लुगरा सु तौ झांकी न यातें झरोखनि दूरी।
निकसे जु सबै लरिका हठ सौं, नयै[7] नैनन आइके लाइहै ढूरी।
गंग कहै जु कहूं नंदलाल को, सो लचकी न इन्हें भई कूरी ।।७०।।

आवतही वृखभानु[8] कुमारि सखी भली सुंदरी[9] दौरी तहां ही।
कोऊ[10] कहे हंसि कान्ह सों वात, सुने चितवै अंखियानि लजाही।
जोवन यों तमक्यो तन में गंग बखान कियो[11] नहिं जाही।
ज्यों चहुं औरन दीप धरे उनमान किये लखिये परछांही ।।७१।।

कवित्त :

वाजूवन्द कंकन जराय जरी डोलति है,
सीस फूल सीस पै, अतुल[12] छवि दे गई।
वेसरि को मोती थहराय रह्यो ओठन[13] पै,
चौकियो हमेल स्यों[14] कपोलनि सो छ्वै गई।
कहै कवि गंग वनी अंगिया कटावन की,
घूंघट में हेरि हेरि[15] औरे कछू के गई।

पाठान्तर छं० : ६८ [1] ह्वै (वटे०) [2] परो (बटे०)।
६९ : [3] ढूंढ़ि (बटे०) [4] दोऊ (वटे०)।
७० : [5] फिरे (बटे) [6] आधो (बटे०) [7] इन (बटे०)।
७१ : [8] वृषभानु (वटे०) [9] सखी इक संग की (वटे०)
[10] काहू (वटे०) [11] किये (वटे०)।
छं० ७२ : [12] अधिक (वटे०) [13] होंठन (बटे०) [14] सो (पुरोहित) [15] निरखि के (बटे०)।

सांवरी सलोनी नारि चलै अलवेली चाल,
काकरेजा पहिरि कलेजा काढ़ि ले गई ॥७२॥

क्रोध अरविन्द सों, विरोध विधु बिंबसों तू.
प्यारी पाके बिंव औ पियूख ऊख[1] पेखिए।
गंग कहै भामिनि भुवंगहू सों चित्तभंग,
कुरंग कुरंगहू सों को को लखि लेखिए।
कुलिस सों, कोरक सों, किले सों रिसनि तोरे[2]।
विस की लता सों, विसवृन्द सों विसेखिए।
कोइल सों कुपित, कलह कलहंसनि सों,
कीरहू सों भेरी बीर बीर रस देखिए ॥७३॥

सवैया :

लाल, गई ललना कहं लेन ही, ताहि विलोकि रही गहि मौन सो।
वा मुख की दुति नील निचोल[3] मैं, चाहत चंद उदौ मनु हौन सो।
गंग कहै लखि रीझिहों लाल[4] जगामग जोति सबै तन सौन सो।
प्यारी के रूप के पानिप में मन माइल मेरो बिलाइगो लौन सो ॥७४॥

लंबी लटै[5] ललकै[6] हरि लांक, मनो रति रूप रुकावन देहै।
गंग अभूषन ह्वै हैं[7] कहा, विधु सो मुख जानि मुखै मुसकै है।
आपुन स्यान सबै करि है, किधौं मेख्यौ एक कहा सुनि[8] लै है।
ऐसो संवारि सिंगार करै जनि[9], काहू की आंखिन में गड़ि जैहै ॥७५॥

पाठान्तर छं० ७३ : [1] पियूप ऊष (वटे०) [2] तेरे (वटे०)।
७४ : [3] दुकूल (वटे०) [4] हाल (वटे०)।
७५ : [5] लांवी लट (वटे०) [6] लचकै (वटे०) [7] ...
(वटे०)।
[8] कछू सिख (वटे०) [9] स्वांरि सिंगार कहा क...
अरि (वटे०)।

नीके ही नीकी निकाई लिये, विधि काहे को सेंतिक ठीकऊ है ठैहौ ।
गंग कहै विधु की छवि छीनी है, घूंघट ओट दिए[1] मुसकैहौ ।
रूप की आगरि, तेज[2] की रासि, जहान[3] को रूप अकेली ही लैहो ।
मांजि संवारि मनो अपनो[4] तन, काहू की आंखिन में गड़ि जै हौ ।।७६।।

छन अंजत है, छन मंजत है, छन कंस संवारत वैठी अटा ।
भली[5] कोमल कंज कली हैं दुग्रौं कुच सोभित वीच ही झीन पटा ।
कवि गंग भनै, छवि का वरनौं यहि रूप विलोकि के कौन लटा ।
भरि केस लसै मुख पीत भलो, उनई जनु चंद पे स्याम घटा[6] ।।७७।।

(क) स्वकीया

(१) मुग्धा

सवैया :

जो चितऊं[7] तो रहे चित में चुभि, याही ते भूलि न दीठ उठाऊं[8] ।
प्यारे गोपालहिं[9] के बस वास कहां लगि आंचर आंखि दुराऊं[10] ।।
गंग कहै हरि को मुख चन्द विलोकति ही भरि आनंद आऊं[11] ।
देखि सखी वड़वानल लाज ते[12], प्रेम समुद्र न वाढ़न पाऊं[13] ।।७८।।

चाल[14] न जानत[15] चंचलता, चुनरी चहुं खूब[16] वनी अति राती ।
चन्दन खौर चुनाव[17] की वेंदी, नवेली तिया सब संग संगाती[18] ।।
सेज को नाम लिये सकुचे, कवि गंग कहै न कही छवि जाती ।
सोने से गात सलोने से नैन, अनूठें से ओठ, अछूती सी छाती ।।७९।।

पाठान्तर छं० ७६ : [1] दए (वटे०) [2] रूप (वटे०) [3] जगत्त (वटे०)
[4] मांजि ही मांजि (वटे०) ।
७७ : [5] अति (वटे०) [6] जवही भरि केस लसै मुख पीत तवै ससि ऊपर स्याम घटा (वटे०) ।
छं० ७८ : [7] चितवै (वटे०) [8] उठावै (वटे०) [9] एक परोसहि (वटे०) [10] दुरावै (वटे०) [11] आवे (वटे०)
[12] लाज महा वड़वानल सी सखि (वटे०) [13] पावै (वटे०) ।
छं० ७९ : [14]चालि (वटे०) [15]जानति (वटे०) [16] खूंट (वटे०)
[17] खौरि चुवाही (वटे०) खौर चुवा ही (पुरोहित)
[18] संघाती (वटे०), सखाती (पुरोहित) ।

बांहन बीच[1] दुराइ दुओौ[2] कुच, बैठि मलै वा दुओौ[3] कर नीवी।
गंग कहै जुहियां[4] तौ यहै वा, हुआं[5] अति देत गुविन्द गरीबी।
आनि भई है[6] नई नवला, परजंक न पारिवी, अंक न लीवी।
बातन नैन नदी करि देति है[7], और कहा तुम्हें पूजिवो कीबी ॥८०॥
पायनि जेहरि बाके अनोट नए बिछुवा बजे रौनन[8] वारे।
गंग चली हंसि हंस प्रसंसित[9], हेरि थके हथिया मतवारे।
लाज के फाटक फाट[10], गये, न फिरे फिरि[11]धीरज के रखवारे॥
यों चितई मुरि लोचन कौर[12] उठे मनों[13] फूल सरोज संवारे ॥८१॥

कवित्त

जो मैं कह्यो जौ लों नेकु जोन्ह की जामिनी जाइ,
तौ लों तलावेली मेटि मोहि तू जियन दे।
त्यों त्यों गंग अकुलाइ खरीये चुलबुलाइ,
चोंप चढ़े[14] चरन बिछोह बिछियन दे॥
लागी[15] लेन विहंसि विहंसि बीरी बिरहुली,
बेसर उठाइ ओठ अनूठी पियन दे
अंचरा उघारि, मन मोहन को हार टारि,
अंगिया उतारि हियो हिये ही हियन दे ॥८२॥

(२) नवोढा

सवैया

चालो भये[16] दिन चारि गये,[17] पिय अंग लगें बतियानि ढिठानी।
गंग खरी अंगिया दरकै दिन ऊठि अंगेठनि उत्तम ठानी।
जोबन रूपहिं जोर पर्यो, सु सराहत[18] बारहिं बार जेठानी[19]
नैनन भौंहन आनि चढ़यो रस पूस के पास ज्यों ऊख मिठानी ॥८३॥

पाठान्तर छं० ८० : [1] ओट (बटे०) [2] दुहूं (बटे०) [3] दुहूं (बटे०)
[4] इहां (बटे०) [5] उहां (बटे०)
[6] हौ (बटे०) [7] देति हो (बटे०)।
छं० ८१ : [8] नूपुर (बटे०) [9] गंग कहै चले हंस प्रसं
(बटे०) गंग चली हंसि हंस प्रसंसित (पुरोहि
[10] फाटिक फाटि (बटे०) [11] फुनि (बटे०)
[12] हरि त्यों भरि दीठ (बटे०) [13] जनो (बटे०)
छं० ८२ : [14] चढ़ी (बटे०) [15] लगी (बटे०)।
छं० ८३ : [16] लएं (बटे०) [17] भये (बटे०) [18] सराहति (ब
[19] जिठानी (बटे०)।

मेरो सो ज्यों करि मेरी सी आँखिन जोर बिलोकहु ज्यों करि गाढ़ो ।
अवहु आय चितै चित राखहु, है त्रितचोर चितौत है ठाढ़ी ।
गंग कहै मन कान्ह को भौ, घर बाहिर वैर को वारिध ठाढ़ौ ।
यो[1] मुख देखि कहै घर हाई, हो लाज करो अरु घूंघट काढ़ो ।।८४।।

नंद नंदन संग सखी मिलि के, वज तें वन बीथिन खेलन जैये ।
कवि गंग कवै जल केलि भली[2] जमुनातट बैठि मिले दधि खैये ।
उघरे मुख अंग कछू चलै, पुनि केतिक बातन को पछितैये ।
यहु मूंदति सीस को घूंघट ते, जु बसी रहती अब लौं लरिकैंये[3] ।।८५।।

कवित्त

तब दुरि दुरि मुरि[4] भाजि भाजि जाति हती,
अब काहे कान्ह ही में होंसि[5] लपटावनी
तब तो पिया के नाम[6] कान मूंदि बैठति ही,
अब तो निडर भई सौतिन डरावनी ।
कहै कवि गंग तब अति दुख पावति ही,
अब कछू गयी काहू[7] सकुच घटावनी ।
तब सतराति ही रिसाति जाही ताहि सन,
अब तुम दौऊ एक हय की[8] वटावनी ।।८६।।

(३) वय: संधि

सवैया

नहिं नैनन चंचलता प्रगटी, पुनि बैन न मैन समान[9] धर्यो ।
कवि गंग अजौ पग आतुरि ह्वै[10] चित चातुरी नहिं प्रवेस करयो ।

पाठान्तर छं० ८४ [1] यही (पुरोहित)
छं० ८५ [2] कहै जल केलि के कै (बटे०) [3] को रचिवो करती यह घूंघट जौ अवलौं रहती लरिकैयै (बटे०) इस चरण में गण परिगणन दोष अत्यन्त स्पष्ट है । गण शुद्धि को ध्यान में रख कर यहां संशोधन किया गया है (संपादक) ।
छं० ८६ : [4] दुरि मुरि मुरि (बटे०) [5] कहि कान्ह काहे कीन्ही (बटे०) [6] नाउं (बटे०) [7] दैहौ लाल (बटे०) [8] हम ही (बटे०) ।
छं० ८७ : [9] सयान (बटे०) [10] आतुरी है (बटे०)

कबहूं कबहूं तन यों झलकै अरि[1] जोबन सैसव मांझि दुर्‌यो।
जिमि ग्रैह महा गहिरे जल में, उछरे दुरि जात कलोल[2] भर्‌यो ॥८७॥

अब ही तो नहीं बिब[3] भौंह जरि, अब ही दृग सों दृग जोरत है।
अब ही तो उरोज नहीं उर में, अब ही उर अंचल मोरत है।
अब ही तो नहीं कटि छीन भई, अब ही कछु अंग मरोरत है।
कवि गंग कहै वृषभानु सुता रस औ विष को मिल[4] घोरत है ॥८८॥

अबहूं[5] लखिये गुन वेई सवे, हंसिबो, खिझिबो, खुलि खेलन, सोरै[6]
मैं हि तकी न तकी पिय ओर, कहूँ हित की चलिये उहि ओरै[7]।
सैसवता न गयी दृग गंग, जनावत आगम जोबन जोरै[8]।
ज्यों रजनी रजनीस समेत पुकारि कहै कुकुराकुल भोरै[9] ॥८९॥

जोबन जात जुड़ात विलोकत, जोति जुदी जनो जोन्ह जरी है।
गंग कहै सिसु बैस वितै, जल जोवन खोरि खरि निखरी है।
रूप को कूल टिकान[10] कछू बिन, लांक मनो अंतरीख धरी है।
या अनुहारि न नारि कहूँ जनु काहु नये करतार करी है ॥९०॥

कवित्त

छिरहरे जल जैसे बुरी ह्वै कुमुद कली[11],
ऐसे उरोजनि उर दई है[12] दिखाई सी।
गंग भनै सांझ सी सुहाई बैस पै सिआई[13]
लरिकाई तरुनाई[14] मैन लखियाइ सी[15]।

पाठान्तर ८७ : [1] अरी (बटे०) [2] जाइ अलोल (बटे०)
छं० ८८ : [3] बिय (बटे०) [4] रस में विष को इमि (बटे०)
८९ : [5] लौं (बटे०) [6] सोरहि (बटे०) [7] ओरहि (बटे०) [8] जोरहि (बटे०) [9] भोंरहि (बटे०)
छं० ९० : [10] रूप कोऊ लट कान्ह (कांकरौली) [2] मनो
९१ : [11] दुरै जल जैसे ह्वै कमल कली थरहरे (य
फिर हरै जल जैसे दुरी ह्वै कुमुद कली (पु
[12] दीनी है सुरचि (बटे०) [13] तरुनाई आई
बैस तानै कछू (याज्ञिक) [14] लरिकाई म
(बटे०) [15] पाई (बटे०)

स्यामा को सलौनो तन तामे दिन चार[1] मांझ
फिर्योई चहन मनमथ की दुहाई सी ।
सीसी के सलिल ज्यों, सुमन की पराग ऐसे,
सिसुता में जोबन की झलमले झांई सी [2]॥९१॥

(४) मध्या

निसि धौंस [3] रहत हिलेई मिले दोऊ फिर,
फिर फिर याही तें परेखो कीजियतु है।
कहै कवि गंग जैसे पानी में पखान परे,
पुरइन को पात नेक पचि भीजियतु है।
रूपवंत मानस रसीली आंखि लागत है,
ताको तुम्हें कहा कछू दोष दीजियतु है।
जोई जोई रुख देखि बैठिये छिनक छांह,
सोई सोई रुख संग लाइ लीजियतु है ॥९२॥

(५) सद्यः स्नाता

सवैया

रैन समै रस केलि कियौ, अलि भोर भये उठि मज्जन धांई[4]
नीर के छीर में देह डुवी[5] जमुना जल में जैसे[6] चंद कि छांई[7]।
ले बुड़की जल से उभरी, [8]उरझी[9] अलकै मुख ऊपर आँई।
द्वौ कर केस सवांरि लिमौ[10] निकस्यो रवि[11] कोरि पहार के तांई[12]॥९३॥

पाठान्तर छं० ९१ [1]द्वैक (बटे०) चारिक (पुरोहित) [2] सीसी में सलिल जैसे, सुमन पराग तैसे, सिसुता में झलमले जोवन की झांई सी (बटे०)। सिसुता में झलमलात जोवन की झाई सी
(पुरोहित)

९२ : [3]रात दिन (बटे०)।

छं० ९३ : [4]केलि कियें हरि नागरि सों, तिप प्रांत ही मज्जन कों उठि धाई (बटे०)
[5]नील दुकूल में देह दिपै (बटे०) [6]मनु (बटे०)
[7]झांई (बटे०) [8]ले चुभकी वहुर्यो उछरी (बटे०)
[9] विधुरी (बटे०) [10]आगे तें केस उढ़ाये मनो (बटे०) [11]ससि (बटे) [12]की नाई (बटे०)।

साहि अकब्बर संग की भामिनि, नेह निमित्त जु गेहि नहाई ।
नीर के बूंद सरीर लसै[1] मनु हीरहि कंचन खंभ बनाई ।
ऐचि निचोइ बंधी चुचुवाती छुटी लट आई मुखोपर छाई[2] ।
तातें मयूख उमंगि-चल्यो मनो, चंद के विंव दरार सी खाई ॥९४॥

(ख) परकीया

कवित्त

मोहन हमारो मन बेच्यो[3] है तिहारे हाथ,
कुले परित्यागि हैं वे[4] तुमहि न त्यागि हैं ।
कहै कवि गंग कान्ह समयो विचारि देखो,
आगिली पाछिली बातें सब[5] सांची लागि हैं ।
कोरे लागी[6] ननद, उसीसे जागी उसी[7] सास,
एहां वेहां द्यौरानी जेठानी[8] दोऊ आगि हैं ।
केहां[9] वैठें मौको आनि घर ही में घेरू[10] ठानि,
घर वसै घर जाहि गुरजन जागि हैं ॥९५॥

बार-बार बरनै को बरन निकाई सुनि,
बारक वरुनी[11] फांसि मेरी दीठि[12] फंसी सी ।
कहै कवि गंग तोहि मोहि रहै नन्दलाल,
तू तो महा[13] मोहिनी है मदन की असी सी ।

पाठान्तर छं ९४ : [1] जलके कनकातन सोभित हैं (वटे०) इस चर[ण]
में भी गणदोष है जिसे संशोधित किया ग[या]
(संपादक) [2] छूटि मुखोपर आई (वटे०)
छं ९५ : [3] विक्यो (वटे०) [4] पे (वटे०)
[5] सब बातें (वटे०) [6] कौरे लागि (वटे०)
[7] उसी (वटे०) [8] यहां वहां द्यौरानी जिठानी
(वटे०)
[9] कहां (वटे०) [10] घेर (वटे०)
छं० ९६ [11] बार कौ वरुन (वटे०) [12] डीठि (वटे०)
[13] मन (वटे०)

हांसी औ चितौनि दोऊ चित में चहकि रही,
चितौनी न चितौन सी, हंसी यो[1] न हंसी सी।
तेरे प्यारे[2] घर जात धरियो[3] न घर जात,
तू तो घर वसी उर वसी उरवसी सी ॥९६॥

सवैया

पहिचानत[4] जानत लोग[5] सवै, तिनके अति[6] त्रास हिये कसिये[7]।
तकिवे न चितै भरि नैन गोपाल, मरूकर ही मन में गसिये[8]।
कवि गंग अकेले ही[9] केलि समै, जिनकी तजि लाज जहां हंसिये[10]।
यह[11] आवत है, इन लोगन ते, मन मोहन ले अनतै बसिये ॥९७॥

कवित्त

पीत पट अति वन्यो, कसि सों बनाय वांध्यो,
लटन लपेटि लई फूलन की झौरई।
कहै कवि गंग तन निन्दै नव नील घन,
कलाऊन पूजति कमल दल कौरई।

देखो आन[11] दसा देह उमड़ी है नेह नदी,
कैसी नीकी लागति है गूजरि की गौरई।
भोरी भोरी भई कान्ह पूछत है कान लगि[12],
सांवरे के अंग लागे सोय सो न सौरई[13] ॥९८॥

पाठान्तर छं० ९६ [1] चितौनि सी चितौनि न हंसी औ (वटे०)
[2] घाले (वटे०) [3] घरी औ (वटे०)
छं० ९७ [4] पहचानत (वटे०) [5] बंधु (वटे०)
[6] तनु (वटे०) [7] खरे त्रसियै (वटे०)
[8] सकिये नहिं नेकु निहारि गुपाल सु देखि मसोसनि ही मसिये (वटे०) [9] अकेलिये (वटे०)
[10] मन की तजि लाज तहां हंसिये (वटे०)
[11] जिय (वटे०)।
छं० ९८ [12] आनि (वटे) [13]लागि (वटे०) [14]सौंइहौ (वटे०)

मेरी तेरी प्रीति को चवाव चहूँ ओर भयो,
नेक नेक बातन सों मीत कहा डरि है।
नैना जब लागे बिना लाग[1] तो न ह्वै हैं अब,
प्रेम रस पागे जासो[2] भागे कहा सरि है।
कहै कवि गंग जो भलाई ते बुराई ओढ़ी,
खोटी खोटी बातन ते प्रेम फंद परि है।
तांत जब बाजी तब बूझ्यो[3] राग साजी जहां,
दोऊ भये राजी[4] तहां काजी[5] कहा करि है ॥९९॥

मेहरी की जाति-पांति देहरी दुर्लभ होती,
गहिरि[6] अवधि गहौ काहैं[7] अकुलाति हौ ॥
कहै कवि गंग बाकी प्रीति[8] किये जानियत,
आपने सनेह काहे आप फूले जाति हौ[9] ।
कांटन की बारी[10] फारि, फन्दन[11] को कोट टारि,
आइबो करै जु तू, तो ताहू न पत्याति हो।
काहे काज बार-बार बांसुरी बजाइयत,
नेक नीचे बैठो बीर काहे को भुलाति[12] हो ॥१००॥

(ग) सामान्या

सवैया

चारिहु जाम जगाय लई तुम, मानुस एक द्वै जाम जगावै।
गंग रहे तन में तनको बल, सौ फल[13] तो पल लागत पावै।
तोरि मरोरि घरीक घरी है, हमारो या हाल तुम्हारो सुभावै।
हार को देय, उठावै को आंचर, कोरिक[14] अंक वनी घर आवै ॥ १०१

पाठान्तर छं० ९९ [1] अन-लागे (बटे०) [2] तासों (बटे०)
[3] भन्यो (बटे०) [4] राज़ी (पुरोहित)
[5] काज़ी (पुरोहित)
छं० १०० [6] गहरी (बटे०) [7] कहा (बटे०)
[8] प्रीति वाकी (बटे०) [9] कत आपुही सिहात (बटे०) [10] बारि (बटे०) [11] फाटिन (ब
[12] काहे भूले जात (बटे०)।
छं० १०१ [13] तौफल सौ (बटे०) [14] कौरिक अंक ह्वै या (ब
को करि अंक ह्वै इ (या
(अंतिम चरणार्द्ध में गण-दोष परिहारार्थ संशोधन
गया है—सम्पादक)

नृप मारि चली अपने पिय पै, पिय नाग डस्यो दुख में परिहूं ।
परदेस गयी वन सोय[1] गृही मौंहि बेच दई गनिका घरिहूं ।
सुत संग भयो, जरिबे को चली, जलपूर भर्यो निकसी तरिहूं ।
महराजकुमार अहीर भई, अब छाछ को सोच कहा करिहूं ।। १०२ ।।

(क) स्वाधीन पतिका

भाग वड़ो है सुहाग[२] वड़ो अनुराग वड़ो पिया तोहि सों राखै ।
रूप वड़ो गुन[3] तेरो बड़ो बड़ो रस देखि वड़ो सुख भाखै ।
हेत वड़ो हरि सों कवि गंग वड़ो सनमान बढ़ी अभिलाखै ।
सील वड़ो हि दियो करतार, वड़े वड़े बार, वड़ी आंखै ।। १०३ ।।

(ख) खण्डिता

काहू सखीन[3] कह्यो हंसि के घनस्याम कहूं रति रंग रमे हैं ।
गंग सुलेति ए[3] राग-विराग मरू करि मेंटि[४] मनाइ तमे हैं ।
वा मृगनैनी के वेगि न जाउ[५], कछू भत[६] कोप कछूक छमे हैं ।
जानत हौ ओहि[७] आंखिन के, अंसुवा वहुर्यो इहि देस समे हैं ।। १०४।।

कवित्त

लच्छक प्रतच्छ लच्छ लखे हैं ये रावरे पै,
अब काहे मुसुकात[८] मैं हूं लखि पाए हो ।
पीरी पीरी भौंहें, मुख लागत है देखे दुख,
ऐसी रमा को है जिन ऐसेकै रमाए हो ।
अंखियां उघारि देखो मोंसों क्यों दुराइ रहें[९],
चूनरि[१०] सुरंग गंग कहो काकी ल्याए हो ।
चलो न, वलाइ लेउ, आगे तें इकैसे होउ[११],
ताही के सिधारा जाके निसि वसि आए हो ।। १०५ ।।

पाठान्तर छं० १०२ [१] विन सांइ (वटे०)
छं० १०४ [२] सखीनि (वटे०) [३] सुने तिय (वटे०) [४] मेंटयो (वटे०) [५] जाहु (वटे०) [६] छत (वटे०) [७] उहि (वटे०)
छं० १०५ [८] कत मुसुकात (वटे) [९] दुरावत हौ (वटे०) [१०] चुनरी (वटे०) [११] एकौसे होहु (वटे०)

जहां रांचे, तेहां राचें, प्रेम हूं कांचे प्रेम[1],
प्रेम कांचे जौलौं, तौ लों सांचे क्यों परत हो।
कहै कवि गंग तुम झूठे हो हमारे भाय,
सौहै आइ सौंहै खाइ, कैसे निवरत हो[2]।
वा घर तें वाके घर, वा घर तें वाके घर,
भूलि भूलि भौंरे की सी भांवरे भरत हो।
उनए हैं यहां वहां, बरसि, उघरि गए,
क्वार को सो मेह नेह काहे कों करत हो॥ १०६॥

हमही[4] को खोर देत, खरे हो सयाने कान्ह,
खिसी वेचि खाई अब नख जोइयत है।
कहै कवि गंग छांड़ि सूनी सेज कान दैकै[6],
सुनी अनसुनी[7] करो गुनि रोइयत[8] है।
गातन के चिन्ह लखि बातन पत्यात कौन,
पातऊ की ओट परवत गोइयत है।
तुम्हें हांसी आवति है काहू के हंसाए कान्ह,
उनको तो आंसुन सों हाथ धोइयत है॥ १०७॥

ऊए[9] पानी सोखि लेई, विन उए दुख देह,
दुहूं भांति कठिन कमलिनी है भान की[11]।
कहै कवि गंग कान्ह कबहुंक एक बार,
पोथी सी उघारि देहों[12] रावरे पुरान की।
मेरो हियो[13] अंक भरि, मेरे परजंक परि,
काहे को सुरति उर आनत हो आन की।
जैसे कोऊ बीरा खाइ, काहू को सुबास जाइ,
रावरे तिहारी प्रीति जैसी रीति पान की॥ १०८

पाठान्तर छं १०६ [1] प्रेम पै न हू जे कांचे (बटे) [2] निवहत (कांकरौली
[3] भौंर (बटे०) [4] महा (पुरोहित)
छं० १०७ [5] हमहूं (बटे०) [6] सुनहु न कान (याज्ञिक)
[7] दैकेसुनी (याज्ञिक) [8] गुन राइयत (याज्ञिक)
छं० १०८ [9] उए (बटे०) [10] हा हा विधि कठिन
कमल अरु तान की (स
हा विधि कठिन गति
अरु भान की (बटे०)
छं० १०८ [11] उघारौंगी जू (बटे०), उथेलि देहौं (पुरोहित)
[12] हिया (बटे०) [13] सुकति में पकरत (सभा)

काजर की लीक कहूं, पानहू की पीक कहूं,
छाजन[1] छबीले तन, ढीले सब गात हो।
हिये नख दिय लाल लिये न परत तनौ[2],
कंटीले द्वो ओरनि कटाई केसे पात हो[3]।
अंग अंग चिह्नन विराजत है गंग कहै[4],
काहे को गोपाल झूठें रूठे[5] सौ हैं खात हौ।
आए अरसात रति राति हूं के राते नैना,
बात कहे दूखे हरि रूखे भए जात हो॥ १०९॥

और ठौर आए रतिपति अरसात जात[6],
कहूं कहूं कलिन परति अरसाने[7] हो।
सब अंग अटपटे, लटपटे बतियात,[8]
उर माला उपटी लपटि लपटाने हो।
कहै कवि गंग छवि छपै न छबीली तीय[9],
छवि लखि लखित[10] सुरति रति माने हो।
वैसी वैसी वातें कै कै, ऐसहै कीजै एहो लाल,
जीऔ जीओ जो ए[11] तुम जाने हो जी जाने हो॥ ११०॥

सवैया

लागत लोचन लाली से लाल लटे लटकै पिय पाग धसौही।
ढीठ से ह्वै ढिग ठाढ़े न हूजत दीठि कहूं ठहराति न सौंही।
गंग दुरे मन कोठनि कोठनि ऊठनि ही महि ऊठी हसौंही॥
कौन के कान्ह कहै पगुधारे जे सौहे कहो जुकरी हमसौ ही॥ १११॥

पाठान्तर छं० १०९ [1] छाजत (बटे०) [2] दुहूं (बटे०) [3] औरनि कंटीले कंटकाई केसे पात हो (बटे०), कंटीले दुहूं औरनि कटाई कैसे पात हौ (याज्ञिक, सभा) [4] कहि (बटे०) [5] झूठें झूठें (बटे०)
छं० ११० [6] रति पालि सरसात गात (बटे०) [7] तहूं कहूं कल न परति (बटे०) [8] लटपटी बातैं करौ (बटे०), लपटि वातें करौ (सभा) [9] हिय (बटे०) [10] तिय छवि लखिकै (बटे०) [11] जैये जैये जैये (बटे०)।

मौ मुख पूरन चंद समान है, सांझ के सारस हूं कुम्हिलाते[1] ।
गंग कपोल रहे परि पीरिए[2] पान कपूर सुन्यो न सुहाते ।
बैस उठी कुछ और दिखावति[3], देखि सिराइ गयो तन ताते ।
भाग विसेखनि आए भले घर, कान्ह घरीक रहो घर जाते ॥ ११२।

(३) कलहान्तरिता

काहू को कहूं जो कान्ह, होय जो[4] हजार कान,
जाने ज्यों अकेलो जैसे ध्योसो[5] ताइयतु है ।
मीठे पर जौई खैये, सोई सब मीठो लगे,
झूठो है सुहाग जो सो रूठे पाइयतु है ।
कहै कवि गंग ढिग आये ते ढकेलि दीजै,
कीजै कहा ठोरे ठारे[6] दुरि आइयतु है ।
झुकेहू न झुकि लेत, आगे सो बिहंसि देत,
छीर उफनात जैसे नीर नाइयतु है ॥ ११३

मानुस ता सांचे झूठे कीजत है प्यारे लाल,
सोने सो तो चाह[7] कोऊ कोऊ[8] कसीयतु है ।
कियो है पिछौर पाइ प्रेमहू को ओर-छोर,
बूझौ काहू बैरी हू के रोएं हंसियतु है ।
गंग कहै कान्ह जू[9] तिहारी सेज राज करो,
तुम्ह तें बिसासिन के देस[10] बसियतु है ।
प्रात ह्वै पुनीत भाइ[11], सूरज के लागीं पाई,
काहे कों हमारे घाइ लोन घसियतु है ॥ १

पाठान्तर छं० ११२ [1] लों कुँभिलाते (बटे०) [2] पीरेई (बटे०)
वति (बटे०)
छं० ११३ [4] तौ (बटे)), [5] धौंसो (बटे०), [6] ढोरे ढारै
छं० ११४ [7] नाहीं (बटे०) [8] सोऊ (बटे०)
[9] बिहारी (कांकरौली)
[10] बिसासनेक रास (सभा) ।
[11] प्रात लेपु नीर नाइ (सभा)

काको काको लीजै नांव[1], सौ-सौ सखी परी पांव[2],
तनक की रिस को सकेल्यो[3] गौर गाजनो।
कहै कवि गंग भट विन न खटात खेत,
कहा करे निपट नगारो[4] रन वाजनो।
तुम सों तरेरी[5] अति, हम सों चरेरी अति,
कान्ह सों करेरी[6] अति, धरति न[7] माजनो।
पायं परि हाले[8] लाल, कोऊ[10] की न मानै बाल,
काठ की तुरी सौं कोऊ कोलौं[11] तोरै ताजनो॥ ११५॥

जाके काज लाज छांड़ी, लघु गुरु सवन की,[12]
धीरज गंवाइ, हरि हित धन करिहौं।
जान्यौ न कलंक, निरसंक नित हित कीनो,
निपट अनीत सास ननद निदरिहौं।
गंग कहै मोंको[13] तजि गयो नंदनंद आली,
कहि नैक कटु बैन[14] कोपतें न डरिहौं।
रस छांड़ि हाय मन मोहन सों रिस ठानी,
मैं न जानी मन की वलाय वीच परिहौं॥ ११६॥

घाले रहे दृग पाथर दान पिये सुख पाहिक पीनप[15] पीको।
भूपन सांझ[16] अनेक करौं, सु लगे विन पाग[17], लगै सब फीको।

पाठान्तर छं० ११५ [1] नांइ (वटे०), [2] पांइ (वटे०) [3] सकेलै (पुरोहित)
[4] निसानो (वटे०) [5] करेरी आंखै (कांकरौली)
[6] तरेरी अति (वटे०), बरेरी बातैं (कांकरौली)
[7] काम सों करेरो (काँकरौली) [8] मान तोही (वटे०)
[9] हारे (वटे०) [10] काहू (वटे०) [11] कौलौं कोऊ
काठ के तुरी कैं (वटे०)।

छं० ११६ [12] जनहू (वटे०) [13] मोहिं (वटे) [14] कुवचन
(वटे०)

छं० ११७ [15] प्यासे रहे दृग पापी सदा, न पिये सुख पाइकै पानिप
(वटे०) [16] साज (वटे०) [17] पीय (वटे०), पाइ
(याज्ञिक)।

नाहक हौं बदनाम भई, न भयो कवि गंग मनोरथ ही[1] को ।
जो छिनहू छितिपाल मिले[2], तो कलंक लगे मोहिं सौगुनो नीको ॥ ११७ ॥

(४) प्रवत्स्यत्पतिका

जौ लौं रही रथ की रज देखति[3] श्रौर धुजा पटपीत की फाहर ।
तौ लौं रहीं सब ध्यान धरै जौ लौ प्रान गये दृग पैंठ[4] ह्वै बाहर ।
गंग झुकी, झुकिह्र कै चली धरती पै[5] परी पिय कै हिय जाहर ।
कागद की पुतरी सी भई जल भीतर भीजि सबै इक ठाहर ॥ ११८ ॥

कवित्त

बैठी ही सखिन मध्य[6] पिय को गवन[7] सुन्यौ,
सुख के समूह में वियोग श्राग भरकी ।
गंग कहै[8] त्रिविध[9] सुगंध लै पवन बह्यो,
लागत ही ताके तन भई[11] विथा जुर की ।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहं,
लागत ही[13] श्रौरे गति भई[14] मानसर की ।
जलचर जरे श्रौ सेवार जरि छार भयो[15],
जल जरि गयो, पंक[16] सूख्यो, भूमि दरकी[17] ॥ ११९

पाठान्तर छं० ११७ [1] जी (बटे०), [2] छतिया लगते (बटे०) ।
छं० ११८ [3] दीखती (बटे०), देखती (शृं० सु०) [4] (बटे०) [5] में (बटे)
छं० ११९ [6] श्रालिन के बीच बैठी (शृं० सुं०) [7] गमन (ब[…] [8] कवि (बटे०) [9] प्रकट (शृं० सु०) [10] सुगंध लै बह्यो समीर (बटे०), सुगंध लै […] बह्यो (पुरोहित) [11] लागत हीं तन ताकें भई ([…] सीतल ह्वै लाग्यौ तन वाढ़ी (सभा), ताके तन […] वाढ़ी (शृं० सु०), [12] पर (बटे०), [13] […] (बटे०), परसत ही (पुरोहित) छुवत ही (शृं०[…] [14] श्रौर गति भई (बटे०) [15] भई (बटे०) [16] […] जरि वरि गयो (शृं० सु०), बारि सूख कीन[…] (शृं० सु०) [17] सूकि भूमि दर की (बटे०), […] की (शृं० सु) ।

(५) प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

अंजन मंजन तेल तंवोल तजे विलखे विनु हार हियो है।
बेंदी ललाट न बेसरि नाक, सिंगारनि को मनो मेट कियो है।
गंग कहै नख ते सिख लौं पुनि सेंति को मान समेटि दियो है।
तेरे[1] चलै विनु[2] मोहन लाल वै मान दृगी जिनि[3] जोग लियो है ॥ १२० ॥

कान्ह चले कहि आयो कछू न, कंपी कदली दल ज्यों थहरानी।
सोचत हीं सब धाँस गयो, पुनि रात पुकारत राधिका रानी।
आई निवास[4] को ज्यों नित आवत आंखिन में ते रह्यो भरि पानी[5]।
गंग सु तो फिरि फेरि फिरी नहिं, बूड़न के डर नींद डरानी ॥ १२१ ॥

कंचन सी दुति देह विराजत, मोतिन मांग सुहाग भरी सी।
ओप अनूपम छोटे उरोजन[6] द्वै अधराधर[7] पान धरी सी।
ऐसे में गौन कियो पिय गंग, गिरी पलका पर फूल छरी सी।
नैन ते नीर वह्यो, न थंम्यो वह, वूड़ि गई घड़ियाल घरी सी ॥ १२२ ॥

लाल चले भई बाल विहाल, वढ्यो उर साल भयो तन पीरो।
छीजत है जलहीन ज्यों मीन, चलै चित पीर, धरै नहिं धीरो।
देखि कै व्यौंत[8] सु आयो है अंत कु, गंग कहै विधि आंठ कै कीरो।
गात वियोग के तेज तप्यो सु, जरे तो ऊंजि भुजाइन[9] नीरो ॥ १२३ ॥

प्रीतम नैंक सिधारत ही सखि[10], मारत काम करे कर सैं से[11]।
सीर समीर उसीर सु तीर, यों नैन से नीर ढरै कर पैंसे[12]।

पाठान्तर छं० १२० [1] तिहारे (वटे०) [2] वनु (वटे०)
[3] मीन दृगी जनु (बटे०)।
छं० १२१ [4] न बास (बटे०) [5] परि पैरि परानी, (पुरोहित, बटे०)
छं० १२२ [6] उरोजनि (वटे०) [7] दोनों घरै पर (पुरोहित)।
छं० १२३ [8] व्यालु (पुरोहित) [9] जरै पै तऊ जम जाइ न (बटे०)
छं० १२४ [10] सखी (पुरोहित) [11] करषै सो (वटे०)
[12] सीर समीर लगै उर तीर यों नैननि नीर ढरै वरषै सो (वटे०)

गंग कहै गिरधारी बिहारी, विचारी[1] न आली[2] वसंत समै से।
रैनि कहावनि लाल[3] लग्यो, दिन जात भयो है जयद्रथ कैसे[4] ॥ १२४ ॥

कवित्त

तुम जु पयानो प्रात करत हो प्यारे लाल,
वाके उर प्रानन[5] पयानो सुनि दयो है।
सुनि सुनि वचननि सहज मृतक भई,
चलिवै को लालन जवहि नाउं लियो है।
पान की सी वेलि मुरझानी विनु पानी, किधौं,
अमृत को बिखा तुसार ही को हयो है।
चंपे को सो फूल झहरानो तनु गंग कहि,
कमल-कली सो कुंमलाइ मुख गयो है ॥ १२५ ।

(६) आगत पतिका

दोहा

वहुत द्यौंस तें पिय मिले, रहती कंठ लगाइ।
डरपति मन कविगंग कहि, मत सुपनो ह्वै जाइ ॥ १२६ ॥

(७) प्रोषित पतिका

सवैया

जल ढारि सनीचर पंथ[6] वधू, विनवै कर जोरि सुपीपर सों।
तरुदेव गोसाई बड़े तुम हो, यह मांगति दीन ह्वै पी पर सों।
श्रावन के दिन तीस कहे, गति औधि की ठीक तची[7] परसों।
भूलि गये हरि दूरि विदेस, किधों अटके कहूं पी पर सों ॥ १२७

पाठान्तर छं० १२४ [1] विचारि (बटे०) [2] आलि (बटे०)
[3] बनिहै विनुलाल (बटे०) [4] यध्रित (सभा)।
छं० १२५ [5] प्राननि (बटे०)
छं० १२६ इसी के साम्य पर निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य हैं :—
(क) सुपने में साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आंखि न खोलूं डरपता, मत सुपना हो जाय ॥

(ख) मिला सपन मां पिउ भला, धीरेसि लिहिस जगाय।
नैन सहन ख्वालौं एहे भव, मिलिबौ ना टरि जाय ॥
अवधी लोक गीत (अप्रका[शित])
छं० १२७ [6] गंग (बटे०)
[7] तपी (बटे०)।

सीतल नीर समीर भयो अब, धीर धरौं कस कै मम मीतल ।
मीत लगे सर पंच मनोज के, घूमत घायल सी घर भीतल ।
भीत लगे सखि मारग जात, सुहात नहीं बिन प्यौ जगतीतल ।
तीतल बोल कलोल करैं, लखिमो मन गंग कहौ किमि सीतल ।। १२८ ।।

जा दिन कंत बिदेस चले सखि, ता दिन तें बहु लागत जी कौ ।
अंग सिंगार अंगार से लागत, मानिनि के मन लागत फीको ।
मेज समै कमला[१] भइ व्याकुल, सीस रह्यो लटको तरुनी को ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, नैनु[२] के नीर में भीजत टीको ।। १२९ ।।

जा दिन ते जदुनाथ चले[३], तजि गोकुल को[४] मथुरा गिरधारी ।
ता दिन ते ब्रज नायिका सुन्दर रंपति झंपति कंपति प्यारी[५] ।
नैनन तैं उनके सरिता भइ, अंजन आंसु चल्यो वहि वारी[६] ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, तादिन ते जमुना भइ कारी ।। १३० ।।

कवित्त

कामिनि तो केला[७] होइ, कोइल के घाले आली,
मोरनि के सुने बोल आंसू ढारे मोर लौं ।
कहि कवि गंग वाहि कछुन न सुहाइ और,
वह तो वदन चाहे चंद ज्यों चकोर लौं ।
सेज वृखभान सो[८] तपति वृखभान जी को[९],
भानुजा के कूल में चौराइ राखी चोर लौं ।
पौन तो न लाग्यो सखी जोन्ह लाग्यो दुख देन,
भौंन लाग्यो रूरो होन, गूंजे मोंर भोर लों ।। १३१ ।।

पाठान्तर छं १२९ [१] अवला (वटे०) [२] नैन (वटे०)

छं० १३० [३] गोकुल ते जब नाथ चले (पुरोहित) [४] तजि गोपिन को (पुरोहित), ब्रज गोकुल के (साहित्य) [५] ते ब्रजनारि विलंपति, जंपति, कंपति देह अनंग ते भारी (पुरोहित) ।

[६] वाहि के नैनन ते सरिताभई संकर सीस चलै जलवारी (साहित्य०), नैनन के जल ते सलिला भई, संकर जोति रही जल भारी (पुरोहित) ।

छं० १३१ [७] क्वैला (वटे०) [८] वृष-भानु सी (वटे०) [९] वृषभानुजा (वटे०) ।

तुम विन, सूनी राति राति कारी सांपिनी ह्वै खाति,
रीती सेज देखे वाकी छाती उमगति है।
हाहा नेकु जाइ लेहु कह्यो है तिहारो नेहु,
कोई ह्वै देखाइ देहु गोरी ज्यों जगति है[1]।
कहै कवि गंग कान्ह विकल इते ही मान,
नाज की कनाई जैसे करेजे खगति है।
कोइल अलग डार वोलत उहारी लगे,
डहडही जोन्ह जी में डांस[2] सी लगति है॥ १३२॥

तोरि तोरि तामरस घोरि घोरि घनसार,
काठी सेज बोरि वोरि[3] कहां लौं बखानिए।
कहै कवि गंग तऊ घुरी परै[4] चन्द्रमुखी,
चंद की किरनि चूरी चंदन में सानिए।
नीर[5] ते उसीर ते समीर ते सिरानी नाहि,
जोहू[7] जोए जरति जियै ही भले जानिए।
ऐसी भांति कान्ह जू तपति तुम बिनु वह[8],
तोहै न सिराइ[10] जो पै हिमगिरि आनिए॥ १३३॥

भूतल तें तलप तलप हूं ते भूतल[11],
तलपहूं को कीजौ सोन सीतलहि तायो है[12]।

पाठान्तर छं० १३२ [1] दगति (वटे०) [2] दाह (वटे०)।
छं० १३३ [3] वोरि-वोरि छांड़ी सेज (वटे०) [4] चुरि मुरि (सभा)
[5] सीर (सभा) [6] सीर कन (कांकरौली)
[7] जोन्हि (वटे०), जोन्ह (सभा, कांकरौली) [8] ऐ
मान कान्ह सितपति तन वाके है (सभा) [9] तऊ न
सिराइ (वटे०), पै तऊ न मिटति (सभा), तऊ न
बुझाइ (कांकरौली)।
[10] जो उखारिगिरि आनियै (सभा)।
छं० १३४ [11] भूतल में (वटे०) [12] तलप वढ़ति जब भूतलहि
त्यायो है (कांकरौली), तलप दढ़ति जव भूतलहि
त्यायो है (वटे०)

छकौ सी घूमति कछु छकी सम[1] बात कहै[2] ,
चकी सी चितौनो मनु[3] मदन हथ्यायो है ।
कहि कवि गंगु कौन जतनु युवति जीते ,[4]
सौऊ गिरि द्वरिया की मूर मो ज्यायो है ।[5]
तेरेहंसि हेरै हरि ऐसे नेही हाल[6] होतु ,
हाला में हलाइ मानो हालाहल प्यायो है[7] ॥ १३४ ॥

प्रान की प्यारी सुख देन हारी भारी अति,
रूप की उज्यारी ऐसे मींडि मारियति है ।
फूलन की सेज मांझ, फूलनि के धोखे जाति,
हेरे हू न पाइयति हेरि हारियति है ।
कहि[8] कवि गंग ऐसो जिय को कठोर सुनि,
बैरी केंवों एक वार वैर वारियति है ।[9]
देखौ धौं निकट ह्वै तिया के हाल हाय हाय,
नयौ[10] वटपार ऐसी बाट पारियति है ॥ १३५ ॥

अरुनई कहूं नाहि, हरद वरन भई,
चित्र की सी पूतरी मरोरि मारियति है ।
लूवरनि चौवर करेरी नाहि मोरी जाहि,
कौंल की सी कली यों उमेठि डारियति है ।
कहै कवि गंग कान्ह मुगुध हो मेरे जान,
अमृत की वेलि कहूं विख ढारियति है ।
धीरज न गहौ द्यौस चारि में उताले भये,[12]
नयो वटपार ऐसी वाट पारियति है ॥१३६ ॥

पाठन्तर छं० १३४--[1] कछु औ छकी सी (वटे०) [2] करै (वटे०), देति (कांकरौली)
[3] चितौनि ,मनौ (वटे०) ।
[4] किहि जतन युवति जियै (बटे०), किहि जतन युवति जियै (कांकरौली) [5] दूरि जाकी मूरि मुयौ (बटे०)
[6] हियें ऐसें (बटे०) [7] हाहाहल (कांकरौली) ।
छं० १३५-- [8] कहै (बटे०) [9] किधौं (वटे०)
[10] नए (वटे०)
छं० १३६ [11] विष (वटे०) [12] नए (वटे०)

धीर न धरति न धरी देखे[1] बिनु जाति मरी[2]
ऐसी कछु करी दीयौ[3] घाइनि में नौन है।[4]
सुधि– बुधि टरी मानो खाइ ठगवरी[5] जीभ,
खरी अरबरी, न गति क्यों हू मौन है।
लाज परिहरी खरी उघरी न डरी काहू,
कहै कवि गंग समुझहि[2] सखी सौन है।
कौने टेव परी साठ्यो घरी कहै हरी हरी,
पूछै[6] सहचरी अरी हरी तेरो कौन है ॥ १३७ ॥

तामस[7] की आंच लागे तामरस ताते भये,
नैननि की ओर मकरन्द सब वह्यो है।
काजर के लागे मुख ऐसो भयो कलानिधि,
मुख देखे दुख[8] होत सुख हृदौ[9] दह्यो है।
कहै कवि गंग कान्ह मोसों तो कछू न कह्यो,
तुम कहूं खेलत में इंदुमुखी कहयो है
रोइ रोइ[10] राति सब नैन कौकनद कीन्है,
राम राम राम रोये कौन रूप रह्यो है ॥ १३८ ॥

डसन डसत आली वासर बितीत भयो[11]
हियो हहरात अति बात न सुहाति है।
बिरह अगिनि अति अंग[12] अंग आंच बाढ़ी,
आंचर जो ढंप्यो त्यों त्यों[13] छाती जरी जाति है।
कह कह कुहु कुहु कोकिला के कुहकत,
कहा करौं गंग मेरी कछू न वसाति है।
आवन गये है कहि अजहूँ न आये लाल,
पहरक राति रही सोऊ पतराति है ॥ १३९ ॥

पाठान्तर छं० १३७ [1] परत (सभा) मरी जाति (बटे०)
[2] दियो (बटे०)। [3] लौन (सभा)।
छंद १३७ [4] वाई ढग भरी (सभा) [5] समझाई (सभा)
[6] बूझै (सभा)।
छं० १३८ [7] तोयस (कांकरौली) [8] दुख देखें (कांकरौ-
[9]दुख हृदौ (कांकरौली) [10]रोम रोम (कांकरौ-
छं० १३९ [11] डासन (बटे०) [12] तन (बटे०)
[13] ढांपति तो (बटे०)।

बेस की किसोरी गोरी, सोभा वरनी न जाइ,
गोत[1] की निकाई छबि नाहीं काहू जोन में।
वासर गंवायो खेलि, जिय में वियोग-बेलि,
सांझ भये[2] चिंता बढ़ी बैठी पिय मौन[3] में
औंधि के वितीत भये, रंचकौ न कल परै,
व्याकुल सी भई जाति सीरे मंद पौन में।
नीचे ते उठाइ नारि, डीठि परी चन्दतन,
आगि आगि आगि कै कै भाजि गई भौन में ॥१४०॥

अमृत मयूखमाली वू भयौ त भले कै आली,
केऊ एक जीके ख्याली एऊ उड़गन है।
गंग कहि सिगरे सुगंध बाह तनुदाह,
नियरे सुमन दावा[4] सियरे सुमन है।
कैसे राखे जात सात फूल के सिभेला भौंर,
कहा जानौं काहि लैके पैठे काहू वन हैं।
तू तो होके[5] धीरा औ अधीरा होति आधी राति,
तेरे हीरा में तो एरी खीरी कैसे खन हैं ॥१४१॥

सोये ते सुरति मानो कंज में कलोल किये,
अनल की हूक हू सो जागे ते जगत है।
सेज न सुहाति सूनी चंदन चरचि आली,
सरद उजारी सीस सूर सौ दगत है।
कहै कवि गंग स्याम सांवरे सरूप रूप,
मोहिनी सी डारि माई सुपने ठगत है।
निस न गनत[6] केहूँ उड़िया[7] गनत मोहि,
पलक लगे तें पीय कंठहि लगत है ॥१४२॥

पंद्रह वरस वीते, सोरह वरस लागे,
सत्रह बरस बैस उलटि बढ़ति है।

पाठान्तर छं० १४० [1] गात (वटे०) [2] भरो (सभा)
[3] गौन (वटे०)
छं० १४१ [4] आगि (वटे०) [5] ह्वै कै (वटे०)
छं० १४२ [6] घटत (वटे०) [7] उड़या (वटे०)।

जागति, जंभाति,[१] राति सुधि न पिया की जाति,
जैसे बिन चकवाहि चकई रढ़ति है।
कहै कवि गंग कछु कहिवे की बात[२] नाहि,
छाती अति कठिन कुचनि ते कढ़ति है।
सोने से सरीर स्याम-विरह की ज्वाल जरी,
नित नित प्रति दिन नदी सी चढ़ति है ॥१४३॥

सवैया

सोचत जात सबै दिन रात, कछू न सुहात कहा करिये।
व्याकुल नैन, परै नहिं चैन, हिये माँहि मैन, जिये जरिये।
सोचत लालन को जियरा, इत[3] लाज वहां कुल की धरिये।
जारि मरोरि हियै भरिये रस, चाहे यहै विधि का[४] करिये ॥१४४॥

दुख दूनौ भयौ निस बासर तें, अलि रैन दिना दुख क्यों धरिये।
रिसे[५] सूर सुखावत हैं उनके उर[६], चंद उतै उलकै जरिये।
गुन टूटे की नांव भई अबकी, बरियां करिया बिन क्यों तरिये।
जरिये मरिये भरिये रस के विधि, ऐसी लिखी तो कहा करिये ॥१४

जा दिन कंत विदेस चले, गरहूँ न लगी[७], न परी चरना।
ता दिन ते तन ताप रह्यो, मन झूर रही पिय को मिलना।
भूलि गई सुख, कूलि रह्यो दुख, नैन लगे गिरि के झरना।
कवि गंग यों नारि बिचारि करै, पिय के विछुरे ते भलो मरना ॥१४

कै कबहूँ बिछुर्‌यो न हुतो, विछुरे ते[८] मिल्यो बहुर्‌यो न बिसार
एकहि बार दयो दुख ढारि कै, नारि करी कृस चन्द कला सी।

पाठान्तर छं० १४३ [१] जम्हांति (बटे०) [२] बातें (बटे
छं० १४४ [३] इत सोचत लालन को जियरा, उत (बटे०)
छन्द दोष है जिसे संशोधित किया गया है।
[४] जरिये मरिये भरिये रस कै विधि, ऐसी
तो कहा (बटे०) इसमें भी छन्द भंग है।
छं० १४५ [५] गण पूर्ति के लिये जोड़ा गया है। [६] उत
छं० १४६ [७] गलहूँ (बटे०)
छं० १४७ [८] विछुरयौ तौ (बटे०)

गंग कहै तन मैन दहै अति, सूखे[1] पिया विनु लागति गांसी।
गोकुल जारि उजारि जदूपति[2] आप[3] भये हरि वारिधि वासी ॥१४७॥

जेही करोटु परै तिय पी विनु, तेही करोट करौत सी दीजै।
चंदन फूल दुकूल दहै तन, पावक होई उपाउ जु कीजै
गंग कहै अब तो जये है, विछुरेई मिलै विरहै कि पसीजै।
इनि भांतिनि भोरु करै कर भोरु[4] सु, और न छोर कहा दुख दीजै ॥१४८॥

कवित्त

हा हा नेकु आइ लेहु, बूड़ें लेति तेरो नेहु,
केहू ह्वै दिखाई देहु डोरु ज्यों दगतु हैं।
कहै कवि गंग व्याकुल कान्ह इतक मान,
काउ की कनाई कहां करेजे लगतु है।
कोइल अलग डार बोलत डहारी लागै,
डहडही जान्ह जी में डाह सी लगतु है।
तुम विनु सूनी राति कारी सांपु ह्वै है खाति,
राति सेज देखि देखि छातु उमगतु है।१४९॥

(८) स्फुट

सोने की सरोज की सुगंध सोय स्रीफल[5] की,
सिंह की सुवा की सेसहू की छवि टरी है।
मीन की मराल की ममोले मृग मूकुर[6] की,
मानिनी-मनोज जग जीतिवै औतरी है।

पाठान्तर छं० १४७ [1] सुख सेज (वटे०) [2] जदुप्पति (वटे०) [3] आपु (वटे०)।
छं० १४८ [4] कर भोनु (कांकरौली)।
छं० १४९ इसे गंग कवित्त में स्वतंत्र छन्द नहीं माना गया है। वस्तुतः अकबरी दरबार को हिन्दी कवि में छं० ५६ और ६० को एक में न मिला कर अलग अलग रखा गया है। उन दोनों छन्दों में सूक्ष्म अंतर रखने के लिये यह करना आवश्यक था। संपादक।
छं० १५० [5] श्रीफल (वटे०) [6] मुकुर (वटै०) गति शैथिल्य एवं प्रवाह भंग है

पिक की प्रवाल की पियूख[1] की पौनारहू की,
गंग कहै मुकता की छवि सब छरी है।
ग्रलि की ग्रनार की जहां लों छवि कवि कहैं,
राधिका रंगीली छवि एतन की हरी है ॥१५०॥

सवैया

केसरि सों उवटो मुख मंडल, तापर वेसरि की छवि वाढ़ी।
तेसिये मौक्तिक-माल लसै गल[2] लाल लसै ग्रंगिया उर गाढ़ी।
गंग मनै छवि कैसे कहों मनो सोभा के सागर ते मथि काढ़ी।
मांग संवारि संवारि दृगंचल ग्रांग संवारति ग्रांगन ठाढ़ी ॥१५१॥

एक समै तिय साहि की सेज, चली दियना भरि[3] थारन कों।
मुकुताहल कंठ ते टूटि गिरयो[4], सुलगी तिय नेकु निहारन कों।
कटि तें लटकी दुति कै ग्रंगुरी, उपमा कवि गंग विचारन कों।
सुमनो दिनपत्ति को वृन्द दुरूर्यो, निहुर्‌यो ससि लेत है तारन को ॥१५२॥

ग्रंग ग्रंग में सार-सुगंध लगावत[5] वास भलो चहुंधा महको[6]।
करि साज सिंगार ग्रटा ज्यों[7] चढ़ी, मुख देखन लालन को लहको[8]।
गिरि कंकन एक पर्‌यो कर सों, परि सीढ़िन सीढ़ी फिरै वहको[9]।
कवि गंग कहै[10] इक शब्द भयो, ठननं ठननं ठननं ठहको[11] ॥१५३॥

छप्पय

मांग खग्ग लट सांग, चक्र केउ-चंद हार गर।
ग्रति तीछन सर पलक, धनुष भृकुटी मुख उप्पर।

पाठान्तर छं० १५० [1] पियूष (बटे०)।
छं० १५१ [2] मोती की माल लसै गर (बटे०)।
छं० १५२ [3] जुयती करि (बटे०) [4] पर्‌यो (बटे०)
छं० १५३ [5] सब ग्रंग सुवास सुगंध लगाइ कै (बटे०), ग्रंग में म[...]
सुगंध लगावत (पुरोहित) [6] बास चहूँ दिसि को म[...]
क्यों (बटे०) वास वही चहुं देस को महको (पुरोहि[...]
[7] करिकै जु सिंगार ग्रटारी (बटे०) [8] मनि लालन[...]
हियरा लहक्यो (बटे०) [9] कंकन एक गिरयो कर[...]
वह सीढ़िन सीढ़ी फिरै बहको (पुरोहित), कर तें[...]
कंकन छूटि पर्‌यो, सिढ़िया सिढ़िया सिढ़िया ब[...]
(बटे०) [10] भनै (बटे०) [11] ठहक्यो (बटे०)।

नयन चपल हय सत्व, चाल गज, ढाल धरित कुच ।
चलिय लरन रति जुद्ध, गात कसि प्रेम कवच रुच ।
झिल मिलत धुजा फरकत वसन, वजत नाद विछिया पगन ।
गंग कुंज निकरसि जूझन चली, भए स्याम देखत मगन ॥१५४॥

(क) उपालंभ

कवित्त

गोरे गोरे गालन सों कहां इतराती[१] फिरै,
रंग तो पतिंग को सो कालि उड़ि जायगो ।
धुवां[२] को सो धूघरो[३] सु उड़त न लागे वार,
नदी के किनारे रुख कौ लौं ठहरायगो ।
फूंस की सी[४] आग सो[५] सुहाग घरी दोइ एक,
चोरी हूं को माल कहा चौहरे[६] विकायगो ।
कहे कवि गंग या ते भूलि देखु[७] अंग प्यारी,
जोवन के गये मांस कूकरो न खायगो ॥१५५॥

इंदु गयो मंदर फनिंद को रही न निंद,
कोकिला कपोत कीर करै कू कुंजन में ।
हंस गये मानसर, हाथी सब विंध्यवन,
धातु वर हेतै जाइ कनक भवन में ।
मोहै लागी स्याम जू को वारी वृखभानु जी[८] की,
खग, मृग, खंजन की छवि है नयन में ।
गंग कहै तू तो री कठिन अति काठ हू तें,
केहरी की कटि कौन आई तेरे तन में ॥१५६॥

सवैया

कहुं एक[९] सखी जु हंसी तन आंचर, पांयन को सकुचै करि है ।
कवि गंग कहै पिय के भितये मिलये कहं आतुर ह्वै मरि है ।

पाठान्तर छं० १५५ [१] कहा इतराति (वटे०) [२] धूंवां (वटे०)
[३] घूघरो (वटे०) ।
छं० १५५--[४] फूंस हूं की (वटे०) [५] आगि को (वटे०)
[६] चौहटैं (वटे०) [७] देखि (वटे०)
छं० १५६--[८] वृषभानु जू (वटे०) ।
छं० १५७--[९] नेक (वटे०) ।

उत मारग जात चलै अपने हंसि बात कहे विनु को टरिहैं।
कछु आरसी जो हि न यों तु कहा, चितये उड़ि आंखिन में परिहैं ॥१५७॥

मै सिखयो पिय के संग साहस, मै सिखाई रिस रोस की घातैं[1]।
मैं सिखयो मृदु बोल अमोलन, बोलति है तव[2] या मुख जातैं ॥
गंग भई अब नागरि नारि, सु बोलति है हंसिकै सतरातैं[3]।
मोहूँ को चातुरता पहरावति[4] मौसिन सों ननसार की बातैं ॥१५८॥

नागर हौ, छंटे[5] चातुर हौ, तुम कौने मनें किये हौं वकिवे[6] को।
हौं तो हियो ढकि जानति ही, तुमकों जु कहौ हियरा ढकिबे को।
गंग कहै ऐसो काम न कीजिये जो डरिये फिरि औ ढकिवे[7] को।
बातन को अंखियां हि[8] दई विधि, जीभ दई सु दई बकिवे[9] को ॥१५९॥

(ख) दौत्य

एतो कह इतरात इते पर, पाये हो जानि के जाउ बरैया।
मानस सों कहिये सुनिये कछु, राखी[10] न घालि गरे में गरैया।
कवि गंग कहै कोउ दाउ वहै, उसरे पसरे जस[11] गोकुल रैया।
नैंसुक सास को त्रास न हौतो, तो लेती अकास से तोरि तरैया ॥१६०॥

वैठी हुती वृखभानु सुता तहं[12] दूतिका एक अचानक आई।
सोच किये बिन वोल उठी सखि, कान्ह वृंदावन मांहि बुलाई।
कान सुन्यो नहिं, आंखि दिख्यो नहिं, कान्ह कहा विजया कछु खाई।
ऐसी हंसी ललि जानि परै हमें, पानि में आग लगावै लुगाई ॥१६१॥

कवित्त

वाहि न सुहाति[13] बात, बात कहै सों हैं खाति,
बार बार गये[14] कछू फेरु सो करति है।

पाठान्तर छं० १५८ [1] बातें (याज्ञिक) [2] अब (बटे०)
[3] तातै (बटे०) [4] बहरावति (बटे०)
छं १५९ [5] अति (बटे०, पुरोहित) [6] तकिवे (पुरो०)
[7] फिरिआद किवे (बटे०) [8] न (बटे०)
[9] न दई तकिवे (बटे०)।
छं० १६० [10] राखे (बटे०,) [11] जैसे (कांकरौली)
छं० १६१--[12] वृषमानु सुता तहां (बटे०)
छं० १६२--[13] सोहाति (बटे०) [14] जाति (बटे०)

गंग कहै विरह अनंग माती वाल वह[1],
कर के गहे ते वर हाथी जो[2] अरति है।
सखी तो[3] तिहारी समुझाई समुझति नाहिं,
सोने की सुमेरु भई टारी न टरति है।
कहिवै की हुती सुतो कहि आई प्यारे लाल,[4]
औरु कहम दूती समसेर लै लरति है ॥१६२॥

जो पै ऐंडि[5] ग्वेंठि जाइ कालि की बिटौनी ग्वालि,
तो पे देस घालि दूती काहे को कहाइहौं।
कहै कवि गंग तुम देखों तो तमासे मेरे[6]
वावा की वेटी हौं न जु[7] रीती-छूछी आइहौं।
सीता अरूंधती सी और कौन पतिव्रता,[8]
कोऊ क्यों न होहु,[9] कान तेऊ[10] पाय नाइहौं।
काहे को उसासें लेत सेंत[11] के संदेसे देत
सांझ भये[12] सर्ग की तरैयां तोरि लाइहौं ॥ १६३ ॥

(ग) संघटन

सवैया

गै[13] अवला नवलाहि बुलावन, जाहि गोपाल[14] रहे जिप में धरि।
औचक जाय गही भुजवाल, वुलाई है लाल मही अरवी[15] करी।

पाठान्तर छ० १६२ [1] बोलति न (बटे०) [2] लौं (बटे०)
छ० १६२ [3] यौं (बटे०) [4] दूती कौ तौ काम है जु तासों जाइ बात कहै (बटे०)।

छं० १६३-- [5] ऐंठि (बटे०) तुम [6] देखौं धौं तमासे मेरे(बटे०) केधौं राखौ तो भरोसी मेरो(पुरोहित) [7] ताव वाके जाइहौं जु(बटे०) [8]सीता अरु अंरुधती पैथै पतिव्रता तौ पै (बटे०) सत्यभामा, दमयंती सती सीता पतिव्रता (पुरोहित) [9]औरू कोउ होहु (बटे०) [10]वाहि (याज्ञिक) ताहि (पुरोहित) [11]उसास लेत सैन (बटे०) [12]लौं तौ (बटे०)

छं०१६४ [13]गई (बटे०, पुरोहित, याज्ञिक) इस में गण-दोष है जिसे सुधारा गया है। [14]गुपाल (बटे०) [15]मंही अरजी (बटे०)

गंग बिलोकत[1] ही पिउ को मुख, आनन आइ गई पियरी परि।
द्यावत सौंह छुड़ावत बांह, हहा कहि मोहिं कहा करिहै हरि।।१६४

नई अबला रस भेद न जानति, सेज गई[2] जिय माहिं डरी।
रस बात कहीं[3] जब, चौंकि चली, तब धाइ[4] के कंत ने बांह धरी।
उन दोउन के झकझोकन में, कटि नाभि ते अंबर[5] टूटि परी।
कर[6] दीपक कामिनि झांपि लियो, इह[7] कारन सुन्दरि हाथ जरी।।१६५।

नान्ही[8] सी नारि चितै चली मोहन, रूप सुधागरि[9] जौबन बौरी।
थोरे से केस धरे छतिया पर, झांकन जात झरोकन दौरी।
गोरी सी बाल वनी मुख चंद मनो वग[10] पांति घटा घनधौरी।
कहै कवि गंग उठौ नंद नंद, इतै लइ जाउ उतै भरि कौरी।। १६६

बाल चलै अलवेली सी चाल, कछू कवि गंग कहै न कहावै।
लाज करै व्रजराज कुमार की, भागि[11] छुटै जु पै[12] भाज न पावै
दौरि गही मृगनैनी कि वेनी, गुविन्द जू यों लचक्यों तन आवै।
भौंरन के कर पुज लिये, तमक्यो जिमि[13] काम कमान चढ़ावै ।। १६७

(घ) शिक्षा

कवित्त

कुचरी की जनमी उघरीयै जु आवति है
अंचरा न देति घर घर घैरि[13] बढ़ी है।
कहै कवि गंग बड़े घर की कुलीन गोपी
गोकुल के लोगनि में कह लीक कढ़ी है।
खिसी करि खिसी तू, निसीथ कोऊ साथ जै हैं
ओबरी के मेलत पगार जाइ चढ़ी है।
बारक हूँ मानति न वारौं तेरे पर रति[15]
कौन तेरो कामदेव कौन विधि गढ़ी है।। १६८ ।।

पाठान्तर [1]विसूरत (वटे०)
छं० १६५–[2]किये (वटे०) [3]करी (वटे०) [4]जाय (सा० प्र
[5] गठनीबि पितंवर (वटे०) [6] तव (वटे०)
[7] हाथ धरयौ इन (वटे०)।
छंद १६६–[8]छोटी (वटे०) [9]की आगरि (वटे०) [10]बक (
छं० १६७– [11]भाग (पुरोहिति) [12]जो (पुरोहित)
[13]जस (वटे०) जैसे (पुरोहित)
छं० १६८–[14] घेर (वटे०) [15] तेरो सरसुती (कांकरौ

(क) चुबन

सवैया

दंपति के अनुरागवढ्यो, रस रीति सों रैन सबै वितई।
इत कान्ह तजै नहि राधिका को उत राधिका ह्वै रही कान्ह मई॥
अपनो अपनो मुख चूमत यों, उपमा उपजी कवि गंग नई।
किधों वारिजको मधु चंद पिय, किधौं वारिज चंद सुधा, पिवई ।१६९॥

कवित्त

आठहू पहर ओठ[1] लगि रह्यो रह्यो ओठन[2] सों,
वात के कहे तें[3] नेकु धीर नसहत है।
मांगन को मोती झूमि रह्यो दसनन पर,
अधर मधुर रस व्यौंत ज्यों गहत है।
कहै कवि गंग तेरी छवि तहां फवि रही,
यहां तें सरकि या को हा धौं चहत है।
जैंसेई लिलार टीका केसर की खोर किये,
वेसर को मोती मतवारी ही रहत है ॥१७०॥

(ख) परिरंभन

सवैया

एक समयै वृखभानु सुता हरि ठाड़े हुते वन कुज कुटीतर।
गंग कहै घन की घहरान सु वात संघात न जात बनैं घर।
लीने[4] दुकूल दवाइ तिही[5] ललना ललना कहि आज भले थर[6]।
मानो लथ्थल[7] के दल को कन लै उड्यो भौंर बधू विधु के पर ॥१७१॥

(ग) केलि

एक समै दुरि दंपति कुंजनि[8] पौढ़े हुतके पलिका सुख जी[9] कै।
स्यामा[10] सुभाय ही आपनो हाथ, उठाई धर्यो उर ऊपर पी कै।

पाठान्तर छं०१६९ गणपूर्ति के लिए 'उर' जोडा गया है (सं०)
छं०१७० [1]होठ (वटे०) [2]होठन (वटे०)
[3]सों (वटे०)
छं० १७१ [4]लीले (वटे०) [5]तहीं (वटे०) [6]धर (पुरोहित)
[7]निलत्तल (वटे०)
छं० १७२-- [8]कुंज में (वटे०, पुरोहित) [9] ही (पुरोहित)
[10] श्याम (पुरोहित)

आछी खरी पतरी अंगुरी कवि गंग कहै वे वनी फविनी कैं[1] ।
काम सराफ कसौटी दे[2]हाथ, सु ऐंचि कसी मनो सोने कि लो[3]कैं ।।१७२।।

(ख) सुरति

मोहि लिवाइ गयो घर भीतर, हौं नहिं जानत ऐसो कसाई ।
बाल[4] प्रचंड लई भरि अंक कहै कवि गंग नवौ निधि पाई ।
व्है रस भोर गुपाल लसौ अति कैसे[5] कहौं वाकी आतुरताई ।
आठहु जाम कि एकहि वेर मनों घरियाल घरी सी वजाई ।।१७३।।

सुप्रसून में लीन[6] छुटी अलकें, गति भांतिन[7] मेघ पलट्टि थमो[8] ।
पुनि हौं अबला घनस्याम महावल, कैसे करौं तन तेज गयो ।
कवि गंग कहै सव फूले हैं सारंग, सूर सलज्ज[9] प्रकास लयो ।
दस[10]अंगुलि लै मुख मांहि चवै हहा छांड़ि दे कान्ह विहान भयो ।।१७४।।

कवित्त

आई है छवीली जव पीतम[11] पलंग पर,
झुनुकि की झमक करेजो करकतु है ।
बूझत[12] बनाइ वात, कुच पै धरत हाथ,
खैंचन में[13] मन्द चोली वन्द तरकतु है ।
मारत छवान वेर वेर कत कंत आली,
सारी के धरत सारी सारी सरकतु है ।
कहै कवि गंग सुनो प्यारी मान मति मानो,
चोटी के धरत वोटी वोटी भरकतु[14] है ।।१७५।।

पाठान्तर छं० १७२ [1] कहै कैं रही फबि (पुरोहित), रही उर न्यारी ह्वै (बटे०) [2] लैं (बटे०, पुरोहित) [3] कंचन (बटे०)

छं० १७३ [3] गुवाल (बटे०) गणदोष के कारण संशोधित कर दिया गया है

छं० १७३ : [5] रस के चसके धसके मसके, सो कहां लौं (बटे०) रस के चख के धरके मसकी, सो कहां लौं (पुरोहित) (दोनों पाठों में गण दोष है। यह त्रुटि गंग की न होकर किसी अज्ञानी लिपिकार की है। पूरा भाव समेटने में असमर्थ होकर भी इसने यत्किंचित संशोधन किया है, संपादक)।

छं० १७४ : [6] पुहुप में लीन (पुरोहित), पुहुप मलीन (बटे०) गणदोष है जिसे सुधार दिया गया है (संपादक) [7] नागिनि (बटे०) [8] ठयो (बटे०) [9] सर... (बटे०), सरज्ज (पुरोहित) [10] हंसि (बटे०)।

छं० १७५ : [11] प्रीतम (बटे०) [12]पूछत (बटे०) [13]तें (बटे०) [14] फरकत (बटे०)।

सवैया :

स्वेद सनेहु लगे छतियां पै तऊ अभिलाष के पार न पावै।
भीजे में ही रति रंग करें रु, कपोलनि पोंछि अंगोंछि मिलावै।
नेकहि में उठि बैठि झरोखन[1] झांकत सांकत नैन चलावै।
ग्रीषम द्यौसहि गंग गुपाल, मिलै छिनु छोरि कै पौन डुलावै ॥१७६॥

(ङ) विपरीत रति

अरे हो[2] कुल मंडनि अंचल देहु, नखच्छत कंत दये सवही।
कवि गंग कहै तुम याही बनाव किये अधरा तक ते उमही।
उछटे खुटिलान छुटी नक वेसरि[3] छूटी लटै मुख फैलि रही।
छवि ऐसिये जाहुगी कौन के भौन, कछू अपनी सुधि है कि नहीं ॥१७७॥

विपरीति रची रति[4] राधिका स्याम सु वेद कहै यह भेदन भू पर।
वेंदि जराय की टूटी ललाट ते, छूटि[5] परी जदुनन्दन जू[6] पर।
गंग वरंगना सोहत अंग सु[7] वैनी को छोर दृगन्तर हू पर[8]
पूंछि पटक्कि मर्‍यो अहि एक मनो मनि काज मयंकहि ऊपर ॥१७८॥

(च) सुरतान्त

सोलै सिंगार सजी अति सुंदरि, रेन रमी सु पिया संग रानी।
ऊठि प्रभात मुखांवुज धोवत, टीकी खिसी हथेरी लपटानी।
ता मधि चित्रित हो गजराज अजीव कछू छवि काहू पिछानी[9]।
गंग कहै सुनि साह अकब्बर डूवत हाथी हथेरी के पानी ॥१७९॥

प्रात समै रति मानि भट्ट, धुनि गंग सिखी की हिये खटकी है।
चाय भरी अलसाय नितंबिनि वातन मोहन सों अटकी है।

पाठान्तर छं० १७६ : [1] झरोकन (बटे०)।
छं० १७७ : [2] अहो (बटे०, पुरोहित) गण दोष है जिमें सुधार किया गया है। [3] वेसर (बटे०, पुरोहित)।
छं० १७८ : [4] रमे अति (बटे०) [5] छूटी लिलार सों, टूटि (बटे०) [6] नंद नंदन जू (बटे०) [7] वरंगिनि सोभित अंग में (बटे०) [8] दृगंचल ऊपर (बटे०), दृगन्तर हू पर (पुरोहित)।
छं० १७९ : [9] ता मधि चित्र हतो गजराज अजीव कछू छवि का पिछानी (सां० प्र०)।

उन्नत कै कर जोरति बांह, बढ़ी छबि मों मुख के तटकी है।
कंज सनाल के कुंडल में, मनों सीखत चंद कला नटकी है ॥१८०॥

एक समै रस ही रस सुंदरि स्याम सिरोमनि सों रति मानी।
प्रात समै अरसाति सी आवति, कैसे परे कवि गंग बखानी।
मांगहुते ढुरकी मुकतालर, ता छवि की उपमा कवि आनी।
डारिन जानत व्यालि को बालक, कांचुरि सी फन सों लपटानी ॥१८१॥

एक समै सुन री सजनी रति के पति प्रात उठे जु सिधारे।
आलसवन्त उठी न परी, जु परैं ही परें कर केस सुधारे।
कानन तैं तरुना जु भये[1] कवि गंग गुनी उपमा पचि हारे।
मार्‌यो है राहुधका रथ चंद के टूटि परे जु पह्या[2] दुइन्यारे ॥१८२॥

का[3] भयो जो तुम कंचकी अंचर पीत[4] पराग परवारि निचोरी।
गंग कहै कच फेरि संवारि[5], कहा बन्यो[6] जो मुकतावलि जोरी[7]।
नैननि की अरुनाई नखच्छत, तासों कहा कहिवो कहि गोरी[8]।
ये दोउ अंग[9] दुराये दुरै नहिं, नाह को नेह सुगंध कि चोरी ॥१८३॥

कवित्त :

छूटे बार टूटे हार, विषनव[10] राहवर,
फेलि फूलि लूटे सुख बूझे ते भुकति है।
कहै कवि गंग भयो[11] हियरा हरखवन्त,[12]
हाथ दै दै हाथनि सों हाँसियो चुकति है।
आंखिन की अरुनाई आनन जु आई[13] आई,
जामिनि जगाई कान्ह कैसे के लुकति है।

पाठान्तर छं० १८२ : [1] तरुनी जुदए (वटे०) [2] पहिया दुइ (वटे०), पह्या दोय (पूरोहित)।
छं० १८३ : [3] कहा (कांकरौली) [4] पाग (कांकरौली) [5] सुधा[रि] (कांकरौली) [6] भयो (वटे०) [7] मुकुतालर (कांक- रौली) [8] तू कहि आली कहा कहि कोरी (कांकरौली) [9] जाखहु भांति (कांकरौली)।
छं० १८४ : [10] विषमेषु (वटे०) [11] अति (वटे०) [12] हरि- वंत (वटे०) [13] जंभाई (वटे०)।

छाती छाजै नखलीक प्रकट कपोल पीक,
पाति साही पाइमाली आली क्यों झुकति है ॥१८४॥

(क) वेणी :

कंचन[1] की लकुट की लसत कसौटी लीक,
मोरनि[2] की माल किधौ अग वास[3] लेनी है।
कहै कवि गंग किधौं वारी कारी कादंविनी,
दामिनी सी कामिनी ह्वै मिलि छवि देनी है।

सुन्दर सिंगार सूर—सुता की सी धार किधौं
जोवन नदी की धार के सिवार सेनी है।
कराचोली काम की कि सौभा करे स्याम की कि,
जियही की बैरनि विराजमान वेनी है ॥१८५॥

सवैया

मृगनैनी की पीठ पै बेनी लसे, सुख साज सनेह समोइ रही।
सुचि चीकनी चारु चुभी चितमें भरि मौन भरी खुसबोइ[4] रही।
कवि गंग जू यों[5] उपमा जो कियो, लखि सूरति ता स्तुति गोइ रही।
मनो कंचन के कदली दल पै, अति सांवरी सांपिनि सोइ रही ॥१८६॥

(ख) बेंदी :

अंग छबीले रह्यो खुलि छीवरू, छीन सी लंक सवैं छवि छीने।
गंग कहै लहंगा लखि लाली को मोहन लाल भये गति हीने।

पाठान्तर छं० १८५ : [1] कचन (वटे०) [2] मौरन (वटे०) [3] अग्रबास (वटे०)।
छं० : १८६ : [4] भरे खुसवोइ (वटे०), भरी सुख बोइ हित) [5] या (वटे०)।

समभाव का निम्नलिखित सवैया द्रष्टव्य है :
मृग नैनी की पीठ पै दैनी बिराजे सुगंध समूह समोय रही
अति चीकन चारु चुभी चित में रविजा समता सम जोय रही।
कविदत्त कहा कहिये उपमा जनु दीप सिखा समजोय रही
मनो कंचन के कदली दल ऊपर सांवरी सांपिनि सोय रही ॥
दिग्विजय-भूषण : : छं० १७४, पृ० ५६७

छूटी चुरी छुटी मोतिन पोति ज्यों[1] छूटी तनी .अंगियाऊ रंगीने ।
रंचक बंदन की बिंदुली सिगरैई सिंगार बिदा करि दीने ॥१८७॥

(ग) नेत्र :

तारेन[2] की तरुलाई[3] सु तो तरुनी खग खंजन खंज किये हैं ।
गंग कुरंग लजात जुदे, जलजातन के गुन छीन लिये हैं ।
तीर सी तेरी तिरीछी चितौन ने छिद्र किये छलना के हिये हैं ।
काहू के जी पर रुसे से नैन, ए आली कहा मुकराय दिये हैं ॥१८८॥

भौंहें कमान के बान कटाछन, आछी वनाइ करी विधि फोंकै ।
तापर कज्जल की द्युति- रेख सो गंग कहै निसि बासर भोंकै ।
साजत अंग अनंग महासठ मारत है बिरही जन चौंकै ।
नाहर के निहुरे निहरी, निहुरी नहि नारि के नैंन की नोकै ॥ १८६ ॥

कवित्त

दीरघ ढरारे तहां[4] डोरे रतनारे लगें,
कारे तहां तारे अति भारे जे सुरंग हैं ।
कहै गुनि गंग जनु दूध हीसों धोये पुनि,
कौए विकसित सित-असित दुरंग[5] हैं ।
पारद सरस चार थिर से[6] थिरकि जात,
तिर में[7] चलत मानों कूदत कुरंग हैं ।
खैंचे ना रहत अनुराग हूं के बागबर,
मानिनी के नैंन कैधों मैन के तुरंग हैं ॥१९०॥

पाठान्तर छं० १८७ : [1] त्यों (बटे०) ।
छं० १८८ : [2] तारन (बटे०) [3] तरलाई (बटे०) ।
छं० १९० - [4] महा (बटे०), तहां (शृं०सं०) [5] सुरंग (दि०भू०)
[6] सरिस चीर थिर में (बटे०) [7] तिरछे (पुरोहित,
(बटे०) :

अधर मधूक[1] से वदन अधिकानी छबि,
विधि मानो विधु कीन्हों[2] रूप को उदधि कै।
कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्यो[3],
बदन छपाइ सखि मनि लीन्हों[4] मथि कै।
मारि गई गंग दृग-सर वींधि गिरिधर[5],
आधी चितवनि[6] में अधीन कीन्हो[7] अधिकै।
बान वींधि[8] बधिक बधे को खोज लेति फिरि[9],
वधिक बधू ना खोज लीन्हों फेरि बधिकै[10] ॥१६१॥

प्यारे लाल जिनमें है मोल को न[11] थाह पै,
अथाह कुल कानि के समुद्र परि हारी हैं।
भौंहनि भंवर मध्य तरि निकसत यातें,
महाबली[12] घूंघट ते टरति न टारी हैं।
पूतरी मलाह जुग जाने कवि गंग जिय,
आने नहीं यहै नेम देखे[13] मतवारी हैं।
खेइबो कटाछ बादवानन को होत कैसे,
लाज भरी अंखियां जहाज हू ते भारी हैं ॥१६२॥

पाठान्तर छं० १६१ - [1] बंधूक (बटे०), मधुप (पुरोहित टि०) [2] मानों मैन मथि काढ़ी (पुरोहित) [3] मुरकि गिरे (पुरोहित) [4] आनन छपाइ सखियानि लीन्हों (बटे०), आनन दुराइ सखियान लीनी (पुरोहित) [5] मारि गई गंग दृग सर बिधे गिरिधर (बटे०), गंग गई मार द्रग सर गिरिधर वेधे (पुरोहित) [6] आधिक चितौनि (बटे०), आधिक चितौन (पुरोहित) [7] अधीन किये (बटे०), अधीन कीने (पुरोहित) [8] वेधि (बटे०), बधि (पुरोहित) [9] पुनि खोज लेत (पुरोहित) खोज लेत फिर (बटे०)। [10] फेर खोज लेत (पुरोहित)।

छं० १६२ - [11] की (बटे०), को (पुरोहित) [12] महाअली (बटे०), महाबली (पुरोहित) [13] हिय पै निमेख (बटे०), यहै नेम देखे (पुरोहित)।

झांकी झूमि झटित झरोखा तैं झमकिवारी।
झिलमिल जोतिन सों झपि झपि झोंकदार।
कवि गंग दरसत कलित कटाच्छ मानों,
सान धरे साइक बुझाइ विष फोंकदार।
गज़ब गुजारै म्यान-कोरन सों काढ़ि[1] मंजु,
होते जो न पाहरू पलक पल रोंकदार।
मनमथ नेजे लौं करेजे कसकत अजों,
नागरी के नवल उनीदे नैन नोकदार ॥१९३॥

तन की बनक नहीं तनक कनक पूजे,
जोवत खनक[2] जुवजन विदलत[3] हैं।
आलस की चलदल[4] मंजुल मराल लखि,
लोयनि विसाल उर साल से सलत[5] हैं।
कहै कवि गंग जुग कोये बिगसित सित,
तैंसेई असित तारे चंचल चलत[6] हैं।
ऐसी छबि छाजत छबीली अंखियान मनों[7],
छीरधि के छीर[8] में छपद उछलत हैं ॥१९४॥

जोति जगमगति सो[9] जोवन के जोर लखि,
ऐसी जुवती को जुवजन जमकत[10] हैं।
भौहनि की तान पंचबान की कमान किधौं[11],

पाठान्तर छं० १९३ - [1] कढ़ि (बटे०)।
छं० १९४ - [2] छनक (बटे०), खनक (पुरोहित) [3] बदलत (पुरोहित)
[4] चालदल (बटे०) [5] लसत (पुरोहित) [6] लसत (पुरोहित)
[7] मानों (बटे०) [8] धार (पुरोहित)।
छं० १९५ - [9] सु (बटे०) [10] झमकत (बटे०) [11] केधौं (पुरोहित)

हेरैं हिये घाव[1] मे घनेरे धमकत[2] हैं।
कहैं कवि गंग कुल एनिन को चैन हरैं,
नील पट - ओट मांझ नैन[3] दमकत हैं।
ऊरध[4] को उमड़ि बिमल जल जमुना के[5],
उछरि उछरि मानों मीन चमकत हैं ॥१९५॥

मीन से, भमोला से, भयंक मृग छौना ऐसे[6],
नैन पुतरीन अलि सावक बिसेखे हैं।
स्वेत स्यामताई बीच डोरे ना अरून ऐसे,
मानहुं बिचित्र चित्र मदन के रेखे हैं।
धुकत धुकाए ते झुकाए ते झुकत धुकि[7],
कहै कवि गंग सूत सारिख विसेखे[8] हैं।
चितवत चित में लगत ऐसे[9] काम बान,
ऐसे आछे नैना[10] और काहू के न देखे हैं ॥१९६॥

उज्जल प्रवाह तट गंग को विलोकियतु,
मानो लाल डोरी सरसुति सुभसेनी[11] है।
पूतरी पलक बीच काजर झलक जामें,
जमुना जगत[12] जम त्रास हरि लेनी है।
नेकु ही निहारे तें कोटिक[13] तन पाप[14] कटै,

पाठान्तर छं० १९५ [1] घन (वटे०) [2] घमकत (वटे०) [3] नैना ऐसे (वटे०)
[4] उदधि (पुरोहित), ऊरध (पुरोहित टि०, याज्ञिक)
[5] को (वटे)।

छं० १९६ - [6] से ऐसे (पुरोहित) - इसमें वर्ण-दोष हैं जिसे संशोधित कर दिया गया है (सम्पादक) [7] धकत धुकाये ते झुकाये से धकै धुकै (पुरोहित) [8] कहत कवि गंग सुत सारिख विसेखे (पुरोहित), कहै कवि गंग सूत सारिख सुलेखे (वटे०)
[9] जैसे (वटे०) १३ [10] नैन (वटे०)

छं० १९७ - [11] सुख देनी (पुरोहित), सुख सेनी (वटे०) [12] जगति (वटे०)। [13] कोटि कोटि (वटे०) [14] ताप (वटे०)

मंजन किये ते सुर गन सुख देनी[1] है।
एरी मेरी प्यारी मैं तो तीरथ न जानों कछू,
तेरे ए[2] दृगन बीच प्रगट[3] त्रिवेनी है ॥१९७॥

(घ) कटाक्ष

गंग की तरंग जोर जंग सो[4] धवलताई,
भानुतनया सी स्यामताई धारियतु है।
थोरी अरुनाई की लुनाई बनी सारदा सी,
मिलि कै त्रिवेनी अघसेनी तारियतु है।
नैन के कटाच्छन तें मारि मारि माधव को,
मैन की तरंग अंग अंग पारियतु है।
होति है अधीर वीर पिया को बढ़ावै पीर,
तीरथ के तीर काहू तीर मारियतु है ॥१९८॥

गंग सम कवि गंग गुंधे मुक्ता हैं मंग,
भानुजा तरंग रंग पाटी पारियतु है।
सारद सिंदूर सिर सौरभ सराहें सब,
सेन साजि संकुल प्रभा सी सारियतु है।
पलक - प्रतिंचा कसै भृकुटी कमान तान,
कैबर कटाच्छ करि डीठि[5] डारियतु है।
संगम समीप ब्रजराज को तिरीछै तकि,
तीरथ के तीर काहू तीरे मारियतु है ॥१९९॥

(ङ) काजल

पहिलै चितै तू देति चित्तहिं चुराये लेति,
पाछे के घूंघट देति करम बिपाकु सो[6]।

पाठान्तर छं० १९७ - [1] रूपदेनी (बटे०)।
[2] रूप तेरेई (बटे०) [3] प्रगटी (बटे०)।
छं० १९८ - [4] से (पुरोहित)।
छं० १९९ - [5] दीठि (टे०, पुरोहित, याज्ञिक)।
छं० २०० - [6] लाज ही के छूट देति कर मुखि पाकु सो (सभा)

नींद जाइ, भूख जाइ, जियरे[1] में जाइ जाइ,
उरहू में आइ आइ लागत उचाकु सो[2]।
कहै कवि गंग अब उधरि गयी है वात,
लागी जाइ घात तो उधरि जाइ छाकुसो।
साझी माझी रातिनि अथोत दोत[3] दुपहर,
दौरि जात जी में तेरो कजरा कजाकु सो ॥२००॥

(च) कपोल-तिल

बांकी भौंहे सोहै, वांकी चितवनि मन मोहै,
वांकी[4] मोती वेसर अधर पर करको[5]।
कहै कवि गंग ते रे उचकि उचकि कुच,
गति न रहत निरखत भराभर को।
आनन की उपमा तै सकल विकल भई,
भली सोभा लै रह्यो तिल[6] कपोल परको।
पंकज के वीच आली अलि गो समाह तहां,
मानों री बिछुरि छौना बैठ्यो मधुकर को ॥२०१॥

(छ) ओठ

जावक सुरंग में न, ईंगुर के रग में न,
इन्द्रवधू अंग में न रंग आनिवाल[7] में।
बिंबफल बिद्रुम बिलोके बहुभांतिन के,
बिले जान[8] ऐसी छवि बंधुज[9] विसाल में।
कहै कवि गंग लखललना अधर लाली,

पाठान्तर छं० २०० [1] नीदौ जाइ, भूखो जाइ जियहू (बटे०) [2] अत्र तो उलटि पुनि लागत उचार सो (सभा) [3] बंवरिया अथौ न देत (सभा)।

छं० २०१ [4] बांकी (बटे०) [5] फरको (बटे०) [6] रह्यो तिल लै (बटे०)।

छं० २०२ [7] आनिवास (याज्ञिक), औनिबाल (बटे०) [8] मिले तौ न (बटे०), जाय जात (पुरोहित) [9] बंधुक (बटे०,) बधुर पुरोहित, बंधूज (याज्ञिक)

लाल वारि डारौं लाल[1] भांति रंग लाल में ।
किंसुक रसाल में न, कुसुम किलाल[2] में न,
गुंजन गुलाल में न गुललाला[3] लाल- में ॥२०२॥

(ज) मिस्सी

सवैया

को वरनै उपमा कवि गंग सु तोही में[4] हैं गुन ऊरवसी के ।
जा दिन ते दरसे मुसुकानि [5] सो कान्ह भये बस तेरी हंसी के ।
चंद से आनन में तिल राजत[6], ऐसे[7] विराजत दांत मसी[8] के ।
फूलन की फुलवारिन[9] में मनों, खेलत हैं लरिका हवसी के ॥२०३॥

(झ) बोली

कवित्त

ऊख रस कछू न मयूष-रस नीरस है,
सुन्यो है[10] पियूष रस कौने फोरि[11][12]चाख्यो है ।
कहै कवि गंग तोरे मन नंदलाल वसै[10],
तै तो मनमोहनि मधुर सुर[13] भाख्यो है ।
कनक सो तन तामें तनक सों लांक बन्यो,
सनक सो सुनि सुनि रूप अभिलाख्यो है ।

पाठान्तर छं० २०३ [1] लाख (वटे०, पुरोहित, याज्ञिक)
[2] की माल (वटे० पुरोहित,) की लाल (याज्ञि
[3] गुले लाला (पुरोहित), गुल्लाल (याज्ञिक) ।
छं० २०३ [4] सु तो में ही (पुरोहित) [5] तू मुसका[नि] लखी (पुरोहित), तें दरसी मुसकानि (वटे०) तै दरसे मुसकानि (याज्ञिक), तें दरसे मुसुक्यानि (शृ० सं०, सु० ति०) ।
[6] छबि छाजत (शृं० सं०, सं० ति०) [7] तैं (पुरोहित) [8] मिसी (पुरोहित, वटे०, याज्ञिक)
[9] फुलवादन (पुरोहित) ।
छं० २०४ [10]कहौ धौं (वटे०), जाने धौं (शृं० सु०) [11]फोरि (वटे०) [12] तोहि मोहि रहे नंदलाल (वटे०)
[13] रस (वटे०)

मुख को निकाई तें तौ तामरस जेर कीनों[1],
तारा पति तरनि[2] तरैया करि राख्यो है ॥२०४॥

(ज) मुख

सवैया

मान सरोवर भानु उदै को[3] सरद्दसमै को सरोज लजायो ।
केसर वेसर चंदन बंदन, बेंदि विरी[4] बनितानि बनायो ।
गंग कहै छवि अंकुर चारु[5] छपाकर चाकर सो करिपायो[6] ।
चाले में चूमनि में चुपर्यो चिकनो[7] मुख चांपिन चूमन पायो ॥२०५॥

कवित्त

चांद को कलंक दीनों, धनुष को टेढ़ो कीनो,
बानहू को चूक, मृग पसु ही दिसीजिए ।
कीर हाट हु विकात, वींविहु न कोउ[8] खात,
हीरा तो हलाहल है ईख रस लीजिए ।
पंकज को कांटे भारी, कोकिला तो कीनी कारी,
सर्पन को विष दुख दामिनी सुनीजिए ।
कहै कवि गंग और[9] अंगन वसन छाये,
प्यारी जी[10] के मुखहू को कौन सोभा दीजिए ॥२०६॥

कीनो है सरद रद, कीनो है दरद रद,
कीनो सेत मनि लघु[11] छीन छवि पेखिए ।

पाठान्तर छं २०४ [1] रस (वटे०) [2] तरे कियो (वटे०) ।
छं० २०५— [3] को सुर रूप (वटे०) [4] चंदन बंदन केसरि वेसरि वीर वनी (वटे०) [5] मुख की छवि देखि (वटे०) [6] गायो (वटे०) [7] चाले की चूनरी को चिकनो चुपर्यो (वटे०) ।
छं० २०६— [8] कोऊ (वटे०) [9] और (वटे०) [10] जू (वटे०) ।
छं० २०७ [11] अति भनी लांकु (याज्ञिक), सित मनि लघु (वटे०) --सित रखने से छन्द का प्रवाह शिथिल पड़ गया है । इसमें संशोधन किया गया है ।

कहै कवि गंग तोरे[१] मुख के प्रकास आगे,
मसि तें मलिन ससि पूनम को लेखिए।
कामहू की कामिनी कि पावस की दामिनी कि,
मावस की जामिनी कि वेनी यों विसेखिए।
फीकी लागी पिक बानी, तेरी बानी आगे रानी,
हाटक अपार[२] बानी बानी चोर देखिए ॥२०७॥

एक समै पून[३] जोत ससि को[४] उदोत भयो,
सुनिके गहन लोग देखै सबै धाइ कै।
जोति की सी ज्वाल-वाल ईंदु सो मुखारविन्दु,
कहै कवि गंग मैं महल ठाढ़ी आइ कै।
चंद और चंदमुखी याहि गहि याही गहैं,
ऐसें ही विचार राति सारी को[५] विताइ कै।
चंद भयो अस्त, चंदमुखी निज मौन आई,
राहु गयो गेह निज हिये पछिताइ कै ॥२०८॥

(ट) अवगुंठन

वादर सी निकसि कै, दामिनि सी दमकि कै,
कौंधा सी लपकि कै चितौनि में चितै गई।
खंजन[६] कटारी नैन, अंग भर्यो काम भारी,
भौंह के मरोर में करोर कहूँ कै गई।
कानन करन फूल, देखे जाय[७] सुधि भूल,

पाठान्तर छं० २०७ [१] तेरे (वटे०)--हमने 'तोरे' पाठ मधुरता--वृद्धि के लिये रखा है।
[२] वारह (वटे०)--वारह के साथ अंतिम चरणांश पढ़ने पर गति भंग दोष से भयंकर रूप से आक्रांत हो जाता है। इसीलिए 'अपार' (याज्ञिक) रखना समुचित जंचा।

छं० २०८ [३] पूरन (याज्ञिक)--अर्थ चमत्कार समाप्त हो जाता है। पून पाठ में पूरा और पूनों दोनों अभिव्यक्ति हैं। [४] 'को' बढ़ाया गया है। [५] 'को' बढ़ाया गया है।

छं० २०९ [६] कचन (सभा) [७] जाइ (वटे०)

चरन के धरत पियारी जीव लै गई।
गंग मेरी मति हारी, ऐसी न निहारी नारी,
डारि मुख सारी को किवारी पट दै गई[1] ॥२०९॥

मृग के से दृग मृगमद को तिलक भाल,
अधर ललौहैं मुख लाखन लहत हैं।
सोने के करन फूल स्रवनन सोहियत,
चीकने चिहर कुच ऊठन[2] चहत है।
कहै कवि गंग तू तौ प्यारी प्राननाथ जू की,
तेरी या निकाई कोऊ कविता कहत है।
कली और कूल[3] है दुकूल मूल मध्य जाके,
कमल से चार[4] फूल फूलेई रहत है ॥२१०॥

(ठ) उरोज

(सवैया)

एक समै जल आनन को घर तें निकसी अबला बृजरानी।
जाति सु कोल में डोल लिये जल खीचत में अंगिया मसकानी।
देखत वे छतियां उघरी कवि गंग कहै मनसा ललचानी।
हाथ बिना पछिताइ रह्यो यहि कारन डोल में हालत पानी[5] ॥१११॥

पाठान्तर छं० २०९ - [1] कहा लौं बखाने कवि गंग आली री मुहा डारि मुख नारि कुमारी पटदें गइ (सभा) प्रति भंग है।

छं० २१० - [2] उठन (वटे०) [3] फूल (वटे०) [4] चारू (वटे०)।

छं० २११ [5] 'वयहि कारन डोल में हालति पानी' समस्या की पूर्ति कवि ने की है। पं० भगवान् दीन शुक्ल (खीरी) के पास एक हस्तलिखित पुस्तक थी (जिसे १९४९ ई में देखा गया था) उसका नाम 'रतन सतक' और लिपि काल सं० १७१० वि० था। लिपि कर्ता रतनदत्त ने गंग से स्वयं भेंट का विवरण भ्रष्ट ब्रजभाषा में दिया है और इस समस्या को देने वाला टोडरमल को बतलाया है। गंग ने तुरंत बिना सोचे यह सवैया सुना दिया।

सोने के चूरन[1] में चमकै, चिनगी सी उठै छवि पुंज छवाके[2] ।
हाथन लेत विरी लटके, मखतूल के फुन्दन[3] जेव[4] जवा के ।
गंग बड़े-बड़े मौतिन के विच, सौभित थोरे कसे[5] कुच वाके ।
अंडनु[6] के मनु[7] मंडल मध्य तें द्वै निकसे चिकुला चकवा[8] के ॥२१२॥

गोल हैं गेंद से चीकने चारू[9] हैं, मानो सदाफल फूलि रहे हैं ।
जानो सुधा के भरे कलसा, खड़े सूर से ये उर अलि रहे हैं ।
गंग कहे यहे अंग के जोर में, कंचकी पैन्हि के तूलि रहे हैं[9]॥२१३॥
ऐसे हमेस न रैहें अली नए जौ लों न ये नए भूलि रहे हैं[10]॥२१६॥

(ड) मेंहदी

सुन्दरि साजि[11] सिंगार सुधारति सौति के गर्वहिं गंजन को ।
गंग लिये[12] कर सार सुती[13] मन मोहन के मनरंजन को ।
लै करि कज्जल अंगुलि लावति नैन लगावति[14] अंजन को ।
राजति यों नख पै मेंहदी[15] मनो गुंज चुगावति खंजन को ॥२१४॥

(ढ) रोमराजि

बैठी बरंगना अंगना में चख कोरै चितै पिय को चित चोरै ।
मोहत विक्रम मोहन के, कहुं[16] सोहत कंचुकि के बंद छोरै ।

पाठान्तर छं० २१२- [1] चूरिनि (कांकरौली) [2] झवा (बटे०), छवा (सभा, पुरोहित) [3] फूंदनि (बटे), फूलनि (शृं०सं०)
[4] जोर (बटे० पुरोहित, टि०)
[5] थोरे थोरे (बटे०) [6] अंडनि (बटे०)
मनो (बटे०)
[8] चकुला (बटे०, पुरोहित, टि०) ।
छं० २१३ - [9] खूब (बटे०) । [10] ए तो तौ लौं रहि हैं जो लौं नए हैं (याज्ञिक) ।
छं० २१४ - [11] अंग (बटे०) । [12] कहै (बटे०, पुरोहित)
[13] आरसि लै (बटे०) । [14] काजर चारु दिए अंगुरी, तिन में मेंहदी रंग (पुरोहित)।
[15] राजतियों मेंहदी नख पै (बटे०), ऐसे जंची जिय में उपमा (पुरोहित) ।
छं० २१५ - [16] कहुं (बटे०)

गंग कहै उपमा उपजी रोमराजि[1] विराजि रही तन गोरै।
सौने के सुन्दर खंभ चड़ी मनो थाकी पिपीलिका पंकति जौरै ॥२१५॥

ढूंढि फिर्‌यो भृकुटी वरुनी बन[2] हेरि पहार पयोहर हार्‌यो।
गंग गये ते गये न फिरे संग लोचन कान कहूं चल[3] चार्‌यो ॥
मेलि[4] रोमावलि वांसी[5] गरे गहि[6] नाभि कुआं गहिरे महि[7] डारयो।
तेरे महा ठग रूप अली त्रिवली त्रिबटी में भुलै[8] मन मार्‌यो ॥२१६॥

(ण) कुटि

कवित्त

तेरे तो चलति कलहंसनि[9] कहूँ न कल,
करभ जनक जिये खरेई[10] गरतु हैं।
सैधन करत[11] कोऊ केरा औ करी कर,
करभ करेरे जाति[12] जानि निदरतु हैं।
कहे कवि गंग नखसिख की निकाई न्यारी[13],
मैंन उपमैं न दोऊ[14] ढिग ह्वै फिरतु हैं।
क्वार के कराल[15] पहपहे के पहर होत,
खरेई ते डहडहे डाहन मरतु हैं ॥२१७॥

पाठान्तर छं० २१५ [1] रुम राजी (वटे०), रोमराजी (पुरोहित)।
छं० २१६ [2] वरुनी भृकुटी कटि (पुरोहित) [3] गंग गयो फिर्‌यो अजहूँ मिलि, लोचंन चारु रह्यौ चित (पुरोहित) [4] वांधि (पुरोहित) [5] फांसी (वटे०), फांसि (पुरोहित)
[6] पुनि (पुरोहित) [7] महि (पुरोहित) [8] त्रिबली में भुलै करि मो (वटे०)।
छं० २१७ - [9] कलहंस के (वटे०) [10] जुदेई (बटे०), खरेई (कांकरौली)
[11] जंघन कहत (बटे०) [12] जानि (वटे०),।
[13] ऐन (बटे०), तेरी (पुरोहित)।
[14] नैन उपमै न मैंन (बटे०) [15] कमल (बटे०, पुरोहित टि०)।

कारी झपकारी बरु[1] बरुनी विषम[2] सो हैं,
भौं हैं मनमोहैं महा कहां धौं[3] सराहिए।
कहै कवि गंग वाके नैनन[4] के आगे आलि[5],
कमल कमीनो[6] लागैमीन[15]तो वहाइए।
अंगिया की तंगिया सों करत[7] तनेने कुच,
देह[8] की निकाई देखे दह्यो[9] सोनो दाहिए।
अद्भुत करतूत करी कर करतार[10],
करिहां को देखिवे को करामात चाहिए ॥२१८॥

ऋतु वर्णन

(क) बसन्त

सवैया

सुनि पीउ विदेसु गयो[11] सजनी रितु आयी वसंत सौ को सहिहै।
निसि चैतु को चन्दु[12] लखे कवि गंग अनंग अबै[13] हिउ को महि है।
बन फूल पलासनि-कुंजनि में, बिरहानलहू तन को दहि हैं।
परदेसु ते पीतमु आवतु है, यहु[14] दौरि के कोऊ कवै कहिहै ॥२१९॥

पाठान्तर छं० - २१८ [1] वर (वटे०) [2] विसेष (वटे०)
[3] तिन्हैं कहां लौं (बटे०), कहा कहा लौं (कांकरौली)
[4] जाकी आंखिन (बटे०), तेरी आंखिन (पुरोहित),
वाकी आंखिन (कांकरौली) [5] आली (वटे०)
[6] अमिल (कांकरौली, पुरोहित टि०)
[7] मीनौ (बटे०) [8] अंगियां सों तंगियां सों करत
(बटे०), अंगन सों तानि तानि करति (कांकरौली),
अंगन तैं तानि तानि करत (पुरोहित) [9] आंग
(वटे०), देस (कांकरौली), [10] दाह्यो (बटे०)
[11] कियो है जु अद्भुत करिवे को नाहीं कछू (बटे०)।

छं० २१९ - [12]पीय विदेस गये (वटे०)।
[13]चैतु को चन्दु (वंटें०)। [14] हिय (वटे०)।
[15]परदेस तें प्रीतम आवत हैं यह (वटे०)।

(कवित्त)

गनक गनी है घरी, खरी[1] छटपट परी,
खरी मरी डरी कहां[2] पांख तौ न लाइ हैं।
कहै कवि गंग तेरो हितू है वसन्त रितु,
देखि तो तमासो हां सो जानहू न[3] पाइ हैं।
मंजरीन गुंजे भौंर, पिक बोलै ठौर-ठौर,
जैहै[4] अमराई लौं तो[5] आगे कैसे जाइ हैं।
आगि सी लगी है बन देखि अकुलैहैं मन,
कोसक[6] ते आली बन माली फिरि आइ हैं ॥२२०॥

टेसू करहरे मानो क्वैला अवजरे धरे,
क्वैलहाई कोइल करेजु[7] भूने खाति हैं।
फूली बन वेली पै न फलिहौ अकेली तन,
एती गंग बेली ना सहेली ना[8] सुहाति है।
चक्रिन ह्वै चौंकी चंचरी कन की चोंप चारू,
राती कौंप देखि देखि छाती सौंप जाति हैं।
आयो है जु अंत पै न जानों तंत मंत कुछौ[9],
कंत सों वसाति ना[10] बसंत सों बसाति हैं ॥२२१॥

ह्वै है पतझार पीर बाढ़िहै परसपर,
पपिहा[11] पुकारिहै तो कैसे कल परि है।
लांबी तरुडार सांइ सांइ करि है सो सुनि,
सुनि सुनि स्त्रवन सखी री जीय डरि हैं।
अंग अंग में अनंग व्यापि जैहै, अंग अंग,

पाठान्तर छं० २२२ - [११] पपीहा (बटे०)
छं० २२० - [१] गंग घरी ये घरी हिए (पुरोहित)।
[२] भली डरी मरी कहं (पुरोहित)।
[३] या (पुरोहित। [४] जिये हैं (पुरोहित)।
[५] नौ (पुरोहित) [६] कौतक (पुरोहित)।
छं० २२१ - [७] करेजौ (बटे०)। [८] न (बटे०)।
[९] कछू (बटे०)।
[१०] न (बटे०)।

ह्वै है गति गंग, गंग किधौं धरी धरि है ।
हालाहल घोरि मोहि देहि क्यों न कंत बिनु,
सजनी बसंत रितु अंत अंत करिहै ॥२२२॥

(सवैया)

गुंजत कुंज मधुव्रत पुंज सरोज के सौरभ की सरसाई ।
गंग सु प्रानपती को पयान, भरौं केहि भांति वियोग दसाई[१]।
कोकिल बोलत बाग ही बाग, बसंत के बासर, सो न बसाई ।
चैत की चांदनी के चितये, तन[२] कैसे कै छांडेगो काम-कसाई ॥२२३॥

लीलैहि लेत[३] निसाचर से मुख प्राची दिसा कि पिसाच कि दारा ।
पीय[४] पयान[५] कि प्रान पयान[६] पिकी पिक रोर कृपान कि धारा ।
गंग बसंत कि अंतक सीत समीर कि तीर तरन्य[७] कि तारा ।
जोन्ह कि ज्वाल मृनाल कि व्याल सखी घनसारकि सार कि[८] आरा ॥२२४॥

(ख) ग्रीष्म

(कवित्त)

जेठ के जबर जाम, कैसे कै भरीजै भाम,
सूनी सेज रंग धाम, धाइ धाइ खाइ हैं[९] ।
कहै कवि गंग वीर विरही बचै न[१०] कोऊ,
व्याधि विथा वेद[११]हरै विस हरै बाइहै[१२] ॥
सरस सिवार, घनसार में तुसार मेलि,
कोटि करि स्याम बिनु[१३]छाती न जुड़ाइहै[१४]।

पाठान्तर छं० २२३ - [१] डसाई (पुरोहित) । [२] कहु (पुरोहित) ।
छं० २२४ - [३] लीले हिलेत (बटे०), लील हि लेत (पुरोहित)
[४] कान्ह (बटे०), काह्न (सु० स०, पुरोहित) [५] प्रियान (सु० सं०, पुरोहित) [६] प्रान प्रियान (सु० सं०)
[७] तरनि (बटे०), तरन्य (पुरोहित) [८] को (बटे०)।
छं० २२५ - [९] खाइगी (बटे०) । [१०] न बचै (बटे०) - छंद की दृष्टि से गति भंग दोष है जिसे सुधारा गया है।
[११] व्यथा बैद (बटे०) [१२] बाहगी (बटे०)।
[१३] बिन (बटे०) । [१४] जुड़ाइगी (बटे०) ।

वह दिन आये विनु जमहिं जनाये विनु,
जानति हौं आज लै[1] जुन्हाई जीय जाइ है[2]॥२२५॥

(ग) वर्षा

जो पिव[3] पीव पपीहा रटै, तो पिया पिव पीव यहै रट लावै ।
गंग कहै हरि के बिछुरे, हिरना नयनी हियरो तन तावै[4] ।
सीरी बयार लगे, उठै[5] सीरी ह्वै, कारी घटा लखि कारी ह्वै आवै ।
बात परी बदले सो पर्यो[6], बदरा[7] बरसै अंसवा बरसावै ॥२२६॥

निसि नील नये उनये घन देखि, फटीं छतियां ब्रज बालन की ।
कवि गंग तनद्‌भुति[8] छीन भयी, सुधि कै सुभ स्याम[9] तमालन की ।
दसहूं दिसि जोति जगामग होति, अनूपम जिंगन[10] जातन की ।
मनों काम चमू के चढ़े[11]उचटी किरचै[12]कलधौत के नालन की ॥२२७॥

(कवित्त)

मोर करै सोर, कारी घटा घन घोर घिरी[13],
दादुर की टर्र मो[14] करेजे चुभि जाइहै[15]।

पाठांतर छं० २२५ - [1] की (वटे०) [2] ज्यो लै जाइगी (वटे०) पद में शिथिलता है ।

छं० २२६ - [3] पिउ सो (कांकरौली) ।
[4] कवि गंगु चिते हरि ते हरिनी नयनी हरि लौ तन तावे (कांकरौली) ।
[5] रहे (कांकरौली) [6] बदे (वटे०)
[7] वरिखा (कांकरौली) ।

छं० २२७ - [8] तन : द्युति (पुरोहित), जु वे छवि (सु॑ ०ति०)
[9] सुथरी छवि देखि (वटे०), सुथरी दुति देखि (सु०ति०)
[10] जैंगनि (पुरोहित), जींगन (वटे०)
[11] की चढ़ी (शृं०सं०, सुं०स०) [12] किरचै उचटै (वटे०), किरचै उछटै (पुरोहित टि०) ।

छं० २२८ - [13] घेरी (वटे०) [14] टेर मो (वटे०), टेर मोहि (याज्ञिक) । [15] जाइगी (वटे०) ।

औरी[1] साखी भूलिहै[2] हिं डौलन पै गाइ गाइ,
जोवन को [3]जोर मो पै देखि न सुहाइहै[4] ।
कहै कवि गंग यह पौन सी छंपटि जाति,
दामिनि सदेह कहौ कासों लपटाइहै[5]।
एरे पापी जीव तू तौ अवहै निकसि जाय[6],
कारी रैन केते विनु कैसे कै विहाइहै ॥२२८॥

आये घन वादर विरह के सयंभु[7] आली,
विनु कंत कामिनी[8] को चितु चटकतु है ।
गरजि गगन घन बैरी[9] सव नासि कीन,
दामिनि की दमक तें सैलु छटकतु है ।
चहू ओर वोलें मोर, चातिक करत सोर,
सूनी सेज देखि देखि प्रानु भटकतु है ।
कहै कवि गंग तू तो विरह के रंग माती,
कारी घटा देखि जोगी जटा पटकतु है ॥२२९॥

तर तर तरफतु[10] तीर से लगत उर,
एसे सुरपति मानो वरषा विरोध्यो है ।
कहै कवि गंग प्यास[11]-पीर लै पपीहा वोल्यो,
कारी दारी[12]कोइल कहां को दांव[13]सोध्यो है ।

पाठान्तर छं० २२८ [1] और (वटे०) [2] भूलैगी (वटे०) ।
[3] के (वटे०) । [4] सुहाइगी (वटे०)
- [5] लपटाइगी (वटे०) ।
[6] जीव तू तौ अवहूं निकसि जाय (वटे०), जीव तू अब निकसि जा (याज्ञिक) ।
छं० २२९ - [7] स्वयंभु (वटे०), संभु (सभा) [8] कंत विन कामिनि (बटे०) पद शैथिल्य है जिसे सुधारा गया है ।
[9] बरी (सभा) [10] सब नासुकीन (वटे०), सतनासु दीन (सभा)
छं० २३० - [11] बरषत (वटे०) । [12] तैसी (बटे०, सभा)
[13] कारी कारी (वटे०)
[14] काम (सभा) ।

चहूं ओर कौंधा, चक चौंधा, लागै सूनी सेज,
स्याम सुखदाई दारी दासी परमोध्यो है।
राती परी बरषै ठिगारी उड़ै धुंआधार,
ऐसी भांति भादौं आली भोरही ते ओंध्यों है ॥२३०॥

(छप्पय)

घन घमंड नभ पर अखंड मारुत प्रचंडतर[1],
दादुर मोर चकोर झिल्लि चातक[2] धरनी धर।
पन्नग भू पथु पंकु पानि[3] बरसत हियु कंपै।
सुरभि लाल[4] चमकै तमाल तरिता दृग[5] झंपै।
इमि भादों निसि जगमगत[6] ांक[7] हीय डरि डग धरत।
कवि गंग कहै तिय[8] काम बस लाल एकली[9] नहि डरत ॥२३१॥

(सवैया)

चाइन[10] चात्रि चंद्रिका गंग चहूं दिसि चंद्र वधू रतनारी।
धीर धरी धुनि[11] सीरी समीर[12], हरी हरी भूमि घटा निसि कारी
या झर में मथुरा के झरोखनि येऊ[13] झरै हरि आंखी[14] हमारी।
को कहै[15] आवनैसावन में सुख सेजै[16] करी कुबजा की अटारी ॥२३२॥

पाठान्तर छं० २३१ - [1] प्रचंड पर (बटे०), प्रचंड दिसि विदिसि परस प्रकरत (सभा)
[2] चात्रिक मोर चकोर झिल्लि (बटे०), सौर यात्रीक चकोर झीली सी मोर (सभा)
[3] मही पंक पथ सांप नीर (बटे०), मही अपांक शर करत हैं शाप पथ केचुझांप (सभा)।
[4] सुभरताल (बटे०), सुगम लाल (सभा) [5] दामिनि चख (बटे०) दामिनि कमाल देखे यकु (सभा)
[6] द्रगमगत (सभा) [7] शंकर (सभा)
[8] गंग भनै तिय (बटे०), गंग बानी भनै (सभा)
[9] लाल अकेली (बटे०), सो लाल अकेली (सभा)।

छं० २३२ - [10] चाइ सों (बटे०) [11] घन छत्रनि (बटे०), घनद्धनि (सभा)
[12] बयारि (बटे०) [13] हेरि (बटे०) [14] आंखि (बटे०), देखौ (सभा)
[15] कह (कांकरौली, सभा) [16] बैठे (बटे०)।

बन के बरही बिरही जन के रिपु बोलि नचे अपनी गतियां[१] ।
बिसहे इषु ह्वै बुंदियां वरसैं करके[२] मनमोहन की बतियां ।
कवि गंग छिती[३] दुति छीन भई नव[४] नींद गई नभ की रतियां ।
अधरैन[५] को नीर घनो घुमर्यो[६] घन सों धमक्यो[७] घनि की छतियां ॥२३३॥

(घ) शरद

बारि भयो मलहीन सुहावन पावन व्योम बलाहक टारी ।
टारि धरौ दुख दूरि अली सुभली बिधि आवहिं गे मगचारी ।
चारि दिना चुप साधि रहौ, मृगनैनि गहौ जिय धीरज भारी ।
भारि सनेह भयो कबते, जबते[८] कवि गंग रही हम बारी ॥२३४॥

(कवित्त) (ङ) शिशिर

कोपि कासमीर तें चल्यो है दल साजि बीर,
धीर ना धरत गल गाजिवे को भीम है ।
सुन्न होत सांझ[९] ते बजत दन्त आधी रात,
तीसरे पहर में दहल दै असीम है ।
कहै कवि गंग चौथे पहर सतावै आनि,
निपट निगोरो मोहि जानि कै यतीम है ।
बाढ़ी सीत संका, कांपे कर[१०] ह्वै अतंका,
लघु संका के लागे[११] नें होत लंका की मुहीम है ॥२३५॥

पाठान्तर छं० २३३ - [१] उठें अपनी घतियां (बटे०), उठें अपनी गतियां
[२] बुंदियां बरसै बिषु के इषु ह्वै खरकै (बटे०), बरषै बुंदियां इषुकी बिषु है करकैं (पुरोहित),
[३]तन (बटे०), छिनै (पुरोहित) [४] निसि (बटे०)
[५] अधराति (बटे०) [६] घमड़े (बटे०), घमक्यो (पुरोहित) [७] धमक्यो (कांकरौली) ।

छं० २३४ - [८] तब (पुरोहित) ।

छं० २३५ - [९] सांझै (बटे०) [१०] उर (पुरोहित)
[११]लगते (पुरोहित) गति भंग दोष है जिसे संशोधित किया गया है ।

(क) पूर्वराग

(सवैया)

जल में झलकै न लगै पलकें, ललकैं छवि को पुनि सोचत है।
कवि गंग सुहाय न द्यौस विभांवरे[1] सांवरे से[2] रुचि रोचत है।
ससकैं, कस कैं न सकैं वसकै अंसुवान को मोचत है।
उन लोल[3] कपोलन के लखिवे को ये लालची[4] लोचन लोचत है ॥२३६॥

सोचत नैन परै नहिं चैन, सुरैन - दिना मिलिवो चहिए।
जी[5] न सुहाइ बिहाइ विहाल, सो हाल यहै नित को सहिए।
वेरी[6] के वास सो गात इतै, उत नेह गुपाल सों क्यों रहिए।
कै[7] जो मिलै मन - मोहन जू मन मोहन सों मन की कहिए ॥२३७॥

कविता

सूरज पछांह उएँ,[8] वामन अकास छुएँ,[9]
अगिन न जारै औ अरिनि[10] होइ माई री।
सिंधु सूखि[11] रेती परै, सेस विष परिहरै,
हर परित्यागै[12] देह सैल की सुताई री॥
कहै कवि गंग वारो उदर मां बतियाइ,[13]
चित्रहू की मूरति पै सोंहू हंसि जाई री।
नभ हू ते ध्रुव टरै,[14] सीखी सों[15] सुमेरु फूटै,
पै न[16] छूटै प्रीति जो मैं हरि सों लगाई री ॥ २३८ ॥

पाठान्तर छं० २३६ - [1] विभावरी (बटे०) [2] सांभरी सी (बटे०)।
[3] गोल (पुरोहित) [4] लाल के (पुरोहित)।
छं० २३७ - [5] कछू (बटे०, (पुरोहित) - सीधा छंदोभंग है। वर्ण भ्रष्टता आ गयी है जिसे सुधारा गया है। [6] बैरी (बटे०) [7] कैं के पूर्व, पुरोहित आदि संस्करणों में अब, जुड़ा हुआ है जिससे वृत्तनियम टूट गया है। छंद-भंग हैं जिसे सुधारा गया है।
छं० २३८ [8] उगै (बटे०) [9] दुवै (बटे०) [10] औ अरीयै (बटे०), असय है (व० सं० याज्ञिक) [11] भांझ (बटे०) [12] परिहरै (बटे०) [13] उद्र मांझ वात करै (बटे०) [14] धुवा टूटै (बटे०), धुवा टरै (याज्ञिक) [15] लौ (बटे०) [16] तौ (बटे०)।

खंजन से नैंन तन तात[१] तपनीय ऐन,
मैंन सो हुलास मुख बैंनन सुहात है।
अलबेली अलकै सुआइ रहीं नैंनन पै,
दसन दामिनि क्रुति[२] ज्यों ज्यों मुसकात है।
चंचल चकित मानों चौकै मृग छौना ताको,[३]
लाल मिलिवे को खरी खरी अकुलात है।
नैंनहु न आवै नींद, भूख नहिं भावै गंग,
पहर पहर राति कहर सी जाति है ॥ २३६ ॥

(सवैया)

बैस उदोतहि भारो न होत ज्यों बौरै की नाई फिरौ अलवेलो[४] ।
पाये कियो अपनो कवि गंग ज्यों, भावे तो[५] भोरहि खेलनि खेलो ।
काहे को न्हान चलो सजनी, संग सांवरो कान्ह मिले री अकेलो ।
लाखन में लिखि राख्यो हुतो, विधि मोहीं सों या निरमोही सोंमेलों ॥२४०

को है अरी वह गैल चलो गयो, वेणु वजावत सांवरो सो है।
सोहै सदा अंग अंग विभूषन, वीर सुधा सवको मन मोहै।
मोहै[६] वताव हिये हितकै, वलि गांव औं गंग जहां अव जोहै।
जो है सुनि मेरी भटू, जनि झाँकि झरोखे न जानिये को है ॥ २४१ ॥

(कविता)

घर के तो घेर कर, वाहिर के वैर करें,
मानस के प्रेम पयोधर[७] पूर परि है।
कहै कवि गंग अति तपत वचन मन,
उरग उसास उर ऐसो जीय धरिहै।

पाठान्तर छं० २३६ [१] ताप (वटे०) [२] दुति (वटे०) [३] ताकि (वटे०)।
छं० २४० [४] फिरै (वटे०) [५] त्यों (बटे०)।
छं० २४१ [६] मोहि (पुरोहित) यहां 'मोहि रखने से' सिंहावलोकन का रूप समाप्त हो जाता है जिसे तत्कालीन अलंकरण युगीन स्थिति में दोष समझा जाता था ।
छ० २४२ [७] प्रेम में पयोध्यौ (वटे०), प्रेम में पयोधर (याज्ञिक)।

मोहन को मुख देखि मुरली की धुनि सुनि,[1]
आंग धुनि विधुनि सबैही दौस जरिहै।
लोक की अथाई मोहि आथ लेइ[2] चाहे माई,
आथए ते रतिनाथ हाथ पांव करि है ॥ २४२ ॥

वाप की न मैया की, न भैया की न भुजैया की,[3]
कहैया सुनैया की न[4] काम-रस माती है।
कहे कवि गंग मन मोहन मगन रूप,[5]
रात-दिन सोचति,[6] न खेलति, न खाती है।
बारे हीते विरुहुन[8] बांसुरी की रिझवारि[7]
इनकी तताई कैसे हम पै[9] सिराती है।
भूली सी फिरति[10], कान्ह काहूं न तनक सुधि[11]
छातो मद पिये जैसे सातों सुधि[12] जाती है ॥२४३॥

काहे हमें दुख देति, हियो न पिछाहो लेति,
बालपन वीते कोऊ वेस में विलाति है।
कहै कवि गंग तू तौ उडन चिरैया भई,
वसु लें ले[13] रहति किधौं तू नाज खाति है।

ान्तर छं० २४२ - [1] याज्ञिक, के पाठ में सुनि है ही नहीं। इससे वर्ण न्यूनता हो जाती है। संपादक
[2] आथ लै (याज्ञिक) यहां भी एक वर्ण कम पड़ गया है।
छं० २४३ - [3] भुजैया की न (बटे०) [4] कहैया की न सुनैया की ए (सभा)
[5] यह मगन मोहन रूप (बटे०) गति भंग दोप है। इसमें संशोधन कर दिया गया है
[6] सोवति (सभा) [7] बिरहिनि (बटे०), विरहुलु (सभा०)
[8] रीझ वारि (बटे०) [9] तुमरी तताई हमही पै क्यों (बटे०), तुमरी तचाई हम भाख्यो (सभा०)
[10] रहत (बटे०), दहत (सभा)
[11] कहूं न काहू को नातो (बटे०), कहूं न किसी को नातो (सभा)
[12] सुधी (बटे०)।
छं० २४४ - [13] बास लैलै (बटे०)।

कौने[१] आली डीठि घाली, लाली न तनक तन,
ताली के पतौंआ जिमि[२] प्यारी गियराति है।
आपनो जो आपु लेहै, किधों काहू भेदु[३] देहै,
बिन ही पिराने[४] दूखे काहे सूखी जाति है ॥२४४॥

जा दिन ते वह ढोटा आंखि भरि देख्यो आलि[५],
ता दिन[६] ते यह देह[७] दूनि ह्वै दगति है।
कहै कवि गंग चित चोगनोक होत नित[८],
चौमासी[९]नदी की न्याई अति[१०] उमगति है।
रूप के मरोरो मारि मार के मरोरो जरि[११],
मरि मुरझाइ से परी ऐसो[१२] जगति है।
सांवरेऊ मानस को गोरी नीकी लगी किधों[१३],
गोरी[१४]ही के लोइनहि[१५]लहरू[१६]लगति है ॥२४५॥

जा दिन ते हेर्‌यो मनमोहन हैं आली सुनि,
ता दिन ते देह विन दूनो ह्वै दगतु है।
कहै कवि गंग नित चित चटपटी होति,
पावस नदी की न्याइ नेहु उमगतु है।
रूप की मरोरै मारै मारु के मरूरे मोरे,
मुरि मुसकानि पर मैनु सो जगतु है।

पाठान्तर छं० २४४ - [१] कौन (वटे०)। [२] यों व (वटे०) जिमि (सभा०)।
[३] भेट (सभा)। [४] पिराने (वटे०)।

छं० २४५ - [५] जब ही तें वह ढोठा उहां ठाढ़ो देख्यो नेकु (वटे०)
[६] घरी (वटे०) [७] देहरिन (वटे०) [८] नित चित कौ न चैन आली (वटे०) [९] चौमसी (वटे०) [१०] नहि नेह (वटे०)

[११] को मरूरो मारै मारु तो मरोरे मारै (वटे०)
[१२] मुरि मुरझाइ परी मैरू सो (वटे०) [१३] सांवरेहू मानसनि गोरे नीके लागत कि (वटे०) [१४] गोरे (वटे०) [१५] लोइन में (वटे०) [१६] लहरु (सभा)।

सांवरेऊ मानस निगोरे नीके लागत कि,
गोरी ही की आंखिनि लूहरु लगतु है[1] ॥२४६॥

(सवैया)

कौन घड़ी करिहै विधिना, जब रुयये[2] आं दिलदार बबीनम् ।
आनंद होइ तबै सजनी, दर सोह्वते यार निगार नशीनम् ।
प्रान पियारा मिलै जबही, दर बाग[3]-ए-वस्ल गुले शब चीनम् ।
सूरत मित्र की चित्त बसी, कवि गंग कहै चूंए नक्श नगीनम् ।२४७।

एक समै[4] घर ते[5] निकसी[6] सखियान के संग सो सांवलि[7] मूरत ।
वामज[8] नाज नमूद सनम् बयेताव[9] शुदम् अफजूद कुछूरत ।

पाठान्तर छं० २४६ - [1] इसे और छं० २४५ को बटे० संस्करण में एक ही समझा गया है । निश्चय ही दोनों वाह्यरूप से एक से प्रतीत होते हैं किन्तु इन दोनों में भाव गरिमा का पार्थक्य सहृदय सरलता से समझ सकते हैं । वस्तुत: दोनों का अंतर आंतरिक स्थिति के प्रदर्शन वैभिन्य पर निर्भर है जिसे समझने के लिये अंत:चक्षु के उद्घाटन की अत्यन्त अपेक्षा है । (सं०)

छं० २४७ - [2] रूये (पुरोहित) [3] वागे (पुरोहित)
[4] चूं (पुरोहित) इस छन्द में गंग ने अपनी बहुभाषा प्रियता दिखायी है । तभी तो कहा गया है-तुलसी गंग दुवो भये, सुकविन के सरदार । इनके काव्यन में मिली, भाषा विविध प्रकार ।

छं० २३८ - [5] सांझ (पुरोहित, सां०प्र०) [6] से (पुरोहित)
[7] नकले (पुरोहित) [8] वह सांवल (पुरोहतो), जु सांवली (बटे०) [9] रंजओ (बटे०), रम्जो (पुरोहित) [10] वेताव (बटे०, पुरोहित)

ताकि दियो मुसकाइ के यों[1] तिरछी अंखियां चितवन को मरूरत
होशद रफ्त नमुंद[2] बदस्त, शुदी दिल मस्त जिदीदने सूरत ॥२४८।

(ख) मान

(कवित्त)

बैरिन बटावनी सी वैठन न जान कहैं।
ऊमे ऊमे[3] निसेनी यों ठाढ़े सूजिअतु है।
सांझ की मनावत हूं मांझ की रयनि आयी,
उरनि को छिन कछू दासो[4] छूजिअतु है।
कहि कवि गंग सेये होये सोऊ तो प्रसन्न होतु,
पाथर हू को जु कोई कै कै पूजिअतु है।
मानुस ह्वै मानुस को कह्यो मानि, मानु त्यागि,
ऐरी मेरी प्यारी तेरी चेरी छूजिअतु[5] है ॥२४६।

वेही काम कीजियतु विरस बिराग वेर,
एतो सिस माई हाय[6] देखी है[7] सुनी कहूं।
तेरी अनुहारि मनुहारि की न होई आली[8],
हारी, मतावतहारी, तू न टारी[9] टेक हूं।

पाठान्तर छं० २४८ [1] मुस्काय के मोतन देखलियो (पुरोहित) मुसकाय के मो तन ताकि दियो (वटे०) दोनों पाठों में पिंगल नियमों की उपेक्षा की गयी है। हमारा अनुमान है कि ऐसे स्थल लिपिकारों के प्रमाद के परिणाम हैं। कवि की त्रुटियों के नहीं। संपादन के दायित्व के वश यत्र तत्र सुधार किया गया है। संपादक। [2] नमांद (पुरोहित)।

छं० २४६ - [3] ऊभे ऊभे (वटे०) [4] उरकों न छिनकहू दासी (वटे०)
[5] वजिअत (वटे०)।

छं० २५० - [6] ऐती रिसहाइ माई (वटे) [7] न (वटे)
[8] आन (मभा) [9] टारे (वटे०)।

कहे कवि गंग काहू[1] तीसरे के तिनु दीजै,
तोही बीसो बिसे खोरी कान्ह ना बिपेकहूं।
छाती हूं लगाये ताती, राती होति राति-दिन,
तेहू है ननैया[2] को सो नेहु नाहिनै कहूं ॥२५०॥

काहे को सतरि होति[3] वे दिना[4] संभारि[5] देखौ[6],
सीरे-सीरे[7] कमल कहूं ते बीन लावती।
कहै कवि गंग तेरो हितू तो हजार ह्वै है,[8]
विरह की पीर बरे[9] हों ही काम आवती।
अनिल[10] के डरनि दुकूल देत[11] दिसि दिसि,[12]
निसि[13] प्रति घसि-घसि चन्दन चढ़ावती।
उनसों तो[14] मान कीजै, मासों कत भौन हूजै,[15]
रूठ करै राधिका जौ हौं ही न जिआवती[16] ॥२५१॥

चकई बिछुरि मिली, तू न मिली प्रीतमसों,
गंग कवि कहै ये तो कियो मान ठान ही।
अथये नछत्र ससि, अथमी न तेरी सिस,
तू न परसन परसन भयो भान री।
तू न खोल्यो मुख, खोल्यो कंज औं गुलाब मुख,
चली सीरी वायु, तू न चली, भो बिहान री।

पाठान्तर छं० २५० — [1]काहे (वटे०) [2]तेहु हेतु मैया (सभा)।
छं० २५१ [3]सतर होत (पुरोहित) [4]सु (सभा), ते (पुरोहित)
[5]संतारि, संतारे (सभा), सम्हारौ (पुरोहित)।
[6]किनु (सभा), क्यों न (पुरोहित)।
[7]कोरे-कोरे (सभा, पुरोहित)।
[8]होहु (पुरोहित)। [9]बेर बीर (सभा, (पुरोहित)।
[10]अलिनि (पुरोहित)। [11]दे दे (सभा, पुरोहित)।
[12]दसौ दिसि (वटे०), दिसि दिसि (सभा)।
[13]दिन (सभा, पुरोहित)।
[14]कान्ह सों (सभा), कान्हसूसों (पुरोहित)।
[15]लीजै (पुरोहित)।
[16]रुठतौ को राधिका जौ हौं ही न जिवानती (वटे०), रासती कहाँ ते राधे जो नहीं जिवावती (सभा, पुरोहित)।

रात सब घटी, नाहीं करनी ता घटी तेरी,
दीपक मलीन, ना मलीन तेरो मान री ॥२५२॥

कैतिक दुहाग दांव मारी मेरी दुलहिनि,
आंखिन में आंसू कोऊ नाहीं भरि नाइगो।
कहै कवि गंग सु तौ तुम्हरों गुपाल दोऊ,
भोरे जी के आहि जौ भरोसो जी में आइगो।
वैन इन रचिहै विरचिहै जु वारि वीचि,
तेरे रूप कहा काहू कामिनी पै जाइगो।
आंव छाड़ि आंबरी को काहे लागि छ्वै कोऊ,
छीर छांड़ि छाछ पिये खोई खाये खाइगो ॥२५३॥

आदर अलाप छांड़ि आगे ते अनखि उठी,
तवै एक बोल मोहि[२] आकदो सो आइगो।
कहै कवि गंग कान्ह ताते देखो[३] ताते रोस,
बाते द्खै वनाइ कही हियो[४] दुख पाइगो।
आपुन[६] पधारों बलि[७] दूसरो विचारो जिनि,
हिले मिले नैक नैक सेंक सों[८] सुहाइगो।
अंचरा की ऐंचा खैंची[९] अंगिया की नोचा खोंची
छतिया की छुई छुवा[११] छूटि मान जाइगो ॥२५४॥

पाठान्तर छं० २५२— [१]छीपै (वटे०)।
छं० २५४— [२]मेरे मुहें एक बोल (वटे०), मेरे मुख बोल एक (पुरोहित)। [३]देखि (वटे०), देखौ (पुरोहित)। [४]वातैं द्वै विरचि (वटे०), बातैं द्वै विचार (पुरोहित) [५]हिये (वटे०) हियें (कांकरौली) हियो (पुरोहित) [६]आप ही (वटे०) [७]निहोरौ मंत्र (वटे०), सिधारो बीचि (पुरोहित) [८]हिले मिले खेलो हंसौ नेक सो (व्रटे०) नैकही के हिले मिले सेकु सो (पुरोहित) [९]ऐंचा ऐंची (वटे०) [१०]खैंचा खैंची (वटे०), नोचा नोची (पुरोहित) [११]छुवा छुई (वटे०)।

बोलि हारी कोइल, बुलाइ हारे प्यारेलाल,
मारि हार्‌यो मदनु मनाइ हारे मानई।
कहि कवि गंग ऐसे[१] पिय सों वियोग, मोही,[२]
सखी सों उदैगु सब एक ही बग्रा गई।[३]
मानिनि मनायो नैंक समुझि अयानी आली[४],
जो पै जी की ऐसी ही[५]तु नीकी काहे को भई।
कोऊ एक[६] ऐसो होइ, मेरो ज्यों लै तो में देह[७],
सीर[८] सी सिराई[९] रीति जाति है दई दई ॥२५५॥

(सवैया)

आए हुते गहि पांइ रिझाइ हिए[१०] सों लगाइ हंसाई गये हैं।
वा रिस के विष[११]के बिरवा बहुर्‌यौ इन बैरिन फेरि बये हैं।
गंग इतै इनही हिलकी, उनके उर कोटि कपाट दये हैं।
कीजै कहा जौ पै वैसेहु मानस ऐसी हठीली के हाथ भये हैं ॥२५६॥

बोले को नेम, चितैवे को नेम, मनो विधि औरहि तें अवरेखी।
गंग कहै कहुं पीर न पीय की सैति सखी जु सबै सब लेखी।
काहू के पांय परे न पसीजति, पाहन की पुतरी तें बिसेखी।
पेम को फांस न मैन को अंकुस, ये नहि मानिनि के कहुं देखी ॥२५७॥

तारनि[१२]जान्यो बखान्यो चिरैयनि, चारहु ओर सुहाग तिहारो।
गंग कहै करि मान कहा रही, चाहत हौ ब कछू करि डारो।

पाठान्तर छं० २५५ —[१] वैसे (पुरोहित) [२] मोसी (बटे०)।
[३] सब एकै बेर आ गई (बटे०), तें वे एकै बेर आ गई (पुरोहित)।
[४] माने न मनाए नेकु समुझि अयानी आली (बटे०), माने न मनायें नेंक सी करि अयानी होति (पुरोहित)
[५] ऐसी जी में ही तो (पुरोहित)।
[६] दैया कोउ (पुरोहित) [७] मै देहु (बटे०), मे देह (पुरोहित)
[८] वीर (पुरोहित) [९] बिरहि (पुरोहित)
छं० २५६- [१०] गरे (बटे०) [११] विस (बटे०)।
छं० २५८- [१२] तरैयनि (बटे०, परोहित) - यहां पिंगल - नियम-दोप है जिसे इस संस्करण में संशोधित कर दिया है।

कान्ह न जी हैं न जी हैं, न जी हैं, यहै लै उठ्यो है बड़ा ग्ररु वारो।
याहि तें ग्राली ग्रलौकहि मेटिये, ताते करो हठु को मुंह कारो ॥१५८॥

ग्रौर त्रिया निरखी कवहूं न, रहै हरि लाखक भांति लडाई।
गंग कहै बरजै सब कोइ ज्यों, त्यों ग्रति ही ग्रति मूंड़ चढ़ाई।
हारि रही करिकै मनुहारि जु, ग्वारि[1] तुम्हारी न मानै मनाई।
जाइ रहौ गहि पांइ बलाइल्यौ, बारेहि तें यह टेव सिखाई ॥२५९॥

मोहन सों पलु ग्रंतरहोत, तरप्पि तरप्पि तनौ मन दाहै।
ये तो है ग्राली री ग्रौर के ग्रातुर, ग्रापुहि ग्रादि लै ग्रंत निवाहै।
धीरज ज्ञान, समान सबै, गंग जेतोइ सारत ते तोई ढाहै।
कौन को तान लै कीजिए मान, जो रुसे लोयन चारचौई चाहै ॥२६०॥

नैकु हंसी विहंसी मुख मोरि, मनो वखसीस करोर दये है।
गंग कहै तिय बारिज लोचन, वारि बिलोचन तें फुलए हैं।
जाइ सुनौ जस ग्रापनो कानन, जैसो वखानत कान्ह गये हैं।
देखी हुंती कहुं घाट के वाट में, भेंट भये बिनु भाट भये हैं ॥२६१॥

इन्दुमुखी निज मंदिर में गहि मौन रही सिस रीति बढ़ाई।
ताहि मनावन को मन मोहन, ग्रापुन ग्राइ सखी वहराई।
गंग प्रभा कर प्रीतम को मुख, नैनन की किरनै उर ग्राई।
मानिनि को विकस्यो हिय कंज ज्यो, मान गयो उड़ि भौंर की नाई ॥२६२॥

भली जोन्हहि जोति भई रंग भौनहि रंग बढ़्यो हुलसानो हिया।
कवि गंग ग्रनंग को तेज चढ़्यो, ग्रंखियान लग्यो सुख देन दिया।
ठनकै रसना, खनकै बलया, घनकै घुंघुरू, झमकै बिछिया।
यह कोऊ तो कोइल सी किलकी, तजिमान मिली मन प्रान प्रिया ॥२६३॥

पाठान्तर छं० २५९- [1] गुवारि (बटे०)।
छं० २६३- [2] इस छंद का प्रथम चरण (बटे०) संस्करण में निम्नलिखित है- जोन्हहि जोति भई भौनहि रंग बढ़्यो हुलसानो हिया। इस में छन्द दोष है। प्रारम्भ में दो लघु कम हैं। यहां भली (भलि) छोड़ दिया गया है।

वह वाल वइक्रम[1] ख्याल समै[2], नंदलाल प्रसंगनि[3] जानिये तो।
तव तो अंखियां समुहे न हुतीं, अब कैसुहुं कै उर आनिये तो[4]।
कवि गंग रहैं दोउ एकहिं पै[5] सिख सें नख लौं पट तानिये तो।
अब तो रति सैं कर कीजिये तो[6], तव पांइ परे हु न मानिये तो
॥२६४॥

(कवित्त)

सांझही तें सोथी कहा काहू की पहुरनी है,
सोवनी जु कीनी करता सों[7] कहा करिये।
कहै कवि गंग कहा भूलि है तिहारे गुन,
नये खंड जाइकै नये ह्वै अवतरिये।
काहे तें है आज कछू देवता ह्वै गई दई,
केहूं माथे हाथ दीजे, केहूं पाय परिये।
वार-वार सौं हैं खाहु, सौंहनि न दूजो साहु,
नाहीं रूसिवे हां जाहु अजहूं उवरिये ॥२६५॥

(सवैया)

मैं तव उत्तर दीनों हुतो जब दूती दु तीन बुलावन आई।
गंग सु तो मन मोहन आनि अचानक बैठि रह्यो ढिग बाई।
मै कहूं सोचि[8] निहार्‌यों उतै उनमें छविकाम की कोटिक पाई।
मान को स्वांग न नैंकु रह्यो, सवै[9] आंग गयों[10] ढरि रांग की नाई॥२६६॥

पाठान्तर छं० २६४ - [1] वहिक्रम (वटे०) [2] ख्याल हुतो (वटे०), ख्याल हूं तौ (सभा)
[3] प्रसंग न (वटे०) [4] देखिके दृष्टि पुरावती हौं, हो क्रमै क्रम कै मन आनियै तो (वटे०) [5] कहै इक सेज रमे (वटे०), रहै दोउ एकहि सेज (पुरोहित) [6] कीजत सै करि कै (वटे०), सम करि कीजिए तो (पुरोहित) सारा छन्द सदोष है। हमने सुधार दिया है। (स०)

छं० २६५ - [7] जुकरि बिनासो (नाथ०)।

छं० - २६६ - [8] धोखे (वटे०, पुरोहित)।
[9] सव (बटे०, पुरोहित), पड़ (पुरोहित टि०)
[10] चल्यो (पुरोहित)।

(कवित्त)

हींड हारी हौं बिहारी, न मानै तिहारी प्यारी,
कोटिक ओगुन गिने सिगरे[1] वरग के।
कहै कवि गंग काहूं अंग हू न अंग देत[2],
हम तुम दोऊ किये[3] अरग-थरग के।
एक पांइ आइ परे मेदिनी के धाता अह,[4]
एक पांइ आइ परे[5] देवता सरग के।
जाइहौं मनाइवे को तो जानिहौं वलाइ लौं[6],
कहिहों[7] गुवारि कैंधों[8] बोल हैं गरग के ।।२६७.।

कहा भयो काहू कियो[9] झूठ मूठ मीठें मोह[10],
आपनी बड़ाई काजै कान्ह मीत मेरे हैं।
ताहि तू बताई जोइ, बाँह दे उसी से सोइ[11],
ऐसे अब आइवे को[12] अनुवा घनेरे हैं।

पाठान्तर छं० - २६७ - [1] हौं कहौं कहां लौं कछु कहत न आवै मोहि, ओगुन अगन मने रावरे (वटे०) [2] अंग अंग न छुवन देइ (वटे०)।
[3] कीने दोऊ (वटे०) [4] एक ओर मेदिनी के मानधाता पांइ परो (वटे०) [5] एक ओर पांइ परो (वटे०) [6] जैहौ जौ मनावत तौ जानिहौं बलाइ लें० (वटे०), जाहुगे मनावन तौ जानोंगी वलाय लौं (पुरोहित) [7] न कहोगे (पुरोहित) [8] गंवारि कैधौं (पुरोहित) गवारि कैधौं (वटे०) गवारि कै तो (नाथ०)

छं० २६८ - [9] कहा भयो काहू वक्यो (वटे०), काहू जो वक्यो नेकु (याज्ञिक)
[10] मुंह (वटे०) [11] तारि तू वताइ जोहै, बांह दै उसी से सोई (वटे०), सो इन बातउए वह दे सिहाने सोई (याज्ञिक) [12] ऐसे अनुवादन कं (वटे०), ऐसे अनुवादव के (याज्ञिक)।

गंग कहैं आजि-काल्हि ह्वै है क्यों [1]पराये अलि[2],
बालक पनें ते ग्वालि तैं तो[3] घालि घेरे हैं।
हंसनि के चेरे, तेरी चितौनि[4] के चेरे तेरी,
चाहनि[5] के चेरे, तेरी चातुरी[6] के चेरे हैं ॥२६८॥

(सवैया)

मैन मयंक समीर सनी निसि, कोक पुकारत आरत बानी।
गंग कहै सखियान वही कही दंपति की रति केली कहानी।
हाथ न[7] जोरी, निहोरि, हहा करि, पां परि कान्ह करी मनमानी[8]
मेलि गरे पट देत[9] गरीव, गरो भरि नारि, गरे लपटानी ॥२६९॥

लीला

(१) दान लीला

(कवित्त)

कारो अति तनहू ते, कारो ही है मन माहिं,
देखी सुनी करतूति एकौ न भलाई की।
कहै कवि गंग काहू तीसरे को कहा चलै,
जासों प्रीति ताहि सों अधिक अधिकाई की।
अब तो या[10]दान लीला लागी लगि लीलि लेन,
आह न अहट अध अरी या अदाई की।
बैरी है, बिसासी है, बटाऊ है कि को है वह,
कोऊ बात कहै वा कन्हाई आतताई की ॥२७०॥

(२) वंशीलीला

एक ओर बिजन डुलावति चतुर नारी,
एक ओर सखी लिये झारी जलदान की।

पाठान्तर छं० २६८ - [1] होत हैं (वटे०) [2] आली (वटे०)
[3] ही (वटे०) [4] चातुरी (वटे०), चितौन (पुरोहित)
[5] चलनि (वटे०) चाहनी (पुरोहित)
[6] चाहनि (वटे०)।
छं २६९- [7] कर (सभा) [8] कोटिक कान्ह कही तैं न मानी (सभा)
[9] हेत (वटे०), देति (सभा०, सा०,प्र०)।
छं० २७० [10] ए (वटे०)।

पीठ पाछे पाननि खवावति खवासी[1] ठाढ़ी,
राजै मुख जोति दमक तड़ितान की।
ताहि समैं बाँसुरी बजायी नंदनंदन जू,
आइ गयी सुधि वृंदावन की लतान की।
बांये गिरी नीर वारी, दाहिने समीर वारी,
पाछे पानवारी गंग आगे वृषभान की ।।२७१।।

(३) पनघट लीला

(सवैया)

जात डरात हुती जमुनै[2] जिये[3] जानत ही घर घेर है होनो।
बूझौधों बीस जनी सजनी जो कहा हुतो कान्ह तिहारो धौं कोनो[4]।
गंग कहै सोइ देखिए[5] ताहि, हो जाहि जोपै[6] जिये लागि है लोनो[7]।
कोउ[8]दई लगि बात कहौ, किन[9]बैठी हो नाय सबै मुंह[10]सोनो ।।२७२।।

कौने लयो यह बीरा वलाय लयौं हौं[11] नंदलाल न दीजत देखे।
गंग कहै तबते जक होहि ते[12] तो पनिहारिनि के मुख पेखे।
एक ही गैल चले दोऊ[13] आवत, तापर हूं ब करैगो[14] परेखे।
नोख्यो[15]सुहाग सुनो[16] री सखी, चलि हूं वे[17] चितैवे के लीजत लेखे ।।२७३।।

पाठान्तर छं० २७१ - [1] खवासि (बटे०)।
छं० २७२ - [2] जमुना जल जाति डराति हुती (बटे०, पुरोहित) - छंद नियम भंग हुआ है जिसमें संशोधन कर दिया गया है। [3] यह (बटे०) [4] जो कहा हुतो कान्ह तिहारो जो कोनो (बटे), इन कहां हुते कान्ह तिहारो धौं कोनो (पुरोहित) [5] देखिये (बटे०), देखिहै (पुरोहित) [6] जु ए (बटे०) [8] लायो है ओनो (बटे०) [9] कोऊ (बटे०, पुरोहित) किधौं (बटे०) [10] मुख (बटे०)।
छं० २७३ - [11] काहू बनाइ के बीरा लयो अब, तें (बटे०), कौने लयो यह बीरा वलाय ल्यो मैं (कांकरौली) [12] वाहि न (बटे०) [13] इत (बटे०) [14] ऐसे ब को करिहैगो (बटे०), तापर हूं ब करोगि (कांकरौली) [15] नोखो (बटे०) [16] सुन्यो (बटे०) [17] चलिवे हूं (बटे०)।

(४) गोपी –कृष्ण लीला

कान्हहि देखि लजान लगी, अब एकहि संग बड़ी भई एती ।
गंग न बात दसा समुझी, अब के पछिताये कहां चित चेती ।
एऊ तो नान्हे ते नेक बड़ भये, लाखो[१] के घुंघुट कोन को देती ।
है कि नहीं पहिचानहु धौं जिनके मुख तो हँसि माखन लेती ॥२७४॥

कान्ह अचानक[२] आइ गये, चितये बिन घूंघट कैसे कै कीजै ।
ता पर ए जु कछू कहती,[३] इन बोल के ऊपर कैसे कै[४] जीजे ।
गंग कहै हम ऐसी अनैसी,[५] सुभावे जिहां ही[६], तहां कहि दीजै ।
पूत[७] परायें[८] को छांड़िए नाव जू,[९] मोही पै[१०] जीभ बड़ी करि लीजै ॥२७५॥

विरह

(१) ब्रज विरह

मोर पखा मुरली न सम्हारत, है मुरझाय रह्यो हरि है है[११] ।
ऐसी बिसासिनि को बनिता ज्यों[१२] बिलोकिनि में विष मे ल चेते हैं ।
गंग खरी सतरात इतै[१३] पर काहू सह्यो, तौ कहा विधि सै है ।
गाढ़ो अंगेठि[१४] गढ़े से खये कछु,[१५] ठाढ़े उरोजनि ठाढ़िए जै है[१६] ॥२७६॥

पाठान्तर छं० २७४ - [१] लाज (बटे०) ।

छं० २७५ - [२] अचानक मोहन (कांकरौली) [३] तौ हम सों कहती कछु वे (बटे०), ता पर ही कहती कछु ऐतिहि (कांकरौली)
[४] इन बातनि ऊपर क्यों करि (बटे०), इन बातन ऊपर नेकु न (कांकरौली) ।
[५] आहि अनैसिये (बटे०), [६] भावै जहां सो (बटे०), जानो जहां सो (कांकरौली) [७] ढोटा (बटे०)
[८] बिराने (कांकरौली) [९] नांउ न छोड़हु (बटे०)
[१०] मोही सों (बटे०) ।

छं० २७६ - [११] ऐहैं (बटे०) [१२] जु (बटे०)
[१३] कहै इतराइ (बटे०) । [१४] अंगेट (बटे०)
[१५] खएनि में (बटे०) [१६] ठाढ़ी लजैहै (बटे०)

राहुल[1] राधे बिना न रह्यो परे, रूप की रीझनि ज्यों जरिहैगो।
डीठि सों डीठि मिले कवि गंग कहो तेहि कान्ह कहासरिहैगो।
बारह पौरि अठारह पौंठनि,[2] पैठि पुछापुछ को करिहैगो।
हौं[3] बरजे हैं अगोरही गोविंद, गोरी को नेह गरे परिहैगो ॥२७७॥

(२) उद्धव से गोपियों की उक्ति

(कवित्त)

सुमिरत प्रीति रीति वृच्छ वन वीथिन की,
कैसे परमारथ को पंथ गहियत है।
बार बार आवत हौं, बिष बुझी[4] बातें कहौं,
थोरो नाहिं बिछरे को सोग सहियत है।
कहै कवि गंग कहा राखि के लगाये अंग,
याही अभिलाख[5] हम लाख लहियत है।
कान्ह ही के साथ जो पै जूआ सो जनम हार्यो,
कूआ परे ऊधो कहूं बीच[6] रहियत है ॥२७८॥

सीतल समीर अति फूंक सी लगत तन
कोकिला की हूक हिये हूक हेलियत है।
तरल तमाल अवलोकतै[7] बिसाल दुख,
तैसियै विरह ज्वाल जाल कैलियत है।
आली जिहि ठौर केलि करीहै[8] कमल नैन,
तिहि ठौर अंसुवन रेलरेलियत है।
बृज विररानो बृजवासी बृजराज बिनु,
रहि बृजरज सोई मुंड मेलियत है ॥२७९॥

पाठान्तर छं० २७७ - [1] रावल (बटे०) [2] कोठेनि (बटे०)
[3] में (बटे०)।
छं० २७८ - [4] विष ऐसी (बटे०) [5] अभिलाष (बटे०)
[6] बांचि (बटे०)।
छं० २७९ - [7] अवलोकत (बटे०) [8] करते (बटे०)।

आजु ही जु न्यारे ह्वै हौ, काल्हि ही तें बीर उनि,
बीरी अधखाति छाड़ि लीनी ही दुहावनी।
काटो जीभ जेहि जीभ ऐसो कहि आवै गंग[1]
कान्ह हैं बटाऊ, बनी हमहू[2] बटावनी।
ऊधो यह सूधो लोग कहा जानै कैसो जोग,
तिनही पढ़ायौ क्यों न देहि जु पढ़ावनी।
भली यह कुविजा के पांय पूजि पांडे भये,
पाउ धारो पाइ पिय प्यारे की पटावनी ॥२८०॥

आंधी की पुकार कोऊ नेकु न सुनत कान,
काल्हि हू लौं करुनामै कौन कौन कीने हैं।
कहि कवि गंग बड़े सुपत को सौंपे सुत,
सुफलक सुख सु तौ कंस के अधीने हैं।
ऐरे[3] अहीर तें तौ हीरा को सो हियरा[4] कियो,
हौं कहा करहु[5] जाके[6] हीरा हरि लीने हैं।
हाथ तें छिड़ाइ हलधर गिरिधर दोऊ,
बारे बारे बीर बैरी[7] बैरियनि दीने हैं ॥२८१॥

कालीदह कालिन्दी, कदंब कुंज वृंदावन,
खेलि खेलि विरह की बेलि बरी[8] वै गयो।
इन्हें तौ अनेक बैन[9] की सी मोहिनी है गोपी,
दुख दैन आयो हतो सू तौ दुख दै गयो।

पाठान्तर छं० २८० - [1] आवत है (बटे०) [2] अरु हम है (बटे०) -
जो छंद उपलब्ध हुआ है उसमें गंग की छाप है।
भाषा शैली से भी संदेह का प्रश्न नहीं उठता।
छं० २८१ - [3] अयरे (बटे०)। [4] हियो (बटे०)।
[5] हौं व कहा करौं (बटे०)।
[6] याके (कांकरौली)। [7] गहि (नाथ०)।
छं० २८२ - [8] बैरि (बटे०) [9] तैसिये जु नैन मैन (बटे०)

जाइ ढूंढ़ि देखो जु वा जमुना की परिपाटी[१],
जाटी भाटी कौन को हमारे हिये है गयो ।
कहै कवि गंग तन तवही तें तलबैली,
बन घन मदन[२], मदन बान छूवै गयो ॥२८२॥

तव फुसलाइवो करत सखि सैननिसों,
सोहे[3] री तिहारे ही जियाए जी जियतु है ।
द्वारिका के गये कछु दिनै दिन और भये,
दोऊ भूली इहै तो परेखो कीजियतु है ।
गंग कहै जा मुख पियूख[४] पान कियो ऊवो,
ता मुख में कैसे विष फेरि पीजियतु है ।
कारे कारे लोगन की बातें हम जान पायी,
आप भये राजा हमें जोग दीजियतु है ॥२८३॥

कालिंदी के कूल कूल, कुंजन की छाया मधि,
कोइल की कूकनि करेजो[५] जारियतु है ।
दोहिनी को नाम सुनें दूनो दुख होत दई,
बांसुरी की सुधि आये आंसू ढारियतु है ।
कहै कवि गंग तुम दीन बधु दीनानाथ,
ए हो गोपी नाथ जन यों विसारियतु है ।
गोधन की छाया में छिपाइ राखे छाती तर,
मेह ते बचाइ अब नेह मारियतु है ॥२८४॥

जा दिन तें माधो मधुबन को सिधारे सखी,
ता दिन तें दृगनि दवागनि सी दे गयो ।
कहि[६] कवि गंग अब सब बृज बासिन की,
सोभा औ, सिंगार सुख संग लाई लै गयो ।

पाठान्तर छं० २८२ [१] जानी है जु जाहु यहै मथुरा की परिपाटी (बटे०)।
[२] बनि घन सघन (बटे०), बन घन सवन (नाथ०)।
छं० २८३ - [3] मोहै (बटे०) [४] पियूष (बटे०) ।
छं० २८४- [५] कुहक करेजा (बटे०) ।
छं० २८५- [६] कहै (बटे०)

आछे मन भावने वे विविध बिछावने जो[1],
सकल सुहावने डरावने से कै गयो।
फूले फूले फूलनि में, सेज के दुकूलनि में,
कालिंदी के कूलनि बिसासी विष[2] दै गयो ॥२८५॥

बात सुनो बृजनाह, विषम विरह दाह,
दाहन के अंबर लों अंगनि दहति है।
कहि[3] कवि गंग अन औसर असमसर,
सरनि की सोंठा सोंठे[4] सुंदरि सहति है।
चेरिनि की चेरी ताकी मोहू जो[5] चिरैया कै के,
डारे कोऊ बृन्दावन कान्ह यों कहति है।
तिहारी ठगौरी वाकी नींद भूली भूख भूली,
आंदिनि अनोखी छबि छिदए रहति है ॥२८६॥

काहू यह कह्यो आन[6], भनक परी ह्वै कान,
मथुरा को[7] छांडि आज[8] दूर केसोराय गो।
आजु[9] यह वात कोऊ राधिकै[10] सुनावौं[11] जनि,
मुरझानो[12] गात, ही[13] निपट मुरझाय गो।
चंदन ते छिरकि कपूर छाय आखिन में,
विरह की आगि आजु लागत सुहाय गो[14]।
गग कहै[15] बृंदा वनचन्द बिन चन्दमुखी,
उन्द को निहारिहै सो चन्द जरि जाय गो ॥२८७॥

पाठान्तर छं० २८५ [1] जे (बटे०) [2] दुख (बटे०)।
छं० २८६- [3] कहै (बटे०) [4] सोंटा सोंटी (बटे०)
[5] कों (बटे०)।
छं० २८७ - [6] कही आइ आन (बटे०) [7] मथुरा हूं (बटे०)
[8] कहूं (बटे०) [9] आज (बटे०, पुरोहित)
[10] प्यारी को (बटे०), राधिका को (पुरोहित)
[11] जतावौ जनि (बटे०) [12] मुरझायो (बटे०)
[13] सो (बटे०) [14] चंदन की चोली और कपूर वाएं अंग अंग, विरह की आंचत्यों अवां ज्यों सिलगाइगो (बटे०)।
[15] चंदहि निहारेंगी (बटे०)।

(३) उद्धव से यशोदा की उक्त

गुंजन की माल, मोर पंख को मुकुट में जु[1],
मुरली की घोर तें[2] मरोरे मारियति हों[3]।
कहि कवि गंग केहू कल न परति मोहि,
कलेऊ के काल[4] कालकूट सों पियति हों।
ता दिन जु[5] ताही छिन होत ही विदा जु मेरो।
हियो न विदरिगो तो हौं ही बदियति[6] हों।
माई मा[7] कहत मोरे[8] मोहन को मुहुं सूखै,
वह मुहुं देखे बिन नीके ही जियति हों[9]।

नीति-उपदेश

(१) सर्वदाता ईश्वर

(छप्पय)

मोर मेरु पर चुगें, चुगें पच्छी वहु तरुवर।
केहरि चुगें अरन्य[11], हंस गन मान सरोवर।
मच्छ कच्छ जल चुगहिं, चुगहिं पाताल उरगाहिं[12]।
कदली वन गज चुगहिं, चुगहिं घर बंधे तुरग्गाहिं[13]।
जग मांझ चुगहिं सब जीव दृढ़[14], तिन न पास कछु गृस्थ[15] है।
चिंता न करहु, निश्चित रहि[6] देनहार समरित्थ[7] है ॥२८९॥

पाठान्तर छं० २८८ - [1] मुकुट मंजु (पुरोहित), मौरू मंजु (पुरोहित)
[2] की घोर के (बटे०), के सुनत (पुरोहित)
[3] मरियति (बटे०) [4] वार (पुरोहित)
[5] दिनाते (पुरोहित) [6] विदरति (पुरोहित)
[7] माई री (बटे०) [8] मेरे (बटे०)।
[9] कैसे जीजियति (बटे०)

छं० २८९- [10] उद्यान (पुरोहित) [11] भुजंगम् (पुरोहित टि०)
[12] तुरंगम् (पुरोहित टि०)
[13] जीव जंतु सब हीं चुगैं (पुरोहित टि०)
[14] गथ्थ (बटे०) [15] हो (पुरोहित), ह्वै (बटे०)-गंग की छाप नहीं है।

(२) हरि स्तवन - महत्ता

(सवैया)

ज्ञान घटै कोउ मूढ़ की संगति, ध्यान घटै बिन धीरज लाये।
प्रीति घटै कोइ गूंगे के आगे, औ[1] मान घटै नित हीनित जाये।
सोचु घटै कोइ साधु कि संगति, रोग घटै कछु औखदि खाये।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, पाप घटै हरि के गुन गाये ॥२९०॥

(३) बुढ़ापे में हरि विस्मरण

(कवित्त)

बांभन को जनमु, जनेऊ मेलि, जानि बूझि,
जीभ ही बिगारिबे को जाच्यो जन जन में।
कहि[2] कवि गंग कहा कीजै, जो न जाने जातु,
बाउ ज्ञान देखो जु बुढ़ाई ध्यान धन में।
काम क्रोध लोभ मोह तिनही के बस पर्यो,
तिहुं पुर नायक बिसार्‌यो तिहुं पन में।
कालिमा के चलत कलापती[3] ज्यों चेत होति,
केस आये सेतु[4] ह्वै न कैसो आये मन में ॥२९१॥

(४) क्षणभंगुर स्थिति

(सवैया)

रंक[5], रिझीसुर, पांवर[6], पंडित, चक्रवती चतुरंग चमू के।
गंग कहै पसु, पच्छि[7] जु संख मुये कुलि काल फनिंद के फूंके।

पाठान्तर छं० २९०- [1] परदेस बसे अरु (बटे०)-यही छन्द कविता-कौमुदी (प्रथम भाग छं० २१ पृ० ५९४) में एक अज्ञात कवि के नाम से आंशिक परिवर्तन के साथ देखिए-

ज्ञान घटै ठग चोरकि संगति, मान घटै परगेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये अरु रोग घटै कछु औषध खाये।
प्रीति घटै कछु मांगन ते अरुनीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि प्रसंग ते जोर घटै, जम त्रास घटै हरि के गुन गाये।

छं० २९१- [2] कहै (बटे०) [3] कलापति (बटे०) [4] सेत (बटे०)।

छं० २९२- [5] रांक (बटे०) [6] पामर (बटे०) [7] पंछि (बटे०) [8] बुंद (बटे०)।

काम बंध्यो कमला के कलोलनि, भूलत है कत कूर कहूं के।
को सुत नारि हितू दिन चारि के, वारि के बूंद बयारि के भूंके ।।२९२।।

काहू के संग[1] चली न हली, अजहूं किन चेति दई के संवारे।
जा दसकंध के बंदी[2] हुते सुर, तेहू परे रन मांझ उधारे[3]।
लंक परायी भई कवि गंग दस्ते दिसि बैठे[4] रहे रखवारे।
रावन के मुख नावन को सु रती भरि कों विनती करि हारे ।।२९३।।

(५) रति

रती बिन राज रती बिन पाट, रती बिन छत्र नहीं इक टीको।
रति बिन साधु रती बिन संत, रती बिन जोग न होइ जती को।
रती बिन मात रती बिन तात, रती बिन मानस लागत फीको।
कहै कवि गंग औ साह अकब्बर[5]! एक रती बिन एक[6] रती को ।।२९४।।

(६) स्वार्थ

गर्जहिं[7] अर्जुन हीजर[8] भये, अरु गर्जहिं[9] गोविंद धेनु चरावे[10]।
गर्जहि[11] द्रोपदि दासि भई अरु गर्जहिं[12] भीम रसोइ पकावे[13]।

पाठान्तर छं० २९३- [1] साथ (बटे०) [2] बंदि (बटे०) [3] मांहि (बटे०) [4] बैठि (बटे०)

छं० २९४- [5] गंग कहै सुनि साह अकब्बर (पुरोहित, बटे०)- यहां छंद-दोष है। गण स्थिति ठीक करने के लिए यत्किंचित् संशोधन किया गया है।
[6] पाव (पुरोहित टि०)।

छं० २९५- [7] गर्ज़तें (बटे०), ग़र्ज से (पुरोहित) [8] क्लीब (बटे०)।
[9] गर्जतें (बटे०), ग़र्ज से (पुरोहित) [10] चराई (पुरोहित)
[11] गर्जतें (बटे०), ग़र्ज से (पुरोहित) [12] गर्जतें (बटे०), ग़र्ज से (पुरोहित) [13] बनाई (पुरोहित)

गर्जें बड़ी सब लोगन [1] में अरु गर्ज बिना कोउ [2] आव न जावे[3] ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, गर्ज से बीवी गुलामै रिझावै ।।२९५।।

(७) सुख - साधन

(दोहा) -

पान पुराना घी नया, अरु कुलवंती नारि ।
चौथी पीठि तुरंग की, स्वर्ग निसानी चारि ।।२९६।।

(८) न का गुण

न न अच्छर सब सों बिरस,[4] सुनि उपजत अनहेत ।
कामिनि के मुख गंग कवि, पल पल शोभा देत ।।२९७।।

(९) कर्म छिपना असंभव

(सवैया) -

तात[5] की जोति में चंद छुपै नहिं, सूर छुपै नहिं बादर छाये ।
रन्न चढ्यो[6] रजपूत छुपै नहिं, दाता[7] छुपै नहिं मांगन आये ।
चंचल नारि के नैन छुपैं नहिं, प्रीति छुपै नहिं पीठ[8] दिखाये ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, कर्म छुपै न भभूत रमाये[9] ।।२९८।।
रैंन भये दिन तेज छुपै, अरु सूर्य छुपै है ग्रहन्न[10] के छाये ।
देखत सिंह छुपै गजराज औं[11] चंद्र छुपै है अमावस आये ।
पाप छुपै हरि नाम जपे, कुल धर्म[12] छुपै है कपूत के जाये ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, कर्म कि रेख छुपै न छुपाये[13] ।।२९९।।

पाठान्तर छं० २९५ [1] भय लोकन (बटे०) [2] जाई (पुरोहित)
[3] गुलाम (बटे०, पुरोहित) ।
छं० २९७- [4] निरस (बटे०) ।
छं० २९८- [5] तारे (पुरोहित) [6] रण भूमि चढ़े (पुरोहित)- गण-दोष है जिसे ठीक किया गया है । [7] दानी (पुरोहित) [8] पूठ (पुरोहित, सां० प्र०)
[9] भभूत लगाये (बटे०), विभूति लगाये (पुरोहित) ।
छं० २९९- [10] अतिपर्व (बटे०) [11] सो (बटे०) [12] कुल कानि (बटे०)
[13] कि रेख छुपै न छुपाये (बटे०) ।

(१०) रुपया

मात कहै मेरो पूत सपूत है, भैना कहै मेरो सुंदर भैया ।
तात कहै मेरो है[2] कुल दीपक, लोक में लाजरु धीर वंधैया ।
नारि कहै मेरो प्रानपति, अरु जीवन जान की लेउं बलैया ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, सोई बड़ा जेह[3] गांठ रुपैया ॥३००॥

(१०) मैत्री

मेंटि कै चैन, करै दिन रैन, ज्यों चाकरियो न सदा सुखकारी ।
ताके[4] न चेत धरे गुन को[5] भये, नेक सो लेस[6] निकारत गारी ।
लै हैं कहा हम छांड़ि महा प्रभु, है जु महा रिझवार बिहारी ॥
राज को संग, कहै कवि गंग, सु सिंह[7] को संग भुअंग[8] की यारी ॥३०१॥

नित प्रीति करौ पहिचानि सुजान सो, औं हयवान सों प्रीति कहा[9] ।
षट मास सुवा तरु सैंमल[10] सेयो, सुदेसु[11] तज्यो परदेस रहा ।
फल टूटि पड़े पछिराज उड़े, जब चोंच दई तो रुपास लहा ।।
कवि गंग कहै सुनु साह अकब्बर, छाछ मिठी यह[12] दूध महा ॥३०२॥

हंस तो चाहत मान सरोवर, मान सरोवर है रंग राता ।
नीर की बुंद पपीहरा चाहत चंद चकोर के नेह को[13] नाता ।

पाठान्तर छं० ३००- [1] व्हैन (पुरोहित) [2] मेरो (पुरोहित) । गण दोष है जिसमें संशोधन किया जा चुका है ।
[3] जाके (पुरोहित), जिन (वटे०) ।
छं० ३०१- [4] ताको (वटे०) [5] गुन सो (वटे०)
[6] दोष (वटे०) [7] सु सिंघ (वटे०)
[8] भुजंग (वटे०, पुरोहित) ।
छं० ३०२- [9] प्रीति करो नित जान सुजान से और है वान से प्रीति कहा (पुरोहित, वटे०) [10] सैमल तरु (पुरोहित) ।
[11] देश (पुरोहित), सुदेस (वटे०) ।
[12] छाछ मिली यह (वटे०) - गण-दोष है जिसे ठीक किया गया है ।
छं० ३०३- [13]. का (वटे०, पुरोहित)

प्रीतम प्रीति लगाइ चले कवि गंग कहै जग जीवन दाता ।
मेरे तो चित्त में मित्त बसे, अरु मित्त के चित्त की जान बिधाता ॥३०३॥

गंग[1] तरंग प्रवाह चलै, तहं कूप को नीर पियो न पियो ।
आइ हृदै रघुनाथ बसे तब[2] और को नाम लियो न लियो ।
कर्म संजोग सुपात्र मिले तो कुपात्र को दान दियो न दियो ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, मूरख मित्र कियो न कियो ॥३०४॥

दोहा) -

पिता, बंधु, परिजन, सजन, गंग जगत यह खेल ।
ऊंच नीच अपनो अपर, जो मन मिले तो मेल ॥३०५॥

(१२) क्रूर से पृथक्ता

सवैया)

बाल से ख्याल, बड़े से विरोध, विरानिहू[3] नारि से ना हंसिये ।
अन्न से लाज, अगिन्न[4] से जोर, अजानेहू नीर में ना धंसिये ।
बैल को नाथ, घोड़े को लगाम सु, हस्ति[6] को अंकुस से[7] कसिये ।
गंग कहै सुनु साह अकब्बर, क्रूर से दूर सदा बसिये ॥३०६॥

(१३) समय वैपरीत्य

वित्त)

जिनको बिलोकि[8] रूप, मोहत अनूप जन,
वे ही[9] तिय विरह विरूप मुहुं[10] भटके ।
जिनको गुनत[11] गुन भूप उमहै अनूप,
वे ही[12] लघु लोगन के लोभ लगे लटकें ।

न्तर छं० ३०४- [1] जहां गंग (पुरोहित)
[2] जिनके हिरदय भगवान बसे तिन (पुरोहित) ।
छं० ३०६- [3] अगोचर (बटे०, पुरोहित) [4] अनंग (पुरोहित)
[5] अजानत (बटे०), अजाने (पुरोहित)
[6] मतंग (बटे०) [7] में (बटे०) ।
छं० ३०७- [8] निहारी (बटे०) [9] तेई (बटे०)
[10] मुख (बटे०) [11] सुनत (बटे०) [12] तेई (बटे०)

आये रन रंग रंगि जिनको सराहियतु,
वे ही[1] सूर कूरन के आगे सीस पटके।
खोजत जिनहिं, गंग पैये न परसिवे को,
वे ही[2] द्वारा द्वारनि रुपैयन को भटके ॥३०७॥

वेद होत पूहर, थूहर कलपतरु,
परमहंस चूहर की होत परिपाटी को।
भूपति भिखारी[3] होत, ठांठ कामधेनु होत,
गैयर झरत मद, चेरो होत चांटी को।
कहै कवि गंग पुनि पुन्नि[4] किये पाप होत,
वैरी भाई[5] वाप होत, सांप होत सांटी को।
निर्धन कुवेर होत, स्यार सम सेर होत,
दिननि के फेर सों सुमेरु[6] होत माटी को ॥३०८॥

एकु दिनु ऐसो जामे सिबिकागजादि रहे[7],
एकु दिन ऐसो जामे सोयवे को सैसो[8] है॥
एकु दिन ऐसो जाये गिलमगलीचा लागे,
एकु दिनु ऐसो जामे तामे को न पैसो है।
एकु दिनु ऐसो जामे भूपन[9] सों प्रीति होत,
एकु दिन ऐसो जामे अरिन[10] को धैसो[11] है।
कहै कवि गंग नर मन में विचारि देखु[12],
आजु दिन ऐसो जाति काल्हि दिनु कैसो है ॥३०९॥

पाठान्तर छं० ३०७ - [1] - [2] तेई (बटे०)
छं० ३०८- [3] मंगैया (बटे०) [4] पुन्य (बटे०)
[5] निज (बटे०)।
[6] सुमेरू (बटे०)।
छं० ३०८- [7] है गज वाजि (बटे०), गज वाजि रहै (याज्ञिक)
[8] सहसो (याज्ञिक) [9] राजन (बटे०)
[10] दुस्मन (बटे०, याज्ञिक) [11] धहसो (याज्ञिक)
[12] देखि (बटे०)।

(१४) परीक्षा का समय

(सवैया)

नीति चले तो[१] महीपति जानिये, मीर में जानिये सील धिया[२] को ।
काम परे तब[३] चाकर जानिये, ठाकर जानिये चूक किया को ।
पात्र तो बातन माहिं पिछानिये,[४] नैन में जानिये नेह तिया को ।
गंग कहै सुन साह अकब्बर, हाथ में जानिये[५] हेत हिया को ।।३१०।।

(१५) पेट

वासु के संग तो[६] नाक दई, अरु आंख दई जग दीखन कूं[७] ।
हाथ दये कछु दान के हेतु[८] दो पांय[९] दये पृथी फेटन कूं[१०] ।
कान दये सुनिवे को पुरान सु जिभ्या दयो[११] भज मोहन कूं[१२] ।
गंग सवै प्रभु आछो दयो[१३] पर पेटु दयो पत खोवन कूं ।।३११।।

(१६) क्षुधा

भूख में राज को तेज सवै मिटै,[१४] भूख में सिद्धहु की बुधि[१५] हारी ।
भूख में कामिनी काम बिसारहि,[१६] भूख में त्यागत पुरष[१७] नारी ।

पाठान्तर छं० ३१०- [१] सो (पुरोहित) [२] दान दिया (पुरोहित)
[३] पर (पुरोहित) [४] बातन पूत कपूतहि जानिए (पुरोहित) [५] हाथ पिछानिए (पुरोहित) ।

छं० ३११- [६] सूंघन वास को (बटे०) [७] जोवन कों (बटे०), देखनकूं (याज्ञिक)
[८] दान के काज दिये दोउ हाथ (बटे०) हाथ दिये कछु करन कूं कछ दान करन (याज्ञिक) [९] सो पांउ (बटे०)
[१०] घूमन कों (बटे०) ।
[११] सु जीभ दई (बटे०), वो मुख जीभ दयो (याज्ञिक)
[१२] गंग कहै सब नीको दियो (बटे०), [१३]है प्रभु जो सब आछो दियो (याज्ञिक) ।

छं० ३१२- [१४] सबै घटै (बटे०), सब घट गयो (याज्ञिक) [१५] सिद्ध की बुद्धिहु (बटे०), सिद्ध की बुद्धि (याज्ञिक) [१६] काम तजै अरु (बटे०), काम को तज गई (पुरोहित) [१७] तज्जत पूरुष (याज्ञिक)

भूख में रंच रहै व्यवहारु न[१] भूख में कन्या अपत्त[२] कुमारी।
भूख में गंग भुलाइ भजन्नहु[3] , चारिहु वेद ते भूख है न्यारी ॥३१२॥

(१७) याचना निंदा

छप्पय) -

बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को बासो ।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सों हांसो ।
बुरो सूम की सेव, बुरो भगिनी वर भाई ।
बुरो कुलच्छन नारि[४] सासु घर बुरो जमाई[५] ।
बुरो पेट पंचाल[६] है, बुरो सूर को[७] भागनो ।
गंग कहै अकबर सुनो, सब से[८] बुरो है मांगनो ॥३१३॥

(१८) ऋण भार

(सवैया) -

नटवां लों नटै न टरै पुनि मोदी, सु डांडिन में बहुभाव भरै ।
सजि गाजै बजाज अवाज मृदंग लौं, बांकिये तान गिनौरी लरै ।
धट धोवी घरै अरु नाई नरै, सु तमोलिन वोलिन वोल धरै ।
कवि गंग के अंगन मंगन हार, दिना दस तें नित नृत्य करै ॥३१४॥

पाठान्तर छं० ३१२ [१] कोऊ रहै व्यवहार न (बटे०), कोऊ व्यवहार नाही रहत (याज्ञिक) [२] रहत्त (बटे०) [3] गंग बनै न भजन्नहु (वटे०), गंग नही भजनहू बन पड़त (याज्ञिक)।

छं० ३१३- [४] नारि कुलच्छ (याज्ञिक) [५] सासुरे बसे जमाई (पुरोहित)
[६] पप्पांल (वटे०), पंपाल (सा० प्र०), कंगाल (पुरोहित)
[७] जुद्ध तै (बटे०), जंग से (पुरोहित)
[८] तें (वटे०)।

(१९) स्वभाव की स्वैच्छाचारिता

पावक कूं जल विन्दु निवारक,[1] सूरज ताप कूं छत्र[2] लियो है।
व्याधि कूं[3] वैद तुरंग कूं[4] चाबुक चौपग कूं[5] वृख[6] दंड दियो है।
हस्ति महापद कूं किय अंकस, भूत पिसाच कूं[8] मंत्र कियो है।
ओखद है सब कूं[9] सुखकारि[10] स्वभाव कूं[11] ओखद नाहिं कियो है ॥३१५॥

(२०) दुर्जन को शिक्षा

दाख बड़ो फल है सुख दायक, काग भखै तो महा दुख पावै।
मिस्री अमोल बहोत मिठास में, जो खर खावै तो प्रान नसावै।
सीत बिना फल खाय छुहारे तो, ताते तुरंग को तेज नसावै।
गंग कहै सुनि साह अकब्बर, सीख कुमानुस को नहिं भावै ॥३१६॥

(२१) सज्जन

(कवित्त)

सहत संताप आप, पर को मिटावै ताप,
करुणा को द्रुम सुभ छाया सुखकारी है।
सूरवीर छमावान, कोटपती नहीं मान,
ज्ञान को निधान भान, गुरु[12] गुनधारी है।
दोष दिल नाहि लेवै, सर्न आवे[13] सुख देवे,
परमार्थ[14] वृत्ति जिन्हें[15] सदा प्रान प्यारी है।

पाठान्तर छं० ३१५- [1] पावक को जल वुन्द निवारन (बटे०), पावक कों जल बूंद निवारन (पूरोहित)।
[2] - [3] - [4] - [5] कों (वटे० पुरोहित)
[6] व्रह्म (पुरोहित) [7] इक (पुरोहित)।
[8] - [9] को (बटे०) [10] कवि गंग (पुरोहित)।
[11] कूं (बटे०), की (पुरोहित)।
छं० ३१७- [12] धीर (बटे०), गंभीर (पुरोहित) [13] शरन आवे (पुरोहित), सर्वआयँ (बटे०) [14] परमारथ (पुरोहित) [15] जिन (बटे०), जिनके (पुरोहित)

कहत है कवि गंग, सुनो मेरे दिल्लीपति,
सुजन विरल ऐसे, विस्व[1] बलिहारी है ॥३१७॥

धन देवे धाम देवे, बात को विस्राम[2] देवे।
राज को लगाम देवे, ऐसो प्रिय पेख्यो है।
समै अनुकूल रहै[3], भूल थाप नहिं देवे,
निरछल न्यायी अध छल जानि छेख्यो है[4]।
बात गुप्त राखे ढाखे[5] बोलना कभू हू[6] भाखे,
प्रकृति पिछानी जाने, भलो मन[7] लेख्यो है।
कहत है कवि गंग सुनो मेरे दिल्लीपति,
समय पै सीख देवे, ऐसो कोई देख्यो है ॥३१८॥

(२२) निषिद्ध क्षेत्र

(छप्पय) -

जहां न चंदन होय, तहां नहिं रहै भुजंगम।
जहां न तरवर होय, तहां नहिं रहै विहंगम।
जहाँ न सत संतोष, तहां आचार रहै किमि।
जहं[8] नायिका समूह, तहां ब्रतसील रहै किमि।
परधान नहीं जिहिं राज में, चोर साह नहिं अंतरो[9]।
बसिये न तहां कवि गंग कहि, खरि गुर जहां पटंतरो[10] ॥३१९॥

पाठान्तर छं० ३१२ [1] विरले सुजन ऐसे बिस्व (वटे०), विश्व में विरले ऐसे सुजन (पुरोहित)।

छं० ३१८- [2] विराम (वटे०), विश्राम (पुरोहित)।
[3] रहने (पुरोहित) [4] निष्कपट न्यायिक कपट जानि देख्यो है (वटे०), निष्कपट न्यायी कुड़ कपट जाने छेक्यो है (पुरोहित)
[5] दाखे (पुरोहित)।
[6] बोलेना कभी हूं (वटे०) [7] लायकनि (वटे०), लायक मन (पूरोहित)

छं० ३१९- [8] जहां (पुरोहित) [9] अंतरा (पुरोहित)
[10] जहं खल अरु गुड़े इक पटंतरा (पुरोहित)।

(२३) नम्रता

नवै तुरी वहु तेज, नवै दाता धन देतो ।
नवै ग्रम्ब वहु फल्यो, नवै नर जर वरसेतो[1] ।
नवै पुरुष गुनवान, नवै गज वैल संवारी[2] ।
नवै सो भारी होय, नवै कुलवंती नारी ।
कंचन पन[3] कसियो नवै, गंग वैन सांचो क्वै[4] ।
सूका काठ[5] अजान नर, भांग पड़े पर नहिं ॥३२०॥

(२४) निषिद्ध सेवा

कहा नीच की प्रीति, कहा कोटू का कीड़ा[6] ।
कहा चिड़ीकी लात, कहा गाडर का घीड़ा[7] ।
कहा कृपन का दान, कहा पाहन का बूंटा ।
कह[8] विषधर तें[9] नेह, कहा केहरि का टूटा ।
कहै गंग[10] गुनवन्त सुन, फूटि[11] नाव क्यों खेइये ।
गुन औगुन समझै नहीं ते कुट्टन क्यों सेइये ॥३२१॥

(२५) कपूत

छप्पर रेंड़ छवाय तवै तरु कौन करावे ।
खर तें हो संग्राम ताजिया कौन चरावे ।
लहसुन गंधित होय, कौन केसरहि वटोरे ।
वेस्या तें घर चलै, कौन कुलवंत खोरे ।
जो होय तमासा काग ते, तो वाजहिं[12] कोन सिकारिये ।
जो काज कपूता ते सरै, तो कौन सपूता पारिये ॥३२१॥

पाठान्तर छं० ३२०- [1]. नर जर वरसतो (पुरोहित), घन जल वरसेतो (वटे०)
[2]. वेल संवारी (पुरोहित) । [3] पै (वटे०) ।
[4]. कहै (पुरोहित) [5] काष्ठ (पुरोहित) ।
छं० ३२१- [6]. कीणा (पुरोहित) [7] घीणा (पुरोहित)
[8]. कहा (पुरोहित) [9] से (पुरोहित)
[10]. कहै गंग (वटे०, पुरोहित) [11] फूटी (पुरोहित) फूटी (वटें०) ।
छं० ३२२- [12]. बाजै (बटे०) ।

(२६) नारी

राजा राउ उमराउ कोऊ जो रिसाय आप,
ताहू सों बसाय[1] गहि पाय बगसाइएं।
और अंग वेदनि को बैद[2] बोल लीजै गंग,
देव भूत लाग्यो होय दीया दिखराइए।
रूप की ठगोरी मेली डोरी यों जरत तनु,
ठोरी[3] लागि मोहनि मोहनि[4] जीभ नाइए।
तैं तो ले परायो मन सरगु पतारु मेल्यो,
तरुनी न तेरो नेकु तारा मंत्रु पाइए ॥३२३॥

(२७) नारी - प्रेम - निषेध

(सवैया)

चंचल नारि सों[5] प्रीति न कीजिए, प्रीति किये दुख होत है भारी।
काल परे कछु आन बने कब, नारि[6] की प्रीति है प्रेम कटारी।
लोह के[7] घाव दवातें[8] मिटैं, पर चित्त को घाव न जाये बिसारी।
गंग कहै सुनु साह अकब्बर, नारि की प्रीति अंगार तें छारी[9] ॥३२४॥

(२८) नीच की कुटेव

लस्सुन[10] गांठ कपूर के नीर[11] में वार पचासक धोइ मंगाई।
केसर के पुट दे दे के फेरि[12] सु चंदन वृच्छ की छांह सुखाई।

पाठान्तर छं० ४२३- [1]. वस्याय (बटे०) [2] वेद (याज्ञिक)
[3]. ढौरी (बटे०)
[4]. मोहनी मोहनी (बटे०)।

छं० ३२४- [5]. की (पुरोहित) [6] बने कवों आन बने पर नारि
[7]. को (बटे०, पुरोहित)।
[8]. सों (बटे०), से (पुरीहित) [9] से भारी (पुरोहित)।

छं० ३२५- [10]. लैसुन (बटे०), लहसन (पुरोहित), लहस्सन(याज्ञिक)।
[11]. यूष (पुरोहित) [12] देय के गंग (पुरोहित)

मोगरे मांझ लपेटि धारी गंग वासु सुवासु चु आपन आई[1] ।
ऐसेहि नीच कूं[2] ऊंच की संगति, कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥३२५॥

(२९) यश

कवित्त)

जोर जात जोर ही ते, जंत्र[3] परे भूमि जात,
भूमि जात जोवन औ राग, रंग, रसु है ।
गढ़ गिरि जात, गरुवाई औ गरब जात,
जात महारूपु औ सरूपु सरवसु है ।
कहै कवि गंग सुख संपति समाज जात,
जात मिटि दंपति दरिद्र परबसु है ।
बाग कटि जात, कुंआ ताल पटि जात सबै,
नदी नद घटि जात, पै न जात[4] जसु है ॥३२६॥

(३०) वाणी महिमा

कुपात्र की प्रीति[5] कहा खाद[6] बिन खेत जैसे[7],
प्रीति बिन मित्र वाकूं[8] चितहू नं आनिए ।
मति बिना मर्द और नूर बिन नारी कहा,
अर्थ विना कवि वाकूं पशु ज्यों प्रमानिए[9] ।

तर छं० ३२५- [1]. मोंगरे माहिं लपेटि धरी गंग, बास सुवास न आव न आई (बटे०), मोगरे माहिं लपेट वरी वाहि, बास कुवास हि आइ जु आइ (पुरोहित), गंग जू मोंगरे माहिं लपेटधरी पर वास सुवास जु आपन आई (याज्ञिक)
[2]. कों (बटे०, पुरोहित) ।

छ० ३२६- [3]. जरब (पुरोहित) [4] न जात जग (पुरोहित) अपनी ओर से बढ़ाया गया है ।

छं० ३२७- [5]. को हेत (बटे०), की प्रीति हू याज्ञिक) ।
[6]. खात (पुरोहित) [7] कहा (बटे०. पुरोहित)
[8] वाकों (बटे, पुरोहित) [9] वाकूं पशु करि मानिये (पुरोहित)

तोप[1] बिना फौज कहा, हस्ती विन हौदा जैसे[2],
द्रव्व[3] विन देवे[4] दान देव कर मानिए[5] ।
कहै कवि गंग सुनो साहिन के साह सूरा,
आदमी को तोल[6] एक बोल में पिछानिए ॥३२७॥

(३१) अबोधता

जह का जानि है[7] भट्ट को भेद, कुम्हार[8] का जानिहै भेद जगा को।
मूढ़ का जानिहे[9] गूढ़ की बातन,[10] भील का जानि है पायलगा[11] को।
प्रीति की रीति अतीत का जानिहै,[12] भैंस का जानिहै[13] खेतसगा को।
गंग कहै सुनु साह अकब्बर, गिद्ध का जानिहै[14] नीर गंगा को ॥३२८॥

(३२) दान में बाधा डालने का फल

गंग कहै सुनि लीजो गुनी, अरे मंगन बीच परौ जनि[15] कोई।
बीच परो तो रहो चुप ह्वै कर, आखिर इज्जत जात है खोई।
वामन औ वलि के दरम्यान में आन भई जो भई गति जोई।
लेते हो कोई औ देत हो केई पै सुक्र ने आंख अनाहक खोई ॥३२९॥

पाठान्तर छं ३२७ [1] तोपें (बटे०), तोव (पुरोहित)
[2]. हौद कहा (बटे०, पुरोहित) [3] द्रव्य (बटे०), दौलत (पुरोहित)
[4]. दिये (पुरोहित) [5] देवत करि जानिए (पुरोहित)
[6]. मोल (बटे०, पुरोहित)

छं० ३२८- [7]. कहा जाने (पुरोहित), न जानत (याज्ञिक), का जानहि (बटे०)।
[8]. कुंभार (बटे०, पुरोहित, याज्ञिक)।
[9]. कहा जाने (पुरोहित), का जानहि (बटे०)।
[10]. गूढ़ कि बात में (पुरोहित, याज्ञिक), गूढ़ कै बातन (बटे०)
[11]. पाप लगा (याज्ञिक, पुरोहित) [12] कहा जाने (पुरोहित) का जानहि (बटे०)
[13]. कहा जाने (पुरोहित), का जानहि (बटे०)
[14]. गिद्ध कहा जानै (पुरोहित), का जानहि (बटे०)।

छं० ३२९- [15]. मत (बटे०, याज्ञिक)।

(३३) सूम और दानी

जौहरी लोग जवाहर जांचक, सूम ओ दानी[१] की कीरति गावैं ।
तौन के भौन को स्वाल कहा, जिन हाल के देखे हवाल वतावैं ।
गंग भने कुलधर्म छिपै नहिं, चाम की टूकरी काम न आवै ।
स्यार थरी में खुरी पुंछ कंथरे, सिंह थरी मुकता गज पावै ।।३३०।।

(३४) फूट

कवित्त -

फूटि गये[२] हीरा की विकानी कनी[३] हाट हाट,
काहू घाट मोल काहू वाढ़[४] मोल को लयो ।
टूट[५] गई लंका फूट मिल्यो जो विभीषन है,
रावन समेत[६] बस आसमान को गयो[७] ।
कहै कवि गंग दुरजोधन से[८] छत्रधारी,
तनक में[९] फूटे ते गुमान वाको नै गयो ।
फूटे[१०] ते नरद उठि जात वाजी चौसर की[११],
आपस के फूटे कहु[१२] कौन को भलो भयो ।।३३१।।

(३५) दुर्जन-प्रकृति

अकारन क्लेस करै ईरषा में अंग जरै,
रंग देखि रीझै नहिं दृष्टि दोष खड़ो है ।
आप को ना करे काज पर को करै अकाज,
लोगन की छांड़ी लाज असूया में अड़ो है ।

पाठान्तर छं० ३३०- १. दानी ओ सूम (वटे०) ज्ञानी औ सूम (पुरोहित)
छं० ३३१- २. जात (पुरोहित) ३ कनी विकात (पुरोहित) ।
४. वाट (वटे०), वाद (पुरोहित) ५ छूटि (शृं० सं०)
६. सहित (पुरोहित) ७ ठयो (वटे०, पुरोहित)
८. सो (वटे०) ९ कें (पुरोहित) १० फूट (पुरोहित)
११. चौपर (शृं० सं०) १२ कहौ (पुरोहित) ।

मन वानी काया कूर[1] ओर कू सतावै सूर,
काम क्रोध हो हजूर बिधना क्यों मड़ो[2] है।
कहत है कवि गंग साहिन के साहि सूरा[3],
दुनिया में दुख[4] एक दुर्जन को बड़ो है ॥३३२॥

(३६) मूढ़ ग्रौर विद्या

कहै ते समझ[5] नाहिं समझै न समझाये[6],
कहैं कवि लोग काहि करै ग्रविसारसी[7]।
काक को कपूर जैसे बानर को ग्रभरन[8],
ब्राह्मन को मक्का जैसे पीर[9] को बनारसी।
बहिरे के ग्रागे तान गाये को सवार[10] जैसे,
हिजरे[11] के ग्रागे नारि लागत ग्रंगार सी।
कहै कवि गंग मन मांझ[12] तो बिचारि देखो,
मूढ़ ग्रागे विद्या जैसे ग्रंध ग्रागे ग्रारसी ॥३३३॥

(३७) गुणी

गुनी की रसना बीच बसना फुलेलन को,
बोलै ग्रौर खोलै बिन कैसे कर जानिए।

पाठान्तर छं० ३३२- १. को (वटे०) २ विधना क्यों घड़ो (वटे), विधि ने क्यों घड़ो (पुरोहित) ३ सूर्य (पुरोहित) ४ दुःख (पुरोहित), दुक्ख (वटे०)।

छं० ३३३- ५. समझे (पुरोहित) ६ समझाये समझै ना (बटे०, पुरोहित)
७. कवि लोग कहैं काहि करै ग्रविसारसी (वटे), कवि लोग कहैं तोहू सुन के बिसारसी (पुरोहित) ८ जैसे मरकट कों भूषन (वटे०), ग्रौर मरकट को भूषण (पुरोहित), ९ जैसे ब्राह्मन को मक्का पीर (वटे०), ब्राह्मन को मक्का त्यों मीर (पुरोहित)
१०. गाए को सवाद (वटे०) गायबे को स्वाद (पुरोहित) ११ हिजरे (बटे०), हीजड़े (पुरोहित) १२ माँहि (बटे०) मांहि (पुरोहित)

जुरिहैं[1] विरादरी महीपन की चारु जहां,
गुनी औ गंवार तहां कैसे पहचानिए।
मोती मोती एक रंग मोल भांति भांति कहैं,
जौहरी के आये विन कैसे कर मानिए।
कहै कवि गंग देखो भंवर कुरेवा दोऊ,
एक रंग डार बैठैं जाति अनमानिए ॥३३४॥

(३८) बुरे राजा

रजो गुन कहत है दीनन कूं जानै नहीं[२],
ताते बोले बोल ताते तेल में नहाएंगे[३]।
लाव लाव कहै कछु न्याव की न बूझे बात[४],
विगर सुन्याव सों बड़ीये[४] मार खाएंगे।
कहै कवि गंग सोते जीव दुखदायी सव[५],
मीड़ मीड़ हाथ कों वे फेरि पछताएंगे[६]।
कहा भयो दिन[७] चार गद्दी के ये मुसद्दी भये,
वद्दी के करैया सब[८] रद्दी होय[९] जाएंगे ॥३३५॥

(३९) अत्याचार का प्रतिरोध

ठठा मारयो खानखाना दच्छिन अजीम कोका,
ईसफ खां मारि मारे कसमीर ठौर के।

पाठान्तर छं० ३३४- [1] जुरंगी (बठे०)।

छं० ३३५- [२]. रजोगुन राते राते फिरत हैं ताते ताते (पुरोहित) [३]. बोलत न मदमाते श्रवन तेल नायंगे (पुरोहित) [४] न्याव को न जानैं ल्याव ल्याव हीकी बात मानें (पुरोहित), न्याव न्याव कहैं कछु न्याव की न बूझै बात (बटे०) [५] मार मार करैं सो तो घनी (पुरोहित) [६] खोटे जीव दुखदायी सव (बटे०), ये खिदमति तमाश मीर (पुरोहित), ये खिदमति है बारगीत (पुरोहित टि०) [७] उतरेते काम हाथ मीड़त रहि जायंगे (पुरोहित) [८] दिना (बटे०, पुरोहित) [९] करनहार (पुरौहित) [१०]. मिल (पुरोहित), पड़ (पुरोहित टि०)।

साहि के हराम खोर मारे साह कुलीखान,
कहांलां गनाऊं गुन उमराव और के।
रुस्तम नवाव मारि, वालाघाट वार क्यो,
फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरौर के।
वस्ती के काम छह हजार असवार जोरे।
जैन खां जुनारदार मारे इकनौर के ॥३३६॥

बाकर खां विरचि विदर्भ देस मार्‌यो गंग,
दलखान मारे मीर कंहरहु गोर के।
दाही मीर मारि के, हड़िव देस पेस करी,
खानदेस खोदि चित्र मंदिर मरोर के।
पूरव पछांह मरदाने मानसिंह मारि,
कासिम खां खोदे हैं मवास ठौर ठौर के।
केसोदास मारु मारि हरमहि मट करी,
जैन खां जुनारदार मारि इक नौर के ॥३३७॥

(४०) ठगई

देखत के वृच्छन में दीरघ सुभाव मान,
कीर चल्यो चाखिबे को प्रेम जिय जग्यो है।
लाल फल थेखि कै जटान मड़रान लागे[1],
देखत वटोही बहुतेरे डगमग्यो है।
गंग कवि फल फूटे भुआ[2] उविरान लखि,
सवन निरास ह्वै कै निज गृह भग्यो है।
ऐसो फलहीन वृच्छ वसुधा में भयो यारो,
सेमर विसासी बहुतेरन को ठग्यो है ॥३३८॥

(४१) दान

कन्यादान लेत सव छत्रपती छत्रधारी[3],
हयदान[4] गजदान भूमिदान भारी है।

पाठान्तर छं० ३३८- [1]. लागो (वटे०) [2] सुआ (पुरोहित)
छं० ३३९- [3]. दान लेत छत्रपती (पुरोहित) [4] अश्व (पुरोहित)

जा मांगे रावन पै, राव मांगे खानन[1] पै,
खान सुलतानन पै भिच्छा कछु डारी है[2]।
भिच्छा ही कै काजे कवि गंग कहै ठाढ़े द्वार[3],
वलि से नृपति तहां बावन[4] विहारी है।
संपदा के काजे कहीं कौने नहीं ओड़्यो हाथ[5],
जहां जैसो दान तहां तैसोई[6] भिखारी है। ॥३३९॥

(४२) कंजूस

पवन को तोल करै, गगन को मोल करै,
बांधहि डोल कवि सों[7] ऐसो नर भाट है।
पाहन[8] सों कातै सूत, बांझ कों बढ़ावै पूत,
मसान में बसै भूत ताको घर भाट है।
बीजुरी[9] करै कलेवा, दवनी सों राखै देवा,
राहु को खवावै मेवा सो सद्धर भाट है।
मेघन को राखै ढेरा, तख्त को[10] लुटावै डेरा,
मन का संभारै फेरा, ऐसो नर भाट है ॥३४०॥

(सवैया)

धूर परै उनके धन पै, जिनको धन पुन्नि[11] के काम न आवै।
धूर परै उनके तप पै, जिनके तपतें अघ भागि[12] न जावै।
काह कहूं इन भूपन तें, जिनको अरि पैर की धूर न खावै।
धाम ढहौ तिनके कवि गंग जिनके घर मंगन मांगि[13] न पावै ॥३४१॥

पाठान्तर छं० ३३९ [1]. उमरावन (पुरोहित) [2] खान सुलतान मांगे, मांगे कहा गारी है (पुरोहित) [3] मांगिबे के हेत कवि गंग कहै अजहू लौं (पुरोहित) [4] बलि जू के आगे ढड़ो त्रिलोकी (पुरोहित)

छं० ३४०- [5] [6]

[7]. कवि सों बांधहि डोल (वटे०)
[8]. पत्थर (वटे०) [9] बिजली (वटे०)।

छं० ३४०- [10]. का (वटे०)।
छं० ३४१- [11]. पुन्न (वटे०) [12] दूर (वटे०) [13] मान (वटे०)

(कवित्त)- (४३) जीभ के अवगुण

नाटक साटक वर बंधन प्रबन्ध छन्द,
ठगारी बयारी गारी कहा न कहति है।
कहैं[१] कवि गंग रामनाम तें विमुख नित,
एकहू निमिख[२] सिख सूधे न गहति है।
याहू मांझ आधि व्याधि झरति उपाधि और,
ठौर काढ़ि कैं कहाँ तें उलहति है।
बारु बारु जनम बिगारु बनि दारू कैसी[३],
नारू या निगोड़ी जीभ तारू में रहति है ॥३४२॥

(४४) कानी आंख

मेरी कानी आंख कछु पाप तें न फूटि गयी,
पीर कौन आपने जनहु की न[४] मानी है।
कोऊ[५] लेइ कोऊ[६] देइ, आप कछु काम नाहिं,
सांची के कहै में कछु आवति ही हानी है।
क्यों रे पापी कृष्न सब वलि को लयो तैं लूटि,
मेरी फोरी[७] आंखि करी दोष[८] की निसानी है।
कहै कवि गंग यहै सुक्र ने जवाब दियो,
मेरी कानी आंखि आनि जाकी[९] जगमानी है ॥३४३॥

(४५) नारी-कुगति

बैठे चन्द्र इनके हजार भग पैदा भई।
छाप लागि[१०] चन्द्र के दलाली की निसानी है।

पाठान्तर छं० ३४२- १. कहि (वटे०) २ निमिष (वटे०) ३ कीसी (वटे०)
छं० ३४३- ४. अपने जन की पीर कौन नहिं (वटे०) - इसमें गति-भंग दोष है। (संभवतः यह कवि गंग का न होकर लिपिकर्ता का दोष है। इसे सुधारने का प्रयत्न किया गया है - (सं०) ५ और ६ कोई (वटे०) ७ फोड़ी (वटे०) ८ पाप (वटे०) ९ आंख कानी वाकी आनी (वटे०)।
छं० ३४४- १० लागी (वटे०)

बैठें मुनि ज्ञानी मृग छाला ह्व बिछाइ रहे,
वेस्या के मित्र इन तें नेक ना गिलानी है।
क्वारी के कर्न भये पांडु[1] ते न पांडौ भये,
दादी मछोदरी की जगत जाति जानी है।
गोपिका अहीर कृस्न वाकी कछु[2] जाति नाहिं,
ऐसे सब बैठें मेरी नेक आंख कानी है ॥३४४॥

कुंती के पांच पुत्र पति को भयो न एक,
दुसासन को गर्भ गिर्‌यो जग गति[3] जानी है।
गंगा तें कुल चल्यो उनको कवि गंग कहें[4],
गांग को भयो न व्याह[5] झूठी ही वखानी है।
तिहारो तो पाँडव फेर कछु ही कहौं नाहिं,
पांचपति एक नारि औसरे सों मानी है।
घीयन के मामले में कोऊ कछु कहै नाहिं,
ऐसे सब बैठें मेरी नेक आंख कानी है ॥३४५॥

(४६) चौबीस चकार युक्त चौधरी

चूतिया चलाक चोर चौपट चवाई चुत[6],
चौकस चिकित्सक चिविल्ला औ चमार है।
चौसरखिलार सि चांदुल चपल चित्त,
चतुर चुहेड़ा चरगन चिड़ीमार है।
चिहुकन चटना चुहुल बाज गंग कहै,
चुगल चंडाल[7] चरपारिया चपार है।
जुलम के[8] चाल सब जाल को[9] हवाल जानै,
चौधरी बखानौं जामें चौबिस चकार है ॥३४६॥

पाठान्तर छं० ३४४ [1] पंडु (वटेङ) [2] कुछ (बटे०)।

छं० ३४५- [3] गीत (बटे०) [4] कहै कवि गंग उनको गंगा तें कुल चल्यो (बटे०)- प्रवाह (शिथिलता दूर करने के लिए शब्दों का स्थान बदल दिया गया है - सं०) [5] न भयो (बटे०) - उपर्युक्त पद्धति का ही प्रयोग हुआ है। (स०)।

छं० ३४६- [6]. च्युत (बटे०) [7] चंडाल (बटे०) [8] की (बटे०) [9]. को (बटे०)।

(४७) प्रहेलिका

(सवैया)-

मेल सहै सर मार सहै बरमी बरमा झलकावत तावैं ।
घाव घने सहे है सुसरीर में नीकी वनी पुनि आवे रु जौवैं ।
काज विराने के काज खरी, कछु आपुन खाइ[1] न और खवावै ।
ए उपमा कवि गंग कहै बिन वारन मांग संवारत आवैं ॥३४७।

(४८) विजया

(कवित्त)-

विजया बिलार खाइ स्वान हूं के कान गहैं,
स्वानहू जो खाइ सो तो धावै गजराज को ।
खाइ गजराजहू तो[2] कोटि सिंह हाथ डारैं,
वनिया जो खाइ तो लुटाइ देत नाज को ।
नामरद खाइ तो मरद कैसे काम करैं,
महरी जौ हाइ सो तो धावै काम काज को ।
कहै कवि गंग गुन देखो विजया के ऐसे,
चिड़िया जो खाइ तो झपटि परै बाज को ॥३४८॥

(४९) बड़ा

(छप्पय)-

प्रथम दरे दरि[3] फटकि छटकि दल मल[4]तन धोये ।
उज्जल पानि पखारि किये दूरन पुनि चोये ।
कुच उतंग भुजदंड तरुन तरुनिन सिल सारे ।
अद्रक लोन[5] मिरीच तैल दधि तेज[6] सुधारे[7] ।

पाठान्तर छं० ३४७- १. खाय (वटे०) ।
छं० ३४८- २. गजराजहू जो खाय (वटे०) ।
छं० ३४९- ३. दर (पुरोहित) ४ दल मलि (वटे०) ५ अदरक नोन (पुरोहित)
६. ते जु (पुरोहित) ७ सिझारे (वटे०)

जिमनार[1] सकल संसार कवि[2] गंग अंत बरनत बरे ।
ते मानहु सुदधि[3] समुद्र में, चारु चन्द्र[4] चहलैं[5] परे ॥३४९॥

(५०) अकबर-निंदा

(सवैया)-

एक को छोड़ि बिजा को भजै, रसना सु कटौ वहिलव्वर[6] की ।
अब तो गुनिया दुनिया को भजै सिर बांधत पोट अटव्वर की ।
कवि गंग तो एक गोविन्द भजै, कछु संक न मानत जव्वर की ।
जिनकों हरि की परतीति नहीं, सो करो मिलि आस अकव्वर की ॥३५०॥

(५१) मृग

(छप्पय)

स्रवन गीत-हित दिये, नैनन दिय बर तियानि कहिं ।
सृंग दिये जोगिन मांस भोगीन पुरुष महिं ।
जीव वधिक कों दियो, तुचा मुनिवर कहां दीनी ।
ससिरथ दिये जु कंध, नृपति तन मृगमद भीनी ।
दिय सगुन सरस पंथीन कहूँ, रन कायर दिय चरन स्वै[7] ।
कवि गंग कहै इमि साह सुनि, मृग समान दाता न कवै[8] ॥३५१॥

पाठान्तर छ० ३४९- [1] ज्योनार (पुरोहित)
[2] संसार 'में' कवि (बटे०, पुरोहित) - दो मात्राएं अधिक होने से छंद दोष आ गया है । उसे सुधारने के लिए में निकाल देना ठीक समझा गया है. (स०)
[3] उदधि (पुरोहित), दद्धि (बटे०)
[4] चंद (बटे०, पुरोहित) [5] चहुलैं (पुरोहित) ।
छं० ३५०- [6] उस (बटे०) ।
छं० ३५१- [7] सोइ (बटे०) [8] कोइ (बटे०)

(५२) आत्म-गौरव

(कवित्त)-

गंग कवि जौहरी रतन गुन पारिख के,
जस मुंकुताहल चहूंघा दरसाइहैं।
चाहिहैं जो नृप करनाभरन करिबे को,
तिनही के आगे बेस कीमति सुनाइहै।
दैहैं करि मौज सोई लैहैं हम हरवर,
ता छन उम्रादो खत टीपन लिखाइहैं।
आदर जमा में कैसे हानि होन पावै जग,
बेचिहैं तहांही[1] जहां नफा कछु पाइहै ॥३५२॥

यशोगान

(१) रामदास

छार भरे छरहोरे छग जे[2] छरक बारे,
छाये हैं छविनु छययनु[3] छाइयतु हैं।
तावगीर तरु जोर तरुन तरह बार[4],
तराइल सहित में गाह[5] घाइयतु है।
गंग कहै ऐसे गज वकसत धरी-धरी,
जैसे गज मोदधि मथेई[6] पाइयतु हैं।
भीख की निकाई भीख ऐसे देत[7] रामदास,
किधौं उभराइन उमाहें लाइयतु हैं ॥३५३॥

पाठान्तर छं० ३५२- [1] तहांई (बटे०)।
छं० ३५३- [2] ज्यों (बटे०) छायधन (बटे०), छय्ययनु (पुरोहित)
[3] तरहदार (बटे०, पुरोहित) [4] मैगल (बटे०)
[5] महोदधि मथे (पुरोहित), [6]मोदधि मथेई (बटे०)
[7] देत आव असै (पुरोहित) देत ऐसे (बटे०)।

दान खान पान सनमान सब पाइयतु,
खुरासान लौंके[1] खान किये खास खूसरे।
कहै कवि गंग इक्क अकबर[2] अक्क उदै,
नभ के नखत[3] से रहे हैं भूप दूसरे[4]।
कहूं देत बाह के प्रवाह ऊदावत राम,
कहूँ देत कुंजर धजानि धूरि धूसरे।
बलि बिना[5] विक्रम न वीरवर कांपै जैये,
कूरम कलपतरु दानसाहि दूसरे।३५४

झलकै[6] झालरें ये अजब जरबाफ झूलैं[7],
निरखत खता[8] अबसान होत खल के।
कदके बिलंद मद मौकस जे मथिबे को,
मंदर उदलि दावादारनि के दल के।
जिनके न ऊपर प्रवाह होत कामरि[9] तें,
अमर की अमर[10] तरंगिनि के जल के॥
मौजनि धुरंधर महीप महाराजा राम[11],
रावरे कढ़त ऐसे दु थन के हल के॥३५५॥

ऐसे राहे काहे कीने कछवाहे रामदास,
स्यारन की रारैं होत बैरिन के रावरनि।
गुज्जरत[12] गुज सिंह गज्जन के कुंभ बैठे,
छोटे छौना छेके फिरैं छरहरे छावरनि।

पाठान्तर छं० ३५४- [1] लैंके (बटे०) [2] अक्कबर (बटे०) [3] कि नषत (बटे०), किनपत (पुरोहित) [4] भूसरे (बटे०, पुरोहित) [5] बिन (पुरोहित), ऊन (बटे०)।

छं० ३५५- [6] झलकति (बटे०, पुरोहित) [7] झूल (बटे०), झूलैं (पुरोहित)
[8] खत (बटे०) [9] कंमर (बटे०), कम्मरि (पुरोहित)
[10] अमर (पुरोहित) अंभर (बटे०),

छं० ३५५- [11] राजा रामसिंह (बटे०)।

छं० ३५६- [12] गुज्जर (पुरोहित)

उरझि उरझि गिरि झांख रहे झांखरनि[1],
बैलिन में बाल सृग बांधे बिउ[2] बावरनि ।
कहै कवि गंग बन बीथिन बरनि[3] परे,
सूने कै कै छांड़े दूनी[4] जंगली जनावरनि ॥३५६॥

औहठी हठीले हने बदर जहांन रिपु,
कौतुक को विबिध[5] बिमान छिति छ्वै रहे ।
कहै कवि गंग रुंड मुंड भकसंड रहे,
मानो उर रेत खेत, राहु केतु ह्वै[6] रहे ।
कुंभनि के करत[7] कुम्हेड़ा बूड़े बूड़ा बूड़,
संभु की जटा जटिल[8] चहूँ केत च्वै रहे ।
कारो विषवारो विधु, धौरी गंगा, धौरो बैल,
एरी[9] गौरां ग्रोरे रुद्र राते राते ह्वै रहे ॥३५७॥

खरब के खलकढ़ा[10] दधीचि के हडवैंचा,
बलि के[11] छलैया बीर मागने कहाये हैं ।
कहि[12] कवि गंग जाके द्वार जैये मांगन[13] को,
सुवौ कहै राम ! मेरे द्वार[14] कहा आये हैं ।
जगत विदित जगदेव ही[15] की बातें सुनि,
कुजस किवार कुल्लि[16] कायरनि लाये हैं ॥

पाठान्तर छं० ३५६- [1] झाखरनि (वटे०, पुरोहित)
[2] बिड़ (वटे०) [3] परन (वटे०) [4] दूनो (वटे०) ।
छं० ३५७- [5] विविध (वटे०) [6] वै (वटे०) [7] कटत (वटे०)
[8] जटलि (पुरोहित) [9] गौरी (वटे०) ।
छं० ३५८- [10] बलकढ़ा (पुरोहित) [11] से (पुरोहित) [12] कहैं (पुरोहित)
[13] जांचन (पुरोहित) [14] तेऊ कहैं राम राम मेरे (पुरोहित)
[15] जू (पुरोहित) [16] के वार कूर (पुरोहित),
किवार कुल्लि (वटे०) ।

कुरम कुलीन[1] कुल उदाग्रात रामदास[2],
कौन गुन गुनी धौं तिहारे मन[3] भाये हैं ।।३५८।।

देख देख खान सुलतान कहैं[4] वाह वाह,
नेक ही की नजीर रोहाल[5] फेरियत है ।।
कहै कवि गंग दुज[6] दीननि के दरवार,
ऐड़ी वैंडी गतिनि[7] गयनन्द घेरियत हैं ।
एकनि को मुहरे जराऊ जरवाव[8] देत,
एकनि की बिदा कर जोरि[9] टेरियत हैं ।
देवे कौ[10] वड़ाई कुल[11] अदावत रामद स,
तेरे दिये माल को हमाल हेरियत है ।।३५६।।

(२) रामचन्द्र बघेला

मदनु बिहद्द नछ विंध्य से उलद्दत है,
कहै कवि गंग ऐसे रोके रथभान के ।
जोरावर जैतवार जगमन रंजन हैं,
अंजन से कारे भारे गंजन गुमान के ।
तुंडनि पसारि के पियूष कुंडपान करैं,
सुंडनि सो पेलत महल मघवान के ।
देउत[12] अमंद अति मंदर से मंद गति,
ऐसे गजराज रामचन्द्र[13] जू के दान के ।।३६०।।

पाठान्तर छं० ३५८- [1] कूरम (बटे०, पुरोहित) [2] राम सेस (पुरोहित) [3] विमल जस (पुरोहित) ।

छं० ३५६- [4] खान सुरितान आसमंद करै (वठे०) [5] एक ही घरी में रहुआल (वटे०) [6] द्विज (वटे०) [7] ऐड़े वैड़े गढ़नि (बटे०) [8] एकनि जराइ उजराइ महुरान (वटे०) [9] करि एक (वटे०)
[10] दीवे की (बटे०) [11] देखो (वटे०) ।

छं० ३६०- [12] दैयत (वटे०) [13] रामचंद (वटे०) ।

(३) प्रताप साहि

उदित प्रताप उदै साहि के प्रताप साहि,
रोस सुनि काहिर ही कुवति[1] कुवंड में।
गंग कहै घनपति जूपति बिकल मति,
लंकहू को अधिपति विपत्ति वित्तंड में।

कुडलों कमठ कोल भूमिगोल हाल-डोल,
परत पतौआ जैसे पवन प्रचंड में
देखिये खुमान राग रंग[2] तेरे पास मान,
भासमान भाजि पैठ्यो आसमान खंड में ॥३६१॥

(४) जुझार सिंह हाड़ा

बैठें दरीखाने बीच साह के समूह दल,
दोनों दीन बीच आन दई एक राखी है।
रौस करि वचन कहै हैं भुअपालन से,
सावन को बंधन बंधे न सत्य भाखी[3] हैं
भनै कवि गंग भट्ट सौर महि मंडल में,
हाड़ा वंस वीर ने कृपान खोल राखी है।
ठोंकी भुजदंड पै, प्रचंड सो जुझार सिंह,
बूंदीपति राखी सो तुम्हारे हाथ राखी है ॥३६२॥

(५) मधुसिंह

(सवैया)

जावक मेह की पावक पव्वये[4], सावक स्रोन कि सांझ वधू के।
गंग धकानि धुकी हर-सिद्धि कवंध, के धक्कन सों घर धूके।
धावत धुंध मची धुरि अंबर, धूरि भरे प्रवले ग्रह धू के।
लोहू के लत्थि रहे गड़ि हत्थि, अहत्थ[5] लगे मृगराज मधू के ॥३६३॥

पाठान्तर छं० ३६१- [1] काहिरही कुवति (पुरोहित), काहि रही कूवति (बटे०)।

छं० ३६६- [2] रान रंगे (पुरोहित)।
छं० ३६२- [3] राखी (बटे०।
छं० ३६३- [4] पव्वय (बटे०) [5] हत्थिय हत्थ (बटे०)

(६) मंगदराय

रुद्र प्रताप के मंगद राय, ढहाय गयंद किये इक ठौरी ।
गंग कहै कटि[1] कुंभ कपोलन मोतिन भूमि भई रंग धौरी[2] ।
इक्क मुसुंडनि काटि[3] के जुग्गिनि[4] इक्क मुसुंड[5] गहें भरि कौरा ।
मानहु मान[6] हिमाचल को हितु[7] भूधर भैयन भेटति गौरी ॥३६४॥

(७) मुकुट मणि

श्री मुकुटम्मनि जंग जुरे ते, चमू चतुरंगन यों विचराई[8] ।
बैरी की नारि विपत्ति परे छवि को बरने कवि गंग की नाई ।
आपने पीयन की सुधि लेन तिया अचगीरी[9] के धामन धाई ।
मानों महा वड़वानल की लपटें बढ़ि वारिधि वाहर आई ॥३६५॥

(८) कीर्ति सिंह-

कीरत सिंह कुमार के त्रास मवास भजे तजि कै रजधानी ।
इंदुमुखी अरविंद से पायनि[10] कंटक पाहरु[11] माह परानी ।
वैरी कि नारि विलक्कति[12] गंगयों, सूखि[13] गयो मुख, जीभ लुठानी ।
काढ़िये म्यान ते ओक करों पिय तें जु कह्यो तरवारि में[14] पानी ॥३६६।

(९) मिरजा भावसिंह

तारा पुर प्रवल पठान भूमि भारी भीर,
भीम सम भिरो रन भावसिंह मिरजा, ।

पाठान्तर छं० ३६४- [1] करि (वटे०) [2] धौरी (पुरोहित) [3] काढ़ि (वटे०) [4] जुग्गनि (पुरोहित) [5] भसुंड (पुरोहित) [6] मानि (वटे०) [7] को हित (वटे०) के हित (पुरोहित) ।
छं० ३६५- [8] विचलाई (वटे०) [9] गन गौरी (वटे०) ।
छं० ३६६- [10] पाइनि (वटे०), पायन (पुरोहित) [11] पाहर (वटे०) [12] विलक्कत (पुरोहित), विलख्खति (वटे०) [13] सूक (पुरोहित) [14] के (वटे०) ।

भभकि भमकि घाइ कूप ज्यों भरत घट,
भारी भारी वीर मारे रन पाइ सिरजा।
लांहू की नदी न गंग हामी घोरा लोथ ह्वै,
जोगिनी सों जो गिनी पुकारै पार तिरजा।
हीरन के हार वर वारति वरंगना लै,
मुंडमाल हर, गज-मोती लै लै गिरजा ॥३६७॥

(१०) जगन्नाथ-

सिंहल सुनैंनी ह्वै ह्वै रैंन की पुरैन रही,
मैन मुख लीनें[1] जगनाथ जस जोन्ह तें।
कहै कवि गंग देस दक्खिन भगानों भारी,
भभरि के भूप भागे जात निज भौन तें।
ऐसे दहलाने[2] देस देस दसौं दिगपाल,
पीपर के पीले पात नाचै जैसे पौन तें।
सूरज विलानो, विलविलानो विलेस पति,
कूरम किलविलानो कूरम के गौन ते ॥३६८॥

आमेर अवनि पाल भानु सुग्र जगन्नाथ,
कूरम कहेलनि कों घोंस तेरे पनि[3] की।
कीनों कोप करा करि होत तहां सराभरि,
भराभरि बीती जहां पहिले ग नि[4] की।
जीरनि पराइ[5] जेर गिदिन गिराइ गंग,
करिन चुढाई तन कारिख तपनि[6] की।
वरछी के वर अकवर[7] के हुकुम वर,
तर तोरी जर सव ईसफ जपनि[8] की ॥३६९॥

पाठांन्तर छं० ३६८- [1] वदन मलीन (वटे०) [2] दहलाये (पुरोहित)।
छं० ३६९- [3] पन (वटे०) [4] गपन (वटे०) [5] जराइ (वटे०)
[6] तपन (वटे०)
[7] अक्कवर (पुरोहित) [8] जपन (वटे०)

(११) दान-शाह

(सवैया)-

तेज[1] कमान गही करदान चली[2] रन मेस्सि वाढें ।
गंग कसीस दई अति पंजव[3], कुंजर प्रांन पसुक्कत[4] हाढें ।
बूड़ि गमे फर स्यों[5] सर सो, पर फोंक की नोक रही कति[6] गाढ़ें ।
चारे की चोप करारें की कोप, कपोत के पोत मनों मुख काढें ॥३७०॥

(१२) बीरबल

(दोहा)

भये[7] सुदामा कुस्न है, गंग वीरवल फेर ।
ता दिन में तंदुल हते, यही दिनन में बेर[8] ॥३७१॥

सवैया)

वारिद से गिरि से गरुवे से प्रसिद्ध मुसुंड भयानक मारे ।
हेम हमेल विभूषित भषन, गंडनि भौर भ्रमे मतवारे ।
वीरवरन्नृप[9] गंग कहै[10] गज दक्खिन के दखिना ही निवारे ।
ब्राह्मन भाट भिखारिन दे बहुते हथिया सहते[11] करि डारे ॥३७२॥

पाठान्तर छं० ३७०- [1] तेग (वटे०) [2] वली (वटे०) [3] सर पंजर (वटे०) [4] प्रानहू सुक्कत (वटे०) [5] फरसो (पुरोहित) [6] फंसि (वटे०) पुरोहित टि० में इसी का पाठान्तर निम्नलिखित है ।

तेग गही करदान, कमान चली रन में रिस वाढ़े ।
हाकि हटे हलका निरसकसु, कुंजर प्रान वसुक्कत हाढ़े ।
फूटि उठयो फरते फरलों, सरफोक की नोक गई कसि गाढें ।
चारे की चोंप, करारें की कार कपोत के पोत मनो मुख काढ़े ।

छं० ३७१- [7] आगे (याज्ञिक) [8] दिन तें (याज्ञिक) ।
छं० ३७२- [9] वीरव्वर नृप (पुरोहित), [10] भने (पुरोहित टि०), मने (वटे०) [11] हथियास हते (पुरोहित) ।

एक बचो सुरराज हथीय सुतावल वाडव और न होनो[1] ।
और सबै बकसे वलबीर बचे[2] रवि के रथ के हय दोनो ।
गंग कहै कर उन्नत देखि सुमंगन मौज गुनी तजि मोनो[3] ।
लंक सुमेरु लुटाइ दई है, रह्यो[4] मुख सालिगराम के सोनो ॥३७३॥

जा दिन ते नृप वीरवरिंद पैं बोलिवो सीख कछू कहि आयो ।
ता दिन ते बढ़्यो सोच विरंचि के सोयो न नींद, अघाई न खायो ।
बैठ्यो घड़ें घर घोरै औ मानिक दैवन के टोटें खरो दुख पायो ।
चोर की जोय भयो विधि वापुरो कासों कहे अपनो डहकायो ॥३७४॥

दान कृपान सुजान पनो[5] तू जगत्त[6] को जीतव जीतन आयो ।
गंग कहै सबै[7] साहिवी के अंग, तें ही मनो पुरहूत पठायो ।
बीर बली नृप[8] तेरी बराबर, और विरंचि न दूजो[9] बनायो ।
साहू के सोच, सिवा हूँ के सूल, सचीहू के साध सपूत[10] न जायो ॥३७५॥

छांड़्यो गिरा को गुमान गजानन[11] जानि पर्यो[12] जगजानन जोऊ[13] ।
कै जु रहै गुरु गूंगे को गंग सुरग्गरू औ असुरगुगुरू दोऊ ।

पाठान्तर छं० ३७३- [1] एक बच्यो सुरपति को हत्थि वियो वलिवंड बच्यो नहिं कौनों (वटे०) [2] रहे (वटे०) [3] घरें तप तेज टरें मुनि मौनों (बटे०), सुमंगल मौज मुनी तजि मोनो (पुरोहित)
[4] जु रह्यो (वटे०), सु रह्यो (पुरोहित), तो बच्यो (पुरोहित टि०)

छं० ३७५- [5] सुजान पन्यो (वटे०), सुजान पनो (पुरोहित) [6] जिहान (वटे०), जहान (पुरोहित) [7] सव (वटे०) [8] वीरवरन्नृप (वटे०) वीरहिवरनृप (पुरोहित) [9] वियो (वटे०)
[10] श्री हूके सूल, सचीहू के सोच, सियाहू के साध पै तो खो (वटे) ।

छं० ३७६- [11] छांड्यो गुमान गिरा औ गजानन (वटे०) [12] वर्यो (वटे०)
[13] जानि न जोऊ (वटे०) जान न होऊ (पुरोहित)

जाइ न गाइ सु वीर बली गुन[1] सौ मुख यों किन सों मुख[2] होउ।
ज्यों चतुरानन और षडानन, ज्यों सहसानन त्यों सब कोऊ ॥३७६॥

(कवित्त)-

आवत हुतों हौं[3] सिव सैल ते गिरीस जांचे।
मिल्यो हुतो मोहिं जहां सागर सगर को।
कविन की रसना की पालकी में बैठी देख्यो[4],
साथ[5] सोहे रावरो प्रताप तेज वर को।
गंग हम पूछी तुम को हो कित जैहो तब[6],
हमसों संदेसो उतै कह्यो वड़े थर को[7]।
जम मेरो नाम मोहि[8] दसों दिसि काम, मेरो।
कहियों प्रनाम हौं[9] गुलाम वीरवर को ॥३७७॥

मालती, सकुंतला सी कोहै[10] काम कंदला सी,
हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरे।
ऐल फैल फिरत सवास खास[11] आस पास,
चोवन की चहत[12] गुलावन की मागरे।

पाठान्तर छं० ३७६ [1] कहैं जात न वीर वली नृप के गुन (वटे०), कहे जात न वीरव्वर नृप के गुन (पुरोहित) - इसमें गण-दोष है जिसे किंचित् परिवर्तन से दूर करने का प्रयास किया गया है। सं०।

[2] सों मुख (वटे०), सैं मुख (पुरोहित)।

छं० ३७७- [3] हौं चलो (पुरोहित) [4] पै चढ़यो जात (वटे०, पुरोहित) [5] संग (वटे०, पुरोहित) [6] कवि गंग पूछ्यो तुम को हौ कित जैहो ? उन (वटे०), गंग कहै पूछ्यो हम कौन तुम जैहो कित (पुरोहित टि०) [7] कह्यो मोंसो हंसि कै संदेसो वाही थर को (वटे०), कह्यो मोसों हंसिकै सनेसो ऐसो थर को (पुरोहित), कही समुझाइ नांव लयो वड़थरको (पुरोहित टि०) [8] मोकों (वटे०), [9] मैं (पुरोहित)।

छं० ३७८- [10] कोऊ (पुरोहित) [11] फिरत खवास खास लिये फिरै (पुरोहित) [12] चोइन की कूपी औ (पुरोहित)

ऐसी मजलिस तेरी देखी[1] राजा बीरबर,

गंग कहैं गू'गी ह्वै के रही गिरा भाग रे[2] ।

महि[3] रह्यो मागधनि[4] गीत रह्यो ग्वालिपद,

गोर रह्यो गोरना अगर रह्यों आगरे ॥३७८॥

(१३) मान सिंह

(छप्पय)

उड़त ऐन अव्वीर, कुसुम खिच्चिय निच्योरे ।

वड़ गुज्जर पतझार, लाज उत्तरगढ़ तोरे ।

रंग भुम्मि खरसान, रंग राख्यो सो जंपिय ।

पिचकारी वरषानि धार उजवक उर कंपिय ।

जस बास लीन जातक[5] भ्रमर, गंग भनत तल उल्ल हैं ।

मकरन्द मान कूरम कलस, अस वसंत खिल्लत रहैं ॥३७९॥

(कवित्त)-

सिद्धि सिरी मानसिंह जी की कल कीरति,

विसद भयी, राज रहौ जौं लौं तिरवेनी है ।

रावरी कुसल हम सिसुन समेत चाहैं,

घरी घरी पल पल यहां हूं सुचैनी है ।

हुंडी एक तुम पै करी है हजार की, सो,

कविन को राखो मान साह जोग देनी है ।

पुहुमी प्रमान, भानु बंस में सपूत मान,

रोक गिनि देने जस लेखे लिख देनी है ॥३८०॥

पाठान्तर छं० ३७८ [1] देखि (पुरोहित) [2] गिरा गरै (पुरोहित टि०)

[3] मग (वटे०), देस (पुरोहित टि०) ।

[4] मागधन (वटे०), मागदेस (पुरोहित टि०) ।

छं० ३७९-[5] जाचक (वटे०) ।

डाकिनी घरन घर बाहन चरख चर,[1]
जिनकी चुरैलें दासी निसाचर दास हैं।
हाड़ गोड़ खोपरी खजाने, घूघू चौकीदार,
गीदरन की घरट बात[2] आस पास है।
कहै कवि गंग तूंवी धामनि धतूरे फूले,
धरनि धमूरि[3] जामी जंगली विलास है।
मेटि डारे आन[4] सारे वासनि के राजा मान,
अब उन खेरनि खवीसन को वास है ॥३८१॥

नैन वान लौं कमान लेत भौंहैं तानति[5] हो,
जानत हों[6] ऐसे जैसे जीत्यो पंचवान है।
हार्‌यो ज्यों निहार्‌यो मानसिंह जू सिधार्‌यो गेह,
कामिनी कुमुदिनी[7] के भाये जैसे भान है।
और है खेनि जीती तिनकी दवनि गंग,
ऐसी दुचिताई में गुसाई तो सुजान हैं।
कैसे हो कहावत हो यों छुड़ायो चाहत हो,
मेरो कहो मान कहा मान उसमान है ॥३८२॥

गिरिजेर हर बाढ़ै, खरे केर हरठाढ़े[8],
वगर वगर अजगर लटकत है।
कहै कवि गंग उड़े झिल्ली झाले झांसिन में,
वासनि[9] अरुझि लीलगाह[10] भटकत है।
ऐसे के मवासे मारि, मेटि डारे मानसिंह,
पहिले पखेरू ते न आइ फटकत है।

पाठान्तर छं० ३८१- [1] खचर खर (बटे०) [2] गीदरनि गीदर खवास (बटे०)
[3] धरनि घुमाइ (बटे०) [4] मान (बटे०)।
छं० ३८२- [5] तानत (बटे०), [6] हो (पुरोहित), हों (बटे०)
[7] कुमुदनी (बटे०, पुरोहित)।
छं० ३८३- [8] गिरे जे सहर बाढ़े हो कै केहरि ठाढ़े (बटे०)
[9] बासिन (पुरोहित), बासन (बटे०) [10]लील गोय (बटे०)

बैरी की बिलाइति, बिलाउ बिग बाग[1] बढ़ि,
हाय होय हाहा हूत भूत भटकत है ॥३८३॥

भानु वंस मानसिंह भूप भगवंत जू के[2],
तेरो तेज[3] आगि जिमि[4] रिपु रासि रूई ती।
कहै कवि गंग जुग जुगन को जेर कीनों[5],
एक बार समसेर जब हाथ[6] छूई ती।
कांगरे किजलवास काविल किलाल देस,
काशमीर आवताव तुरकिन तूई ती[7]।
हिन्दुन की हद्दछकरि आयो तानसिंह नातो[8],
कबकब खुरासान हिन्दुवान हूई ती ॥३८४॥

ईस खां उसी सै पर बैठी मींच बोलति है,
वेही काम काहे को विगारी काहू आनकी।
कहै कवि गंग यह देखिवे है[9] आज काल,
कावली की मुद्दति गिगीस[10] गिरवान की।
तेरे ही परौस कोस सैक के सरोस ह्वै ह्वै,
कैसी कैसी सेवा[11] कीनी कतल पठान की।

पाठान्तर छं० ३८३- [1] वाघ (बटे०)
छं० ३८४- [2] मानव समान रूप भूप भगवंत सुव (बटे०) [3] तेज तेरो (बटे०) [4] मानो (बटे०) [5] कीने (बटे०) [6] जिन समसेर हाथ एक बार (बटे०) [7] काविल केदलेदल, कासमीर किंगराने, कसव की तुरकिनि आवताव तुईती (बटे०) [8] हद्द कोद किये आयो धायो वगमेल मान (बटे०), हौद कोद किये आयो धायो वग मेल मान (कांक०)।
छं० ३८५- [9] को (बटे०) [10] गिरीप (पुरोहित) [11] सेना (बटे०)।

जेही कोट[1] लीवे जोर करत जलालदीन,
तेही कोट[2] सुनियत फते राजा मानकी ॥३८५॥

फूटत पहार झार, टूटत जराऊ खार[3],
देखत प्रचंड धार जैसे वेसुम्हार[4] ह्वै,
तापर गंभीर नीर भीतर कूं भीर[5] लेहि,
उपर कूं मारु[6] देहि वैरी वेकरार ह्वै।
सपने हूं ब्रह्मपुत्र पेरतो जो पारथु तो,
भारथ के गिरे को गुमान जातो छार ह्वै।
बरखत गोला बान सूझै भू न आसमान,
तहां मारि[7] हेला मान मारे पेरि पार ह्वै ॥३८६॥

वनके भरोसे ऐसी वनिना गमाइए न,
महाराजा[8] मान जू के हाथी न अघाहिंगे।
वाहिर कौस सौ ह्वै है सिसोदिया जहां तहां,
दिनां चारि पानी घटे पाछे पछितांहिंगे।
जासों बल मांडि, खेत छांडिगो हकीमु नरु[9],
ताको पीतो छिये पिय भाखा साखा[10] खाहिगे।
लसकरी धोविन के धोइबे को नाह सुनौ,
एक एक पाथर पहार उठी जाहिंगे ॥३८७॥

जेतिक विलाइति को तेरो एक उमराव[11],
तेतिक को पंडव[12] जगायो कुरुखेत है।
एती भूमि काके[13] भई, कौन[14] पातसाहि लई,
जेती यह पातसाह[15] लई और लेत है।

पाठान्तर छं० ३८५- [1] और ([2]) कोद (पुरोहित)।
छं० ३८६- [3] जरै उखार (वटे०) [4] वेसम्हार (वटे०) [5] कों भरि (वटे०) [6] कों (वटे०) [7] मानि (वटे०)।
छं० ३८७- [8] महाराज (वटे०) [9] मोह की मुनरु (पुरोहित) [10]. ताके पील पिले पिय साखा साखा (वटे०), ताको पीतो छिये पिय भाषा सा (पुरोहित)।
छं० ३८८- [11] एक उमराउ याको (वटे०) [12]. तौ पंडोनी (वटे०) [13] भूमि कव (वटे०), भूमिका के (पुरोहित) [14] कौने (वटे०) [15] अकवर (वटे०)।

कहै कवि गंग घर आंगन को लेखौ जैसे[1],
ऐसो कीनो सातहू समुद्रनि को[2] सेत है।
मेरे जानि राजा मान[3] तोरि तोरि आसमान[4]
जोरि जोरि जिमी को[5] जलालदीं को देत है ॥३८८॥

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन तें एक मनो सुखमा[6] जरद की।
कहै क़वि गंग तेरे बल की बयार लगे[7],
फूटी गजघटा[8] घन घटा ज्यों सरद की।
एते मनन सोनित[9] की नदियां उमड़ि चलीं,
रही ना निसानी कहूं महिं में[10] गरद की।
गौरी गह्यो गनपति[11] गनपति गह्यो गौरी,
गौरी पति गह्यो पूंछि[12] लपकि बरद की ॥४८६॥

(सवैया)-

जो न चढ़ी नृप काहू के कागद, [13] जो न प्रलै के समुन्दर[14] झांपी।
जोन लई जुलकर्न सिकंदर,[15] जो नहिं सेस के सीसर्पं कांपी[16]।
गग कहै भुगती न पुरंदर, जो नहिं प्रत्यु के चक्र में चांपी[17]।
बावन के पग ते उबरी [18]महि, सो महि मान महीपति मांपी ॥३९०॥

पाठान्तर छं० ३८८- [1] जैसौ लेखो (बटे०) [2] ऐसे ही समुद्र सातौ भये सब (बटे०) ऐसे ही समुद्र सातो भये सरा (कांक०) [3] आप बिधि (बटे०) [4]. आसमान तोरि तोरि (बटे०) [5] श्री (बटे०)।

छं० ३८९- [6] मानो सुषमा (बटे०), मनो सुखमा (पुरोहित) [7] लागे (बटे०) [8] फूटी गजघटा (बटे०), फूटी गजघन्टा (पुरोहित) [9] स्नोनित (बटे०), श्रोणित (पुरोहित) [10] रन भूमि (बटे०) [11] गिरिपति (बटे०) [12] पूंछ (बटे०)।

छं० ३९०- [13] कागर (बटे०) [14] प्रलै हू के सागर (बटे०), प्रलय के समुद्र में (पुरोहित) [15] जुधिष्ठिर (बटे०) [16] जो रवि के रथ चक्र न तापी (बटे०) [17] जो न लई कवि गंग पुरुख, ऐसे के सीस कंपे हू न कांपी (बटे०) [18] जु बची (बटे०)।

(१४) नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना

(दोहा)-

सीखे कहा नवाब जू, ऐसी देनी देन,
ज्यों ज्यों कर ऊंचे करो, त्यों त्यों नीचे नैन,।।३९१।।

गंग गोंछ[1] मोछैं जमुन, अधरन सरसुति राग[2]।
प्रगट खानखाना भयो[3], कामद बदन प्रयाग।।३९२।।

(कवित्त)-

साहिबी की हद्द तू ही साहिब सुमति तू ही,
साह को सुहेलो तूही संपति को धाम है।
तूही दान, तूही जान, वलबीर खान तूही[4],
तूही लललान उर लागत ललाम है।
कहै कवि गंग तैं अकेलो जान्यो खानखाना,
ऐसे खाये खरचे खजाने खोले काम है।
नवों[5] निधि नौ रसन निरखि निवाजे तातं,
नवल नवाव तेरों नौऊं खंड नाम है।।३९३।।

वांधिवे को अंजलि, विलोकिवे को काल ढिग,
राखिवे को पास जिय, मारिवे को रोस है।
जारिवे को तनमन, मारिवे[6] को हियो, आंखै,
धारिवे को पग पग,[7] गनिबे को कोस है।
खाइबे को सौंहैं, भौंहें चढ़िवे उतारिवे को,
सुनिवे को प्रानधात[8] किये अपसोस है।
वैरम के खानखाना तेरे डर वैरी वधू,
लीवे को उसास मुख, दीवे ही को दोस है।।३९४।।

पाठान्तर छं० ३९२- [1] मोछा (वटे०), मौछे (पुरोहित) [2] गिरा अधर अनुराग (वटे०) [3] खान खान खानान के (वटे०)।
छं० ३९३- [4] तूही वल वीर खांन (पुरोहित) [5] नोऊं (पुरोहित)
छं० ३९४- [6] भरिवे (वटे०, पुरोहित) [7] पग मग (वटे०, पुरोहित)
[8] तान ध्यान (पुरोहित)

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी[1] त्रास
भागे देसपति धुनि सुनत निसान की ।
गंग कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छांड़ि,
फिरे[2] बिललानी सुधि भूली खानपान की ।।
तेऊ[3] मिली करिन हरिन, बाघ[4], बानरनि,
तिनहूं की भली भई रच्छा तहां प्रान की[5] ।
सची जानी करिन[6] भवानी जानी केहरनि,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी ।।३९५।।

हहर हवेली[7] सुनि, सरबु[8] समरकंदी,
धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की ।
पच्छिम को ठाठ ठढ्यो प्रलै सौं[9] पलट्यो गंग,
खुरासान अस्पहान लगे[10] एक आना की ।
जीवन[11] उबीठै बीठें मीठें मीठें महबूब,
ही भर न हेरियत अबट बहाना[12] की ।
तौसखाने, पीलखाने[13] खजाने, हरम खाने,
खाने खाने खबर नवाब खानखाना की ।।३९६।।

पाठान्तर छं० ३९५- [1] हितारे (बटे०), तिहारे (पुरोहित)
[2] बन (पुरोहित) ।
[3] कहूं (बटे०) [4] मृग (पुरोहित) [5] तिनहू तैं रच्छा भई उनहीं के प्रान की (बटे०) [6] गजन (बटे०) ।

छं० सं० ३९६- [7] हद्दर्यों हरैंई (पुरोहित) [8] सटक (बटे०), सटक्यो (पुरोहित) [9] अस्पहान लगी (बटे०), आसाम लगति (पुरोहित) [10] प्रलै बटे०) इसमें एक वर्ण कम है जिसे ठीक कर दिया गया है (सं०) । [11]बीबिनु (पुरोहित) [12] तोसे खाने फील खाने (बटे०), तोसा खाने पील खाने (पुरोहित) [13] है वर न हेरियत अब दूब खाना (बटे०) हिए भर नहेरियत अबट बहाना (रहीम) इसमें एक वर्ण अधिक हो गया है जिसे ठीक कर दिया गया हैं (सं०) ।

नवल नवाब खानखाना जु[1] रिसाने रस,[2]
कीने अरि जेर समसेर सर सरजे।
मांस के पहाड़ समसानु करि राखे सत्रु,
कीने घमसान, भूमि आसमान लरजे।
स्रोनित की धार सों छुअत चंद्रमा सों धार,
मारी भयो भेद रुद्र नगन के[3] बरजे।
न्यारो बोल बोलत कपाल, मुंडमाल न्यारी,[4]
न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजे ।।३९७।।

प्रवल प्रचंड बली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपक[5] दिसान दह दहकी।
कहै कवि गंग तहां भारी सूर बीरन के,
उमडि अखंड दल प्रलै पौन लहकी।
मच्यो घमसान[6] तहां, तोप तीर वान जले[7],
भंडी[8] बलवान किरवान कोपि गहकी।
तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीसा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ।।३९८।।

(छप्पय)-

चकित भंवर[9] रहि गयो, गमन नहिं करत कमल वन।
अहि फन मनि नहि लेत, तेज नहिं वहत पवन घन[10]।

पांठान्तर छं० सं० ३९७- [1] जी (बटे०, पुरोहित) [2] रन (बटे०, पुरोहित)
[3] रुदन की हाहा (बटे०), रुदन को हा हा (पुरोहित)
[4] न्योरा (पुरोहित)।

छं० सं० ३९८- [5] दीपन (बटे०, पुरोहित) [6] घमासान (बटे०)
[7] चलैं (पुरोहित), चलै (बटे०) [8] मंडी (बटे०, पुरोहित)।

छं० सं० ३९९- [9] भंवर भ्रमत (पुरोहित) [10] पवन नहिं चलत तेज घन (पुरोहित)।

हंस मान सर तज्यो[1], चक्क चक्की न मिलै अति[2] ।
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहैं न करें[3] रति ।
खल भलित[4] सेस कविगंग भनि, अमित तेज रविरथ खस्यो[5] ।
खानखन खान[6] बैरम[7] सुअन, जिदिन[8] कोप[9] करि तंग कस्यो ॥३९९॥

(कवित्त)

नवल नवाब खानखाना जु तिहारे डर,
परी[10] है खलक खैल भैल जहूं तहूं जू ।
राजन की रजधानी[11] डोली फिरै वन वन,
नेठन की बैठें बैठें[12] भरें वेटी वहू जू ।
चहूं गिरि राहें परी, समुद्र[13] अथाहें अब,
कहै कवि गंग चक्र बल्ली[14] ओर चहूं जू ।
भूमि चली सेष धरि, सेष चल्यो कच्छधरि,
कच्छ चल्यो कौल धरि, कौल चल्यो कहूं जू ॥४००॥

राजे भाजे राज छोड़ि, रन[15] छोड़ि राजपूत,
रौति[16] छांड़ी राउत, रनाई छोड़ि राना जू ।

पाठान्तर छं० ३९९ [1] तक्यो (वटे०) [2] चकवी न मिलत पति (पुरोहित) [3] अहो पद्मनी नारिपुरुष रखैं न करत (पुरोहित) [4] कलमलत (पुरोहित) [5] सुनत रोर रवि रथ थक्यो (पुरोहित) [6] खानखान (वटे०) इसमें दो मात्राएं कम हैं जिन्हें बढ़ा दिया गया है। (सं०) [7] बहरम (पुरोहित) [8] तदन (पुरोहित) [9] क्रोध (पुरोहित)

छं० सं० ४०० [10] परि (पुरोहित) [11] राजरानी (वटे०) [12] दैठें बैठें (पुरोहित) (रहीम) [13] समुद्र (वटे०) [14] चक्रवाल (वटे०) ।

छं० सं० ४०१ [15] रज (वटे०) [16] रौती (वटे०), राउती (पुरोहित)

कहै कवि गंग कैं इत समुद्र[1] के चहूं कूल,
किये न करै कबूल तिय[2] खसमाना जू।
पच्छिम, पुरतगाल, कासमीर, अबताल,
खख्खर[3] को देस, बाढ्यो भख्खर भगाना जू।
रूम, साम, लोभ, खोम,[4] बलक बदाऊं सान,[5]
खैल मैल[6] खुरासान खीभे खानखाना जू ॥४०१॥

धमक निसान सुनि, धमक तुरान चित,
चमक किरान मुलतान थहराना जू।
मारू मरदान कामरू के करवान आदि,
मेवार के रान हिंदुवान[7] आन माना जू।
पूरव भगान[8] पछमाध[9] पलटान उत्त-
राध गुजरात देस[10] दच्छन[11] दवाना जू।
ओखान, हवसान, हेहलान,[12] रूम, साम,
खैल मैल खुरासान, चढ़े खानखाना जू ॥४०२॥

बैरम को खानखाना बिरच्यो बिराने देस,
दक्खिन[13] में फौज मारी, खग्ग मुख जो परी।
माते माते हाथिन के हलका हलक डारे,
मानो महा मारुत भकोर डारी भोंपरी।

पाठान्तर छं० ४०१- [1] हूल सागर (बटे) हूल समुद्र (पुरोहित) [2] तिये (पुरोहित) [3] सखखर (पुरोहित) [4] सूम साम (पुरोहित) लोभ सोम (पुरोहित टि०, बटे०) [5] बदखसान (बटे०) [6] फैल (पुरोहित)।

छं० सं० ४०२- [7] रानहिं मेवार के दिवान (पुरोहित) [8] पुर्तगाल (बटे०, पुरोहित) [9] पच्छमाध (पुरोहित), पश्छिमाध (बटे०) [10] देस अरु (बटे०, पुरोहित) [11] दच्छिन (पुरोहित, बटे०) [12] हट्टलान (बटे०), दहलान (पुरोहित)

छं० सं० ४०३- [13] दक्षिण (पुरोहित)

लोहू के अलेले गंग गिरजा गलेले देत,
चोंथ चौंथ खात गीध, चर्व मुख चोपरी।
तियनि समेत प्रेत, हांके देत बीर, खेत,
खलल खलल[1] हंसे खलन की खोपरी ।।४०३।।

चमकत चंद्रबान, कुहके कुहकबान,
बान-बान भिरत समान गंग पर के।
मांते हाथी माथो कारि, महाउत उलझारि,
हाते होत सुने हथनालन के भरके।
सार के पहार सिंह सिपाह लेलार[2] पेलि,
ऐसे ठोर सिरदारु सौरहू पहर[3] के।
बैरम के खाल खाना चरन अडोलि रोपि,
गोल मांझ बोल प्रतिपालै अकबर के ।।४०४।।

विद्यानर[4] खरभरे तेरे बैर बैरम के,
दोउगढ़[5] सीउ[6] गढ़ सीवां[7] हूं सिसहरी।
कहै कवि गंग तिहूं भुवन[8] उवन लागी,
तेरी तेग पातसाहि[9] तेज की दुपहरी।
नवल नवाब खानखाना आजुउहिं देस,
इंची ह्वै न उठति उदधि हूं की लहरी।
रावल रावल करि टेरत[10] रावल जाम,
आठौ जाम जागत[11] निजामसाह बहरी ।।४०५।।

पाठान्तर छं० ४०३- [1] खखल खखल (पुरोहित)।
छं० सं० ४०४- [2] प्रहार सांग सिपर लिलार (बटे०) [3] सिरदार सोर हूप हर (बटे०)।
छं० सं० ४०५- [4] बिज्ञनैर (बटे०) [5] देउ (बटे०) दीव (याज्ञिक) [6] सांव (याज्ञिक) [7] सीव (याज्ञिक) [8] भवन (पुरोहित)
[9] पातिसाही (बटे०) [10] जैमुनि जैमुनिकर जपत (याज्ञिक), जैमुनि जैमुनि किये जीवत (पुरोहित) [11] जपत (याज्ञिक)।

बड़पन, भलपन, स्वामिन, स्थान पन,
साहिन के धुर के धुरंधर कहाये हौ।
बैरी पै तवरि पार[1] जंग जुरे जेतीवार,
पति के पहार परमिति[2] में छपाये हौ।
कहै कवि गंग तुम बैरम के खानखाना,
खानखानी कहूँ केती कहां मांगी लाये हौ।
पूरन प्रताप परमितिन की पाटी पढ़े,
कैंयो पीढ़ी साहिवी की सीढ़ी चढ़ि आये हौ ॥४०६॥

कंस की न सींव चांपि सक्यो बलदेव विन,
देख्यो सुन्यो सूर कहूं कुंवर कन्हैया सो।
भारथ में पारथ परायो दल लेत फिरे
इन्द्र को गयंद जिन आन्यो गहि गैया सो।
कहै कवि गंग राम, लखन, रमायन[3] की,
इतो कियो लइ[4] हनुमंत की हितैया[5] सो।
कैयो लाख बैरी मारे बैरम के खानखाना,
फेरू लसकरू[6] पर बार कियो भैयो[7] सो ॥५०७॥

बाजत निसान वान गंग कै मैदान गंग,
तमकि तुरकमान[8] असिबरू यों गह्यो।
हनै जे वितंड बैरी बैरम के वरिवंड,
बीर रस उमंगी उमा को मुंड उमह्यो।
हाड़ मूद, मेद, मांस मेदनि महानी मानी[9],
महाप्रलै बीति महाभारत ह्वै निबह्यो।
धूरि गीव ताल बाल[10] खेलत विगानो मानो,
लोहू की भभक भैरो ऐरौ, पैरौ ह्वै रहयो ॥४०८॥

पाठान्तर छं० सं० ४०६- [1] परिवार पार (बटे०) [2] परमित (पुरोहित)।
छं० सं० ४०७- [3] लछमन रामायन (बटे०), लक्षमन रामायन (पुरोहित)
[4] ले पूरोहित), लैके (बटे०) [5] तिहैया (पुरोहित)
[6] कैऊ लसकर (बटे०) [7] अकलैया (बटे०)।
छं० सं० ४०८- [8] तुरकमान (पुरोहित) [9] मेदिनि सहान मानो (बटे०)
[10] धिरिग बैताल ताल (बटे०)।

हमरे तो प्राननाथ साथ हैं नवाब जू के,
दच्छिन के ओर छोर जीति छिति लीनी है।
बकसत सुनियत मोतीमाल, माते गज,
हयनि की हेलै दीनी निदाये न[1] दीनी है।
यहै सोघो पाइ सुख[2] सुख के गंवायों दिन,
रैनिन कंपति रतिपति रंग भीनी है।
चकई कै बैन सुनि व्याकुल ह्वै बूझै बाम,
तेरे हू पिया को खानिखानै[3] मया कीनी है ।।४०९।।

(छप्पय)-

ककुभ-कुंभि संकुलहि, गहरि हिमगिरि हिय फट्यो[4]।
दर दरेर कुव्वेर, वैरु जिमि मेरु पलट्यो[5]।
सरस कमल[6] संपुट्य,[7] सूर आथवति पइटयो[8]।
गिरि गगन्नि निय गंभ[9] कंठ कामिनिध उचिट्यो[10]।
भनि गंग अदव्विय दव्विय[11] दिय, दव्विय कर दव्विम गयो।
खानानखान वैरम सुअन, जिदिन[12] दखल दख्खिन[13]द यो ।।१४०।।

पाठान्तर छं० सं० ४०९- [1] त्रिदा पैन (वटे०) [2] दुख सुख (वटे०)
[3] खानखानै (वटे०)।

छं० सं० ४१०- [4] फस्यब (पुरोहित), फस्यौव (रहीम), फट्यो (वटे०)
[5] पलस्यव (पुरोहित), पलस्यौव (रहीम), पलट्यो (वटे०)
[6] सकल (रहीम) [7] संपुत्य (पुरोहित, रहीम)
[8] पइव्यव (पुरोहित), पइहयौव (रहीम), पहट्यो (वटे०) [9] गगम्मि तिय गम्म (पुरोहित, रहीम), गगन्न तियगन्न (वटे०)
[10] उच्त्यिव (पुरोहित),उचित्यो (रहीम), उचिट्यो (वटे०)
[11] अदिव्वय दव्य (पुरोहित) [12] ज दिन (पुरोहित) जा दिन (वटे०)
[13] दखिन (वटे०)।

जक्यव[1] जीव जंगलिय, चैन लद्धे न ग्रद्ध छन[2] ।
न गनि जात नागिनिय, नाग नायक उरिदगन[3] ।
इक्क सरनि सर बदनि[4], तीर तावरनि पत्ते[5] पर ।
हाइ हाइ हाहूँ धिहलि लग्गहि तिलंग नर ।[6]
खानानखान बैरम्म सुग्र[7], जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय ।
कल मलित सकल दक्खिन मुलक, पट्टन पट्टन पट्टकिय ।।४११।।

(१५) एलच बहादुर

जैसे मृगराजन के छौना गजरावन को,
छोटे छोटे हाथन करत अ्रणघाव है ।
तैसे लरिकाई ही मे येलच बहादुर जू,
जीती फौजै भारी सरदारी ही को चाव है ।
कहै कवि गंग कुछ दच्छिन ते जेर कीन्ही,
अ्रब कौन देश पर मूछौं देत ताव है ।
दादे तैं सरस बाप, बाप तैं सरस आप,
महाबली बैरम के बंस को सुभाव है ।।४१२।।

(१६) दराब खां

(कवित्त)-

कस्यप के तरनि[8], तरनि के करन जैसे,
उदधि के इन्दु जैसे भये यों जिजाना के ।

पाठान्तर छं० सं० ४११- [1] जक्यो (बटे०, पुरोहित) [2] बैन तद्वैन अ्रदच्छन (पुरोहित, रहीम) [3] अ्ररिंद गन (बटे०), उरिद्रग्गन (पुरोहित), उरिदृगन (रहीम) [4] सरनि सर बरनि (बटे०), बरनि सररवनि (पुरोहित) [5] तरवारिन पत (पुरोहित) [6] हार्द हार्द हा, हूं दि हुलिल गाहे (पुरोहित) [7] बैरम सुवन (पुरोहित)

छं० ४१३- [8] तरणि औ (पुरोहित)

दसरथ के राम औ स्याम के समर जैसे।
ईस के गनेस औ कमलपत्र आना के।
सिन्धु के ज्यों सुरतरु, पौन[1] के ज्यों हनुमान,
चंद[2] के ज्यों बुध, अनिहद्ध सिंह बाना के।
तैसहि[3] सपूत खान वैरम के खानाखाना।
वैसेही[4] दाराव खां[5] सपूत खानखाना के ॥४१३॥

दुसह विरह पीर, तीर सी लगै समीर,
ऐसो न भरोसो कीजै, काम कहा करैगो।
जोवन की जोति जाकी, जीति की जगति कला,
और कहा आइ परा बांधि कौन लरैगो।
मानिनी के पांय[6] परौ, फेरि मनुहारि करौ,
याके हंसि हेरे हियो आनंद सो भरैगो।
दूलह दराव खान मन दे मनैये मान,
मान कहा अंबर हूँ देखि तुम्हें डरैगो ॥४१४॥

(१७) शाहंशाह अकबर

(छप्पय)

गुंजर वै[7] गंभीर, नीर निझ्झर निझ्रियो[8]।
अति[9] अथाह दाउद्द साह[10] वुन्दन्न उवरियो।
घाम घुट्टि[11] ल्हदराम,[12] जाम जोहत हरि लीन्हो[13]।
हिन्दू तुरक तड़ाग,[14] सवै कन्दव बिन कीन्हो।[15]

पाठान्तर छं० ४१३ [1] के सुरतरु पवन (पुरोहित)
[2]. चंद्र (पुरोहित) [3] तैसेई (बटे०, पुरोहित) [4] वैसेइ (बटे०, पुरोहित) [5] तुराव खां (बटे०, पुरोहित)।

छं० ४१४- [6]. पाईं (बटे०)।

छं० ४१५- [7]. गुज्जर वै (वटे०), गुंजरेस (याज्ञिक) [8] निझझरनि झझरियो (पुरोहित) [9] अहि (याज्ञिक) [10] दाऊंद वुंद (याज्ञिक) [11] घूंट (याज्ञिक) [12] रघुराव (याज्ञिक) [13] जलधर (याज्ञिक) [14] हर लिन्निव (याज्ञिक) [15] तड़ाग सवै कर्दम विन कीन्हों (बटे०) तडाग सबै कंदव बिन कीन्हीं (पुरोहित) तलाव कोन कर्दम बस किन्निव (याज्ञिक)।

भनि गंग अकव्वर अक्क सम्म,[1] नृप नृपान इमि कर करै[2] ।
राना प्रताप रअना अरहिं,[3] छिन डुव्वै छिन उच्छरै ॥४१५॥

(सवैया)

नाउ[4] लिये घर ते निकस्यो, कवि गंग कहै सहजान[5] तिहारौ ॥
आइ कै देख्यो है कल्पतरु, अरु काम दुआ मनि चितति भारो ।
आज हमारी भइ परिपूरन आस सवै, कवहूं नहिं वारो ।
लोभ गयो सिगरो चित तें, अव ये भयो दारिद छेदन वारो ॥४१६॥

घनी मार मची रनभूमि रची, उमड़े दल साही अकव्वर के ।
अदले बदले भइ वारहिंवार परै तरवारिन के झर के ।
कवि गंग तहां जुग टूटि परै, फिरै रुंड भुसुंड[6] विना सिर के ।
सुमनो रंगेरेज के रावर माहिं महावर के मथना[7] टर के ॥४१७॥

अव तो[8] चढ़ते वढ़ते दल के, गढ़ कैसे रहै सुविचारिय जू ।
हलकान के हाल हलावत ही, हिर्‌यो मेरु सु भूवर भारिये जू ।
मनि गंग अकव्वर कौन पै कोप्यो, सुज्वाल प्रतापहिं जारिये जू ।
धरनी धसकै, भरु[9] लै न सकै, टुक धीरे सों[10] ही पगु धारिये
जू ॥४१८॥

साह अकव्वर तो चढ़ते रन, धक्कक डक्कहि आवत है ।
कवि गंग विभीपन[11] जंपति यों कत को तिहुं लोक सिहावत है ।
छोनी रहे छुटि[12] न्याइ कै तादिन,[13] जादिन तू चढ़ि धावत है ।
लफि सीस कमट्ठ की पीठ लगै,[14] जल वाजै सो सेस वजावत है ॥४१९॥

पाठान्तर छं० ४१५- [1]. भनि (याज्ञिक) [2] सव वस करिय (याज्ञिक)
[3]. रयणांक मझ (याज्ञिक) [4] डुवे (वटे०, याज्ञिक) ।
छं० ४१६- [5]. नांउ (वटे०) [6] तें (वटे०) [7] सहजानि (वटे०)
छं० ४१७- [8]. भिसुंड (पुरोहित) [9] मटका (वटे०) । प्रथम चरण के गण-दोष का निवारण कर दिया गया है (सं०)
छं० ४१८- [10]. तो (वटे०, पुरोहित)- यहां पर दो वर्ण कम हैं जिन्हें अव जोड़ कर पूरा करने का प्रयत्न किया गया है। (सं०) [11] भर (वटे०) [12] से (पुरोहित) ।
छं० ४१९- [13]. विभूपन (वटे०), विभीपण (पुरोहित) [14] झुकि (वटे०) छिन (वटे०) ।

(दोहा)

तान हद्द मियां[1] तानसेन, बुद्धिहद्द बलवीर ।
साह को साह अकब्बरा, टोडरमल बजीर ॥४२०॥

(कवित्त)

सिंह, बाघ, देव दानी, दैयत दुहाई मानै,
थापै थिर थानै रतनायर कै रैत हैं ।
गंग कहैं जहां, लगि दिनकर दीने कर,
तहाऊं के जोरिकर जोरिकर देत हैं ।
लीवे तें न वची कहूं विलाइति वसुधा में,
हाथ आये गाढ़े गढ़ गिरिन समेत हैं ।
सातौ दीप वस किये अकबर साहि अब,
सपनेहूं आपनोई[2] लिए देए लेत हैं ॥४२१॥

(१८) सलीम

हाथी चाहै सालवन, सांप चाहै माथे मनि,
पानी को प्रवाह जैसे चाहै बेली[3] पान की ।
संजोगिनी[4] रैनि[5] चाहै, जोगी जैसे जोग चाहै,
आतुर नायक जैसे चाहै मिति[6] मान की ।
चंदहिं चकोर चाहै, पिक घनघोर[7] चाहै,
चकईहू चकवा ज्यों[8] चाहै भेट भान की ।
हंस चाहै मानसर, मोर चाहै मेघझर,
गंग चाहै नजर सलेम सुलतान की ॥४२२॥

पाठान्तर छं० ४२०- [1] क्यां (वटे०) ।
छं० ४२१- [2] आपनेई (वटे०) ।
छं० ४२२- [3] वेलि (वटे०) [4] संजोगिनि (वटे०) [5] रैन (पुरोहित)
[6] मित (पुरोहित) [7] चातक ज्यों स्वांति (वटे०)
[8] चकई चकवा जैसे (वटे०, पुरोहित) ।

चढ़त तुम्हारे साहि सलेम साहानि साहि,
दिव्य रूप देह छांड़ि देवता भगत हैं।
वैरी बैठी बिलनि बिराने देस उग्ग दुग्ग,
अगम सुवाय[1] होत अदग दगत हैं।
कहै कवि गंग सेस कच्छप कसमसाइ,
पातरी छरी से गोड़ कौल के डगत हैं।
चाले बिधि बिहद, हिमालै हालै बार बार,
दरके दरेर नगनेर से लगत हैं ॥४२३॥

(छप्पय)

दलहि चलत हलहलत, भूमि जल थल[2] जिमि चलदल।
पल पल[3] खलखल भलत, बिकल बालाकर कुल कल[4] ॥
जिव पट्टहिं[5] ध्वनि युद्ध, धुंधु धुद्धुव[6] धुद्धुव हुव।
अरर अरर फटि दरकि, गिरत धसमसति धुकन[7] धुव।
भनि गंग प्रबल गिरि[8] चलत दल, जहांगीर[9] तुम भार तल।
फुं फुं फरिंद फुन[10] फुंकरत, सहस गाल उगिलत[11] गरल ॥४२४॥

(१६)- दानियाल

(दोहा)

भूपर भूप हुते जिते, ते सब फिर्यो बखानि[12]।
राना हय दीन्हें तिन्हें, दाना देइ सुंडानि[13] ॥४२५॥

पाठान्तर छं० ४२३- १. सुगम (वटे०)।
छं० ४२४- २. थल थल (वटे०, पुरोहित) ३ पल पल (वटे०, पुरोहित)।
४. कुल जल (वटे०) ५ जव पटह (वटे०) ६ धुंध धुद्धव धुद्धव (वटे०)
७. धुकनि (वटे०) ८ मंहि (वटे०, पुरोहित)
९. जहांगीर साह (वटे०, पुरोहित)- साह शब्द के कारण छंद में तीन मात्राएं अधिक हो जाती हैं। छंद-शुद्धि की दृष्टि में रख कर 'साह' शब्द हटा दिया गया है (स०)।
छं० ४२५- १२. बखान (वटे०) १३ सुंडानि (वटे०)।

(सवैया)

आलम दिल्लि के बालम[1] दानि, चलै दर कूच दुनी दररी सी।
गंग छिपी[2] रवि की छबिछार, पहार भये[3] नकचूर चरी सी।
सोचति सोवत सेज सची[4] अमरावति ते जनि[5] जाति जरी सी।
टूटि गये छतना से फना सब, सेस रह्यो छटि[6] सेस छरीसी ॥४२६॥

दान दिलीपति के फुरमावत आवत भूप बंवे सुतरी हैं।
जे मिहरी दिहरी नहिं नांघति ते गहरी नदिया उतरी है॥
गंग किसोरनि कोरनि[7] छांड़ि सुनी जिनकी बतियां तुतरी हैं।
नैननि नीर पयोधर छीन[8] चलींमनु[9] पाहन की पुतरी हैं॥४२७॥

प्राची प्रतीची अवाची विलोकि, दसो दिसि होत ही[10] कूंच कुचैनी।
गंग कहै उमड़े घन ज्यों हय हत्थिय पैदल[11] सारथ सैनी।
दूलह दान चढ़े रन को, रिपु भूमि इकत्र भई[12] रंग रैनी।
सत्रुन के गढ़ टूटि भये फन फाटि गये हैं[13] फनिंद के फैनी ॥४२८॥

पाठान्तर छं० ४२६- १. गढ़ गंजन दिल्लि के दूलह (वटे०)- इसमें गढ़ शब्द का प्रयोग गण व्यवस्था को विगाड़ देता है जिसे सुधारने के लिए हमने अपने भी पुराने पाठ को बदला है। हमारा पुराना पाठ था - कुलिआलम दिल्ली के बालम (छं० १२१)

२. छपी (सभा) ३ किये (वटे०) ४ सेजन सोवत सोच सचीर (वटे०)। ५ तेज में (वटे०)

६. गये रहि (वटे०)।

छं० ४२७- ७. किशोर की (पुरोहित) ८ छीर (वटे०, पुरोहित)

९. ढरि (पुरोहित)।

छं० ४२८- १०. प्राची अवाची प्रतीची उदीची विलोकि चहूं दिशि (पुरोहित)

११. सथ्थिय (पुरोहित) १२ रक्त भई (वटे, पुरोहित)

१३. गई गड़ि डाढ़ दुढारे की टूटि भये फनि फाटि (पुरोहित), सन के गढ़ टूटि गये फन फाटि गये हैं (वटे०)।

साहि अकव्बर के प्रवली वली दानि कियो धुर[1]पुव्व पयानो।
गंग चले वनि वारनवृन्द दरी उदरै दरिया दहलानो[2] ॥
आगि को सेंक दे, पानी को पोत वनो वर वंव जग्यो[3] अकुलानो।
खाइ प्रताप[4] अंचै अरि पानिप, धौंस[5] धुकार ढकारत[6] मानो ॥४२६॥

(कवित्त)-

महामद मोकल मतंग मतवारे अलि,
झूमत कपोल मद झरना झरत हैं।
पकरे न जात क्योंहू जकरे जंजीरन सों,
सकरे समर काम जिनतें सरत हैं।
कहै कवि गंग गजराज दानसाहि[7] जू के,
धावत धरनि कोऊ धीर न धरत हैं।
तोरै गढ़ पलका सिंगार ऐसे निजदल,[8]
हलका छुटत सोर[9] अलका परत हैं ॥४३०॥

दौरे तेरे[10] दानियार[11] दलहिं न वार पार,
पखरे पवंग वर वंधक जे चांरि[12] के

पाठान्तर छं० ४२६- [1]. दान वली जु अकव्वर साह को, तेंउ कियो धुरि (पुरोहित)
[2]. गंग चलैं रन वाजि दरी, उमड़ी उदरी दरियाउ मथानो (पुरोहित)
[3]. पावक सैके के पानी को पाचे किये जब कुंड लयो, (पुरोहित), आगि की सेंक दै पानी को पोच, वजोव्वर वंव जागयो (वटे०)
[4]. खाइ अताप (पुरोहित) [5] धौंसा (पुरोहित)
[6]. ढकारंत (पुरोहित)।

छं० ४३०- [7]. दान शाहि (पुरोहित) [8] पलका तोरै गढ़ निज दल सिंगार ऐसे (पुरोहित, तोरै गढ़ पलका सिंगार निज दल [9] ऐसे (वटे०)।

छं० ४३१- [10]. साहि (पुरोहित) [11] पाल (पुरोहित) [12] पखरैं थ बंग वरबंध जे वयार (पुरोहित), पक्खर प्रबल दल विधया ज्यों बयार (पुरोहित टि०, वटे०)

हिमगिरि हेम गिरि गिरत[1] गिरीस गिरि,
और[2] गिरि गिरत गिराय गजभारि[3] के।
करवाकी कहां गंग तरवा न तीते होहिं,[4]
सरवान बूडे[5] परवाह नदी नारि[6] के।
टूटी बीची बीच बीच[7] बलल बलल करै[8]।
बेला छुटें[9] बारिधि बलूला उठें[10] वारिके ॥४३१॥

अकबर साहि जू के महाबली दानसाहि,
काह पर तेंग बांधी तेज भौंहै तक्कवै।
सिंघल के दीप कहूँ दीप न लगतु[11] गंग,
दहै रिपु घर ही प्रताप ही के अक्कवै।
सोने सो सदन छांडि, लौंने से बदन गोरी,
रावन की मंदोदरी वन वन बक्कवै।
दक्खिन की ओर तेरी[12] चादर की चाह सुनि,
चाहि भाजो चांद वीवी, चौंकि भाजै
चक्कवै ॥४३२॥

अकबर साहि[13] जू के महाबली दान साहि,
पूरब के पच्छिम पयाने की[14] जियतु है।

पाठान्तर छं० ४३१- [1] गिरस (पुरोहित), गिरते (पुरोहित टि०) [2] ओरो (पुरोहित) [3] धार (पुरोहित, वटे०) [4] तरवान तीते होत करवाकि कहा गंग (पुरोहित), तरवान ती तौ भयौ करवाकि कहा गंग (पुरोहित टि०) [5] पूरे (पुरोहित) पूजत (पुरोहित टि०) [6] चार (पुरोहित) [7] बीची छूटि बीच बीच (पुरोहित), टूटि बीची बीच गये (पुरोहित टि०) [8] बोलि (पुरोहित), बोलै (पुरोहित टि०) [9] छूटे (पुरोहित), फूटे (पुरोहित टि०) [10] बबूला उठै (पुरोहित), बलूकामचै (पुरोहित टि०)

छं० ४३२- [11]. लगत (वटे०) [12] तेरे (वटे०)।

छं० ४३३- [13] शाह (पुरोहित) [14] को प्रथम प्रमानो (पुरोहित), के पच्छिम पयान (वटे०)

कहै कवि गंग दमामे की दीह धाक[1] सुनि,
अरिन[2] केउर मानो आरा दीजियतु है ।।
घोरा हाथी आरावों हूं भार भू पताल पटै[3],
पन्नग कुवल छितिधर छीजिंयतु[4] हैं ।
एते मान गरद में समद[5] समाय गयो,
पलगू को तोप[6] ज्यों खरोह[7] लीजियतु हैं ।।४३३।।

अलकापुरी को पति लच्छ जच्छ जाके,
हजार[8] हुकुम नवनिधि जाके घर हैं ।
अजर अमर सुर तैंतिस हूं[9] कोटि जाके,
हाथ जोरि ठाढ़े ऐसो इंद्रलोक पर हैं ।
कोटि कोटि जमदूत विकराल रूप जाके,
हवकारे हेरे जासों वचो कौन नर हैं ।
कहै कवि गंग तू चकत्ता के तखत, तेरो,
साह पै हुकुम लोकपाल वरावर हैं ।।३३४।।

कहै कवि गंग सू दानसाहि फौजें फरहरै[10] ।
थरहरै दिग्गभूप थरहर थारी सी ।
धुधरी[11] धरनि निधि संधि ओक[12] है भरनि[13]

पाठान्तर छं० ४३२- [1] तेरे वाजत नगारे (पुरोहित) दमामेनि की दरेर (कांक०) [2] वैरिन (पुरोहित) ।

छं० ४३३- [3]. हाथी घोरे आरावे के भार वैठी भो पताल (पुरोहित), घोरा हाथी अरव के भार तें पतार जात (कांक०) । [4] पन्नग को वल छित घर छीजियत (वटे०), पन्नग प्रवल नितधर छीजियत (पुरोहित), प्रलय भंनिद भार धरा छीजियत (कांक) [5] सिमटि (पुरोहित) [6] तोय (पुरोहित, वटे०) [7] करोय (पुरोहित, कांक०), खरोय (वटे०)

छं० ४३४- [8]. हाजिर (वटे०) [9] तैंतिस हूं (वटे०) ।

छं० ४३५- [10]. फरहर (वटे०, पुरोहित) [11] धुनधुरी (पुरोहित) [12]. ओरु (पुरोहित) [13] भरनि (वटे०, पुरोहित)

उठी घुंघुरति[1] दिसि दई है विचारी[2] सी।
कलमल्यो कमठ औ दलमली[3] दतपति,
चलै दिगपाल पेलि पीयुष[4] पनारी सी।
सटपट सेष के कटक में फटत फन,
मनिन की चट उचटति चिनगारी सी ॥४३५॥

दरीभ्रित दरि[5] गये, दरिया उतरि[6] गये।
दौर दौरे दानसाहि जू के दरे दरखत[7] है
कहै कवि गंग हय[8] हसींत प्रचंड रुद्र,
उद्धत संदेसे देखे[9] रोग हरखत[10] है।
पौढ़े हुते[11] कोरी कोरां छोड़े पिय जोरी चोरी[12],
गोरिन के नैना घोर धार बरखत[13] है।
गरभ के गिरि गये, गोदी के[14] गिराय दये,
पलना के परे ते पहार परखत[15] है ॥४३६॥

अकबर साहि जू को सकवंधी दानसाहि,
आये सुनि पारावार पार के परात हैं।
कहै कवि गंग अनगनित गनीम गढ़,
गढ़ के निगूढ़ गिरि कंदरनि जात हैं।

पाठान्तर छं० ४३५. [1] धूंघरि (पुरोहित) [2] किंवारी (वटे०, पुरोहित)
[3] दलमल्यो (बटे०) ३

छं० ४३६- [5] दलपति दूरि (बटे०), दलपति दरि (पुरोहित)
[6] उछरि (बटे०), उसरि (पुरोहित)
[7] दरषत (बटे०, पुरोहित) [8] अंग (कांक०)
[9] बाद रस उदवस देखे देस (कांक०), दुरदमद उदवस देस देसि (पुरोहित) [10] हरषत (बटे०, पुरोहित)
[11] पौढ़ी हुती (बटे०), परीहुती (पुरोहित) [12] चोरी चोरा (बटे०), चोरी चोरी (पुरोहित) [13] बरषत (बटे०, पुरोहित) [14] गोद के (बटे०), गोद को (पुरोहित) [15] परसत (बटे०, पुरोहित)।

जेठ के निदाघ, माघ मास के तुषार सहैं,
सांप सिंघ वाघ मिलि वासर बिहात हैं।
रिपुन को[1] रनवास वसो लै लै[2] वन वास,
सांसनि जरत वन आंसुनि बुझात हैं ॥४३७॥

छूटत कमान अररान लग्यो असमान,
जान लागे अवसान कहौ क्यों न लागहू।
कहै कवि गंग चढ़्यो चक्कवे चकत्तादानि,
जुरे कौन समर सम्हारौ क्यों न पागहू।
लालै लालै ढालै झुकीं, निकट[3] नगारे बाजैं,
जगत जगारे जांग नाह क्यों न जागहूँ।
देखे मतवारे गजराज न जंवारे आवै,
दैया[4] के संवारे हो सवारे[5] क्यों न भागहू ॥४३८॥

निरधि उमड़ि छीर, छीरथि उमड़ि नीर,
नीर छीर दोऊ एकमेक[6] ह्वै मिलत हैं।
कहै कवि गंग पृथु पुरुरवा प्रियाव्रत,
जनक जजात को प्रताह पिनेलत हैं।
अकबर साहि[7] जू के महावली दानसाहि[8],
रावरे शिकार[9] ये तो दल सिकलत[10] हैं।
मेरू के हलत, महि हलत, महीम[11] हालै,
महानाग हालाहल झल उगिलत हैं ॥४३९॥

पाठान्तर छं० ४३७- [1] की (वटे०, पुरोहित) [2] लै लै बसी (पुरोहित), वसी लै लै (बटे०)।

छं० ४३८- [3] निपट (बटे०), पूजत (पुरोहित टि०)
[4] दई (वटे०) [5] संवारे (पुरोहित)।

छं० ४३९- [6] ऐकमेक (पुरोहित) [7] और (पुरोहित) [8] शाह (पुरोहित)
[9] शिकार (पुरोहित) [10] सिकिलत (पुरोहित)
[11] महीध्र (बटे०)।

उमड़ि अमित दल हय गय पैदलहु[१] .
भूधर विदरि दरी भई धारा[२] धरी सी
कहै कवि गंग महागढ़ बढ़ अढ़ कीने,
मीडि डारे चटपट चटि[३] थर चरी सी।
मेंचक[४] भो दिसि दिसि पेचक मुदित मन,
मेचक भेचक[५] भरपूर निसि परी सी।
कहा कहौं बार बार दौरै साहि दानियार,
बूड़ि मति जाह जिमी घरियार घरी सी ॥४४०॥

दानसाहि जू के[६] वैर वैरिन की[७] वर नारि,
भजि भजि शृंग चढ़ी[८] ऐती ऊंची[९] डांग के।
कहै कवि गंग तहां हाथनि हथेलि हंस,
तोरि लेत तामरस गगन की गांग के।
कबहूंक चंद की किरनि आइ छाइ रहै,
जीमे धोखो लाइ किधौं अंसुक है आंग के।
कबहूं तरनि आनि कान को तर्यौना होत,
कबहूंक तरैयां आनि मोती होत मांग के ॥४४१॥

(२०) मनसबदार

रगमगे मखमल जगमगे जमी दोज,
और सब ज़े वे देस सूप सकलात है।
रेसमी रखत हलवेस की सुदेस किये,
देखि देस देस के नरेस ललचात है।

पाठान्तर छं० ४४०- [१]. पयदल (वटे०), पैदल (पुरोहित)
[२]. धरा (वटे०) [३] चढ़ि (वटे०)
[४]. पेचक (वटे०) [५] मेंचक (वटे०)।
छं० ४४१- [६]. तेरे (पुरोहित, टि०) [७] बैयरनि (पुरोहित, टि०)
[८]. धाय चढ़ी शैल शृंग (पुरोहित, टि०)
[९]. एते ऊंचे (वटे०), (पुरोहित, टि०)।

हयन केटहु गज घटंन घुमंड घन,
घूंघुरू[1] घनक घोर घंटा घहनात है।
ऊलर अमारी गंग, भारी बंब धौ धौ हौंत,
धारु के भिखारी के हजारी कोऊ जात है ॥४४२॥

(२१) गंग बिदाई

(दोहा)-

कवहू[2] न मंडुआ[3] रन[4] चढ़े, कवहुं[5] न वाजी बंब।
सकल सभाहि प्रनाम करि[6] विदा होत कवि गंग ॥४४३॥

पाठान्तर छं० ४४२- [1]. घुंघुरू (वटे०)।
छं० ४४३- [2]. कभी (पुरोहित) [3] गांडू (पुरोहित) [4] रण (पुरोहित), [5] कभी (पुरोहित) [6] सभा को राम राम (पुरोहित)।

चंदछंद-वर्णन की महिमा

॥ श्रीगणेसाय नमः । अथ चंद छंद वरनन की महीमां लिषते: ॥ सर्व श्री श्री १०८ श्री श्री पातसाहीजि श्रीदलीपत जी अकवर साहाजी आमकाश में तखत ऊपर विराजमांन हो रयेहः और आंमकास भरने लगाहे। जिसमें तमांम ऊमराव आय आय कुंणसः बजाय २ जूहार करके अपनी २ वैठक पर जाय्या करे अपनी २ मिशल से जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रशे में रेशम की लूंमें। पकड़ २ के षडे ता विनमे रहे मीर अमीरजादे। नषलेऊ हैदरावाद कोलारश वानारशी : प्रयागराज व्रंह्मांव्रतक धोलपुर मूंथरा रांमपुर वांसवरेलि : भोपाल गौडदेश सिंद हैदराबाद :। इतने तो षांनजादे : आय बैठे है और उमराव सीरदा आये जोदपुर जैपुर उंमरकोट जेसलमेर उदेपूर कछ भूज शिरोही हलवद गिरनार भावनगढ़ : दषनी करनाटक मांडव : सालेर : धारनग्र विकानेर मेंहशर दशोर मेड़ता ऊजिन बंगाला रामपुरा टोडा बुंदिला परिसोंपुर : काशि जामनग्र राजगढ़ रीमां शदांमांपुरी : ईतने सिरदार : उदैपुर : मीत्रि टोडरमल साहा सचीव वीरवल ब्रांमन सीरदार मीर अमींर सेष सैयद मुगल पठान राज रजवाडे शतरखांन वहतर ऊंराव राजा राव जग्गिरदार नवाव मीरजे आय २ कूंणश वजाय २ के जुहार करके अपनी बैठक पर बैठ गये ईतनें में वावा गंग भाट जी आय कर आसोस बही ॥

(कवित्त) -

तुंही हूर तुहीं नूर : तूंही पीरांनयेगुंमर ।
तूहि गाशगनदरांन तूंहीं अवनी और अंमर ।
तुंही ईद : नरिद : तूही धरनि बीस्तारंन ॥
तूही आप तू ही तेज तूही गिरवरनषधारंन ॥
शात दीप नव षंड धर गंग भाट क्रिति कही ॥
चिरंजिव ववर कुले । शो अतिफनांम अकवर तूहि : १

(वारता) -

पातशा ऊठ शलांम ले वांहा पशाव दीये अपनि बैठक वेट गये ईतने में वावा मैन भाटजि आये आशिश कही ॥

(कवित्त) -

।।नहीं ईद न्हीं चंद नही कोई मंडल धारे ।
न्हीं शेस महेश : न्हीं सूर अशूर सँवारे :
नहीं पीर पीरांन न्ही कुंतब शे तारे
नहीं नाग नरलोक न्हीं शागर विसतारे
चवदेतूपक नव षंडनां कथवदनां अे सें सच्यो
बुलबुल कमाल बीचेंई अकवर नूंरवा दीन रच्यो २

(वारता) -

पातशा ऊठ शलाम ले : वाहां पसाव दीया अपनी बैठक पर बैठ गया : आरवि मानवर आसामी नजरानां करने व्हाले नजराना कर खड़े हैं के ही तरे कें नाच भूजर हो रये है गायन खडा रागनी शुणा रहे हैं : अनेक प्रकार के नाटिक हो रहा है जीस पीछे से के ही : कितावुं का किशा वंच रह हैं ल्लषूं रूपे की ईनामु मिल रही है वहोत आनंद हो रहा हैं ईतने में राजाश्री वगेल ने अरज करीके हजरत शलामत सव कितावुं का कीसा अच्छा है परन्तूं येक कीसा प्रथीराजाराशा का वहोत अछा है और कीसा तो और और देश का है प्रथीराजरासा का कीसा तो दली का है : दली का कीसा तो दलेशुर शुंननां चाहिये : वादस्याहा होकम किया कें य कीसा प्रथीराजरासा का कीशा कूं यादहै : ईस कीसा की तो मूंजकुं वेहरंम खां जी ने अेक दीन अगाड़ी वी काहा था लेकिन मैंने उश दीन उश वात पै ध्यांन न्हीं रखा था शच कहों ये कीस कुं याद हैं : आज येही शुनेगे : । ईतने में जेपुर के राजा श्री भगुतीश जी के पुत्र रांजा श्री मानसींह जी ने अरज करी के शाहा शलामत : गरिवपरवर : अे कींशा वावा गंग जी कूं याद है और ईशकी पुस्तक वी ईनके घरांने में ईनके सनवंधीयों शे लीखा आया है : सो ईनके पाश हैं ईतनी सून करके पांतशाहा जी श्री अकवर साहा जी वावा गंग भाट जी कुं फुरमाया के सूंनते हो वावा गंग जी आज हमकुंदली का चुंहान राजा प्रथीराज का : प्रथीराज रासा सूंनावों जद वावा गंग भाट जी ने अरज करी के दलीपत दलेशुर : परमेंसुर साहा अकवर नरेंशुर : भूंमिपति राव राजा क ईस्वर परवरदिगर : मकामदार चोंविश पीर हमेंसां पसवाई षवरदार : षुदाने हूकम कींया हैं सो में अरज करता हूं प्रथीराज रासा वडि भारी माहाकाव्य है सो ईश काव्य का वड़ा ऊदव रखनां पड़ता है। जद ये

रास बंचता हैं जिश ठीकाने आपका कोई कीसे व्हाला वैठा होवे तो : आपकुं दूशरी ओल्ल में वेठनां चाहिये और आमें शामे नहीं वैठने पावे तीसरा कोई हतीयार लेके आमकाश में नहीं आवे चोथा ईस काव्य कुं आदशे ले करके अंत तलक संपूरन शुने जव ईशका मजा आवे इस काव्य का अेक लाख ग्रंथ हैं सो येक दीन के सुंनने शे समूंद्र रुपी रासा जीसकी तरंगू का पार नही पावे ईतनी सुन के पातशाहा जी श्री अकवर शाहा जी ने होकम किया के अपने काहां जानां है वरश दोय वरश तक संपूर्ण होवे जीतनें वोंचे जावो : इसमें नवरस केंतें हैं सों वांच सूंनावो हम च्चित देके सुनेंगे और शव हिंदु मुशलमांन ऊंमराऊ कुं फुरमाया सो अपने अपने हतीयार डोड़ी में पोंचाय देवो : चाकु वि पास म नहीं रहनें पावे : आज ही से रासा वंचे जीतने दीनु तक वंदोवस्त कर दीया : अे होकम सून के : मीर अमींरूं नें बैंशा ही कीया- जव बाबा गंग भाट जी ने प्रथीराज रासा की पुस्तक मंगवाया सो अपनां मुरजि वीन जा करके अपने मकांन सें पुस्तक ले के आमकास में ग्रन्थ आया पातशाह ऊठ शलांम कीया सव शवा के मीर शरदारूं ने पशवाई दीया : पुस्तक सोंनन के वाजोट ऊपर स्तापन कीया : गणपती सूरसति कुँ नमसकार करके पुस्तक कूं डंडउत कीया : बावा चंद जी वर दिहा का नांम लेके : वीन कुं वी सीष्टांग प्रनाम कीया : फिर वाचना ऊचार कीया संवत् १६२६ का बैसाक वीद तेरश रविवार शे वांचने का आरंभ कीया शो अेक तो वावा गंग : आगम की वात जांनने व्हला दुशरा श्री अकवर साहा पातसाहा के आगे चंद के छंद धर पड़ ताला तीशरा आंमकास चुंने के लदाव का : जीसमें अवाज अच्छी मालंम देवे चौथा केहि पुरांण की तरंगन से भरा हूवा : शमुंद्र रुपि ग्रन्थ है ।

(दोहा) -

करिया धरियो चंद कवि : भरियो प्रान तरंग ।।
अकवर शाहा आदर कियो वाच विलंद कवि गंग ।।३।।

(वारता) -

प्रथीराज राशा : वावा चंद जि कवि का वनाया फेर बावा गंग भाट जी ने आदपर्व से उठाया शो दोय पेरशें दोय पहर तक दीन अस्त हूवे उपरांत दोय घड़ी रात्री जोवै ज्याहां तलक राशा बंचवो करे सो आमकाश में चंद

छद के आंनंद का रंग बरसवु करे श्री शाहा अकबर जी सब ःीरदार सूंनवु करे ।

(कवित्त) -

आदपरेव अवतार कथ दली सु संनायव ॥
लोहानां आजांन : कंन्ह पटि जुध भायव ॥
अषेठक वरदांन राय नाहर मेवातीव : ॥
षांन हूशन तीलराय चुक सूरितांन सू वातीव ॥
रेष चीत्र भौलाशलप ईछनी व्याही अति मूंगलकथ ॥
पुंडीरि दाहीनी व्याववरशो भौमि सूपन सूं तषत पत ॥४॥

अनगपाल दलीदांन । पिरमिरांन जु जायव ॥
माधौ भाट की कथ । परन पदमावती लायव ॥
जंग मोहौवै आल : । प्रथा विवाव सू कीनो ॥
कथा होली का समय । दीप द्वाली सूंनी लीनो ॥
षटुवन आषेट । शशिव्रत कथा ॥ देव गिरी चमू हीली ।
रेवातंट पतशाहां प्रही ॥ कुं अनंगपाल आगंम ढिली : ॥५॥

नगर नदी लरंत पत्र करना वटि वंचव ॥
मोर व्यूह पीपांन दोर संमरसी सचव: ॥
ईंद्रावती ब्रीवाव ग्रहन गोरी सू सूंनायो ॥
बीजय कांगुरा करन व्यावहं शावती भायो ॥
पाहाडरा पतसा ग्रही कवन कथा बरचत दीयो ।
भोराशु भीम वीजय सू कर छोग पजुँ नां जुजीयो : ॥६॥

चात्त संमागम सूंनत चंद द्वारापुरि परशन ॥
षटुवन में केमास : राई भीमंग धरशन ॥
पुरव शंजोगीता वरन : व्रिनय मंगल फिरि वाको ॥
सूक वरनन अती प्रेम वालूका वंधन साको ॥
पंग जंग. बधूश सूंनी नेम लीयो सजोगीता ॥
हांसी प्रथम दुतिय सू जुध सो सूंनत साहा सव जोगिता ॥७॥

पुजुंन मोहावा नांभ साही पंजुंन न गहंनं ॥
सांमत पंग से जुध जुध जनोज दहनं ॥

नेचंद रावर संभर कमर कशके षग सांवन : ।।
चांवड वेरि भरन : पुंन केमाश पांवन ।।
दुर्गा केदार दलीवरन जंगम सोफी अगयमन ।।
अकवर शु साहा सूंनि श्रवन देगो चंद छंद कवि गंग भन ।।८।।

षटरित वरनि कनौज सुष चरित्रा शुवडायव ।।
आखेटक चप श्राप विरकथ सरस डढांयव : ।।
तिन कवितई कव्याव साय संभरसी आयव ।।
— — — — — ?
पर मूप रावर शंभर वडे जूववांन आहावय ।।
राजा श्रीरयन जुध वाच चंद जंग अंग भंग नृप गयो ।
अकबर सूं श्रवन चित ऐक करि शो सूं नित साहा अचिरज रयोः ।।९।।

(वारता) -

ईत्तनि सूंन करके : पातशाहाजि श्री यकवर शाहा जी होंकम फरमांवत मांवते भये ईश अचीरज का ऊतर कहते भये ।।

(कवित्त) -

सुनिहो अच कवि रज : साहा ईम कहत अकवर ।।
जुठ वचन नही अपुं भषुं मे कि सम सुव वर ।।
चंद कवि प्रथीराज दोनूं संग प्रान गुमायव : ।।
विने साहा के संगय : रयनसी जूव करायव ।
बांनं वैध वतक चंद कवि छंद वचन वाको धर्यो ।
रयन जुध माहा अधिक कथ शोक होसं चकिन ककिकर्यो ।।१०।।

कही अकवर पतशाहा राहा दोनूं के नायक ।।
अंवकास शव सूंनत पांन रांजान सू वायक ।।
रयन जंग के वचन रचनकवि कवन बनायव ।।
अर्थ वोली धूंन अेक संचे सव ठार रहायव ।।
अरदास करी तव मांन नृप रयन बयन छंद चंद कर्यो ।।
मन सोध वोध शुरितांन करि सो शोच सोच संशय भर्यो ।।११।।

वारता

प्रथीराज राशा के शीतर दो वोहोत रशमीये बांन बेधत कहू येहैं तीहोतर मां प्रभाव रेनसि जुध । वंचने लगा और बाबा चंद भाट जी के वचन

छंदु म. ग्राने लगे। जब पातशाहा जीं श्री ग्रकवर साहा जी होकम कीया के सूंनेते हो ग्रामकाश के मीर ग्रमीर ईश बात का मुंजकुं वहोत ग्रचिरज हुवा है : केराजा प्रथीराज चौंहान कुं तो गड़ गंजनी में बडे हजरत साहांवदीन गौरी पकड़ करके ले गये थे हतकडी वेडी पु लोषमाल दीये थे ग्रौर कैद कर दीया था ग्रौर विनूं की ग्रांषु में शलाक फेर दीये थे ग्रौर पिछाड़ी से बावाचंद भाटजी फकीरी लेकर के गढजनी में गये थे : हजरत साहब दीन पे प्रथीराज से बान का चुक करके पातसाहा कुं गिराया ग्रौर वे दोनूं जने ग्रपने ग्रपनें हात में ग्रपने २ कंठु पे छुरि फेर २ के दोनूंजने मर गये थे ग्रौर रेनसी कुंवर नें तो छ महिनूं पाछै उनू के मरे वाद लडाई करि है शो वीने सोहा हजरत में रेनसी राजा शमेत सब ऊमराव शांमंतू के पुत्रन कुंतवा कर दीय थे शो रेनशि जुंध तो कोई कवि नें पिछाड़ी से बनाया है ग्रौर नाम वावा चंद भाट जि का : रष दिया हैं जीन से नांम विनूं का ग्राता हैं क्युं के वड़ी भारी काव्य के संग ग्रे वी चंद के वेटे पोते सें ग्रथवा कोई ईन की जात व्हाले ने वनाय के रष दिया है ग्रे होकंम सव सभा ने सूंनां : ईतने में ग्रांमेर के राजा की श्री मांनशीहजी कछवाये नें ग्ररज करि के हजरत पातशाह शलांमत : कव जीज्यांन चांन चौवीस पिरूं की करामात दलेसूर परमेसर : हमारे पुदा हा ग्ररज ग्रेशी हैं के रेनशि जुध ग्रौर काई कवि का बनाया न्हीं हैं ग्रे तो ग्रंथ वाव चंद बरदाई जी का बनाया हूवा हैं ईतना सुंन के फेर पातसाहा होकम कीया ।।

(कवित्त) -

सून हो मान माहाराज कुरम पति वानिहूं मारिव : ।।
वांन बेध कलि वंचिव : सवि दो इष्ट तूं मारिव ।।
मरे चंद प्रथीराज : गंग कवि चाचा सूंनायव ।।
ग्रपन हात घली घात मरनशंमे धूंनस धुंनायव ।।
हम वाचकहि सूसचीय सूंन : भाट में न गुन छांनही : ।।
वांन वेध फिर वांचि गंग : सो मांन मरद जद मांनही ।।१२।।

(वारता) -

पतसाहाजि श्री ग्रकवर साहाजी ग्रांमेर के राजा श्रीमांनसिंह जी कुंकह रहे हैं सब शवा के सूंन रहे हैं वाद स्याहाजि नें होकम किया के हमने कही सो तुमने नहों सूनी चंद कवि तो बांन वेध के शमै यामें कल भरा हूग्रा वावा गंग भाटजि में सूंनाया था के नहीं सूनाया था तूंमनें नही सूंनां होवे तो वावा

मंग जी तुम ईन : मानसीह जी राजा सब कुं कल काश मै या फेर सूंना देनां चाहीय सो ईनकुं वि अछी तरहें शें मालूम होइ जावेगा ईतनें में बाबा गंग भाट जी नें अरज करि के हजरत शलांमत अरज येशि है ॥

(कवित्त) -

कहत भाट कवि गंग प्रसंग सूनिय सूरितांनव ॥
चंद वरनि दधीरूप करिव गजनी सूरितांनव ॥
लगुं दीरघ बहू भेद वरन मात्रा सू बनांवन ॥
त्रस्त करत नही वनत छंद माहागनन सूं लांवन ॥
शंसक्रत्ये सम काव्य सब धंरन सकत कोइ अर्थ घट : ॥
सुंनी शाहा सुकवी वीनति करत सो भन्यो भननि अती चंद भट ॥१३॥

(वारता) -

बाबा गंग भाट जिनें अरज कीरि के हजरत सलांमत राजा साहेब श्री मानसीह जी नें अरज करी शो सची हैं रेनशि जुध तो बाबा चंद कवि का कथा हूवा हैं और कवि का बनाया नहीं है असी बनावट अगनी का गोट और कवी से नही हो शकता है ईसमें प्रस्तार करनो की अति कठिनाई है वरन मात्रा छंद में बीर घरने की बड़ी अटपटी हैं और असा बोल नही आता है ईतनां शुण के फेर पातशाह नें होकम कीया ।

(कवित्त)

भत भूय पकरि रास रास जंद वहोय कथीव ॥
रयनचरित्र की कथन मथन सागर सो मथीव ॥
देव वने र सूरलोक वशे हरिपुर में शरनीय ॥
हरि गूंन दरशन षोरी अवरि अंध्या नृप बरनिय ॥
भृम जाय जीव कथी रयन जुध कवन आंनि चंद को अष्यो ॥
अकबर सू साहा ईम उचेरे शो लीषक वन या मधि लष्यो ॥१४॥

(वारता) -

तमाम राजा रजवाड़े मीर अमीर सूंन रहें हे हजरत अकबर शाहा पातशाहा कहि रहे हैं : ।

(कवित्त) -

मूंनि भटी चाचंनी : कमवजो धवउ दांनीव ।।
जदु बहाडै गौर : वैस जालै सो ठानीव ।।
चालक तोवर कुंरमं टाक पिंची परी हारा ।।
शो लषी चंदेल जैत बिकांन करारा ।।
मछरीक राव अबुनीदंद षांन सुंनत अकवर अषत ।।
सीशोद रांन हींदवान नृप : सो उदैनंद सुंनीय सकत ।।१५।।

(वारता) -

षांन पठान सेष सईअद मुंगलांनां सब राजां वां समेत सूंन रहे हैं। मुलतांन अकवर साहा शव कुं के रहे हैं।

(दोहा) -

केसव कवि पंडीत तांहा : ।। मंत्री व टोडरमल ।।
बीरवल सूचिव प्रवल ।।-य बेठेइं विप्रमशल ।।१६।।
जूरत सभा अंवकास में ।। प्रवल भूप वरवीर ।।
बैठीक सें बैठत जांहां ।। ओर षरे रहत रनधिर ।।१७।।
माधो नरहर ईसरा ।। अबर मरारिदाश : ।।
रास सूंनन ठाढें रहित ।। कमध उदै नृप पास ।।१८।।

(वारता) -

सीरदार उमराव रावत जागीरदार तमांम सभा के सूंन रहे हैं अकवर शाहा पातसाहा कहत हैं हे के चंद कवि कु मरे हूवे कुंशर-जिवन। कीने कीया सो बीनु ने रनेशि जुध कु बना था या कोई वी नुंने भूत होके बनाया या कोंई बीनू ने जिद होके बनाया सा कोई बीनूने देव होके बनाया होगा तो बिनूं ने भिस्त में बनाया होगा : जे काई बीनुं ने भीस्त में देव तुं का लोक में बनाया तो यांहां कोन लाया : और ईश बड़ी भारी काव्य के सांमील कीने लिया है अै हमकुं कहो हमनें मचा वैयांन कीया है : ईतनां फुरमांना पातसाहा का सुंन कर के नषलेउ के नवात्र बहरंम षां जि ने अरज करि के ज्यांहांपनां पुदा ने पुद फुरमांन कीया है जिश बात की हकीगत : में वंदा आंमकास में हजरत के सामने अरज करता हूं सो षुदा सुंनवाई करैं ।।

(कवित्त) -

सूनी अकबर पतीशाहा कहूं सो सूंनीय गुनीन सें ॥
जीन दुरवासा सीस्य कही सो श्रवन मुंनीन सें ॥
चंद भाट वरदाई नाही गुंन हमकुं बुझव : ॥
मंत्र सजीवन पढन नांम त्रीयलोक की सुजव ॥
आद अंत सब रषन जुध साढा समुंद आग धर्‌यो ।
वहरंम षाँन ईम उचरिव सो मरंन कविं पहलेइ कर्‌यो ॥१६॥

(वारता) -

नवाव वेरमषां जि ने अरज करके ईस का वैयान कहा के मै अेक रोज आपेट पेलनें कुँ गया था । सो मुजकु अेक जंगल में तपसि मीले थे सो वो वड़े जोगेसूर थे वो दुरवासा ऋसि जी के सीस्यपास : गय थे सो वो वाहां से थे शो हमनें वीनुँ कों वहोत आदर कीया वो हम दोंनु अकेले थे : वो वौहोत वरसु के तपसी थे सो वीनु की षातरी करने में मुजकु अेक कवित रयन सी राजा के जुध माँहें का : पात साहा कु आसीरवाद दीया जीशका अेक सो वारहे का मेरे कुं आदहें सो मेने मेरे दील में काहा थां सों बीनुं ने : मुज कु पिछा ऊतर दीया के अेतो कवित : आश्री वाद पातसाहा कुं चंद कवि ने दीया है जो आप पड रहे हो : में वि सुन के अछंमे हूवां वहोत वीनुं की वंदगी : पांव चंपनी करी ओर मेने ऊनकु पुछा की आपने मेरे दील की केशे जांनी वीनूं ने कहा की हमतो जोगी है हमकु क्या पुछते हा मेरा नांम आला जोगी श्री गोरषनाथ जी का चेला हूं पर चंद कवी वड़ा सामृथ था : जीसकु आगम की वात होनी अनहोनी सब इष्टी से दीषती थी सो वीनु वेऊषव महीमा पेलेही शे रयनसी जुध समेत प्रथीराज रास बनाके राजा के पांश चले के गये पीछे वीन का मोक्ष हूवा सो वेवडे वरदायक थे वीनू कु दुर्गा प्रसंन्य थी : और भी उनकी अनमै षुल रही थी अनी वांनी सुलतांन था कलुकाल में माहा कवि की ओपमा वीन कुं थी वै कवि प्रमांनी कथे जीनू ने दया अछी काव्य तैयार करीहे अेक अगाड़ी वालमीक नांमाँ रसी हू पेष्ये जीनूं ने रांमचंद्र औतार तो त्रेता जुग में होनां था हूवा न ही था पर वीनु नें : सो क्रोड़ रांमांयन : आगम प्रथम सतजूग में वनाकर तयार करि जीस में वचन कहे शो सब सत हूवे हैं गीत नें में दिन अस्त होने लगा जव मैने हात जोड़ के अरज करी के महाराज आप वस्ती में पदारिये विनुं नें कहा के चलो में वांहा से दरपत से गोंड़ा

षोलवे कुं गया था षोल के दे दूं तो : कुछ भी नही है : वो तो अलोप होंके चले गयें में गोड़ में चडके ईदर : उदर चो तरफ हेरे से मीले नहि : जब में शोच करके वाहां शे चला आया जींन तें मुजकुं मालुंम हैं के अे आगंम वांनी : बालमिक जि की तरह सें बाबा चंद कवि की हे कहानी : ।।

(दोहा) -

सत जुग वोही त्रेता नीपजी सतकरोरी साष ।।
अकरषेती अगम की आद रयन तक लाष ।।२०।।
सतजुग वोही त्रैता उगी द्वापुर लिनी साष ।।
अकबरी या षेती अगम : ज्युंदी रयन तक लाष ।।२१।।

(वारता) -

ईतना सूंन के जेशलमेर के राजा श्री चावाजी भाटी ने अरज करी के।

(दोहा) -

उमां अबीव चंद फत्री लगी व रमीं यों कबी रमुंद ।।
सुंन अकबर चाचो कहे सूर सुरी भर्यो समुंद ।।२२।:

(वारता) -

ईतना सूंन क फेर बावा गंग जी भाट केते हैं ।

(कवित्त) -

सुंनी रासो सूरीतांन अगम आगम कवी अषीव ।।
फ्लेव बचन सत आज लेष गही चंद सू लषीव ।।
सीतर तीन प्रभाव सरस सुंदर अति भारीव ।।
...र शा[illegible] कीन कबी रास सीवारिव ।।
सत चत्रुर बरश गुंनतर गयउ सोहा अगै कत्री गंग भनि ।।
रचित रशि वैशाक बुद सो सोरे सै सयावीस गनी ।।२३।।

(वारता) -

बावा गंग भाट जी अरज करत हैं के राव बाबा चंद जी ने आगम बांनी कथी हैं सो कौन से बचन का बैयान हैं बच तो उंनुका अनपार है सो सबही सन कहें है प अे क बचन का प्रमांन सीध हूआ के ताहूं के सूंनि रासा सुरितांन अे बाय कीं तू न कहा था सो आपने वी आज रासा कुं सून लीया हैं सूरितांन सूंनने का बचन सवत् ११५८ के वरस में कहि गये थे शा समंत् १६२७ के वेसाष वीद तेरश गुरुवार कुं आपने पुरन सूंनाहें च्यार

शो गुंनंतर वरश में बचन शिध हूवां है सो अेतो मांहाभारथ प्रमांन समूंद्र रूपि ग्रंथ है ईतना सूंन के काशि के राजा बोलते भये ।

(दोहा) -

काशिपति नृपती कथीव राज पीथुल करि राशु ।।
गौरी सूंरसती गनिपती वसै चंददश नये बास ।।२४।।

(वारता) -

कासिके राजा ने अरजं करी के हजरत पातशाह सलांमत पारवती सूरसति गनिपतीं ऐ तीनू जने बाबा चंद जी की जिवांनय वशेते थे आगम बांनी क्युं कहगे : ईतनें में बाबा मैन भाट जी बोलय भय हैं ।

(कवित्त) -

मेंनक हितये महील अडिगं गढ चंद बनयव ।
कुरम प्रष्ठि धरिनों म उतंग अतिलक्ष चुंनयव ।
बुरज धरज चहूं कोर भवन सीतर त्रीय भारिव ।
सुदर सुर चित्रांम देष सांमत गन तारीव ।।
हरिहर ब्रह्मां भूप मेही तेतीश कोरी चमुं जलत ।
सुरितांन सुने हूं अकवर अरथ सोरषन कलस उपरि रलत ।।२५।।

(वारता) -

बाबा मेंन भाट जी ने अरज करी के हजरत अे बाबा चंद जी ने रास बनाय के अडिग कीला उपर महिल है डिगने का नही है अन्यन्त उचा है सीतर तीन प्रभाव षंन रुपी हैं लक्ष ग्रंथ रुप उंतंग हे सांभंत देषने कुंजारी गोष हैं हरिहर ब्रह्मां की स्तुति ये राजा रूपि हे रयनशी राश प्रभाव उपरि कल सरूप हैं ईतना सुंन के जोधपुर के राजा श्री उदेशीह जी ने अरज करि के पातसाहा शलांमत बाबा चंद जि नें अति आनुरता अतेतसे रास बनाया है ।

(कवित्त) -

लईय पहिर पुंनि पंच दोथ पुंल चतुराहे स्वासा ।
अेक स्वास का भाग अष्टमां अंसति कासा ।
ईतने में कबि ग्रंथ वरन अेक सहंस बनाव ।
लीषनी करिय यामध्य सोध उंमां शु मनाव ।
प : दोय पहीर : ओर न सद्धै लक्ष रच्यो कवि लषि धर्यो ।।
सुनीये साहाय नृप उद भनीसौ चन्द छन्द अती घदी कर्यो ।।२६।।

(वारता) -

हूं मांरे षुदा सें अरज करता हूं के बाबा चंद जी ने : अति आतुरताई से रास बनाया है : ते पुनि पांच पहिर दोय पुल स्वास चार पांच में स्वास का अष्टमां भाग रहितें ईतनी देर में अेक हजार ग्रंथ बाबा चंद जी ने बनाया हें ईशी लीषनां शोध वी ईसी में करनां ईश रीत शें दोय मास और पहिर में अेक लाष ग्रंथ रचाया हैं ईतनां सुनके मेड़ता के राजा श्री प्रथीराज जी रठोड़ ने अरज करी के पातसाहा सलांमत ईतने ग्रंथु की रुचाता वाहोत आतुरी सें हुई हैं ।

(दोहा) -

चंद छंद अति आतुरी वीस पायन यतिहास ।।
सुत पुरांन सुक भागवत प्रगटे रवि प्रकास ।।२७।।

(वारता) -

इतनें तो बहोत आतुर ताई और अनंत जलदि सें वने हैं ईतनां सूंनके महारांना जी श्री उदेशीह जी के पुत्र महाराज श्रीसगतसीह जी वोलते भये । के सुंनते हो दलेसुंर अेक में वी कहूँ ।

(दोहा) -

उमां अण भय उपजी मनां अछंबो मोय ।
वाणी लिषवो बरनवो करै न चंद बिन कोय ।।२८।।

(वारता) -

पातशा सलांमत बाबा चंद जि कु देवी जी का वरदान था सो अचुकीं वात रासा ग्रंथ बनाया हैं शो अे अनमैं कि वांनी है ईतनां सूंन के अकबर शाहा पातसाहा ने होकम कीया के सुनते ही महाराज श्री सगतसीह जी तुमांरे बड़ा वे रावर शंभरसीहजी के इशमें वड़े वढ़े जुध लीषे हैं राजा प्रथीराजजि वीनु के साले थे जीनसे वोबि वड़े हजरत शे जंग करके दलि में कांम आये थे इतनां सुनके ओड़ी साहा के केशवदास ब्रांमन बोले सनोडी ये अरजकरी के हजरत में अरज करता हूं सूंनी वाहा ये बादस्याहन कहा की कहा जद केशव दादा जी वोले ।

(दोहा) -

चपल बुधि कवि चंद की अति रच्यो ग्रंथ उताल ।
जीन आगेउं मां भनही तव बरन्यो ततकाल ।।२६।।

(वारता) -

दलसुर तुम हिदुस्थांन के मालिक बावा चंद जी के अगाडी मंत्र के आधिन हो उंमां आन वैठी थी शो छंद बोलतो जाती थी चंद जी की जीवांन पर छंद वरशते थे ओर लीखे जाते थे ऐसे अगम आतुरताई से रास बनी हे इतने में राजा श्री उदैसीह जी जोधपुर व्हालुं के पास च्यार जने षडे थे लुंम पकड़ हूवं जीसमें शे अेक जनां बोला के अंनदाता जि सूभचितक अरज करता है सो हजरत शलांमत कवली ज्यांन मेरी वी सूनी चाहीये गरीव परवर ईतनें में पातस्याहं ने फुंरमाया के सूंनते हो राजा उदैशीह जी अे कोन्हे जब राजा शाहा वने अरज करी के हजरत अे चारन हैं शो हूं मारे पास रहते हैं गीत दोहा पड़ते हैं जद बादस्याहां हुकम कीयां के अछया तुंमवि कहो जद चार नई शरदांश बोलैं ।

(दोहा) -

चंद रास छंद वंद रच्यो वरस्यो जड़ वरसात ।।
अण भय वांणी ईद्र जल उमाअन चुकी मात ।।३०।।

(वारता) -

अंनदाताजी अे तो अन मै की बांनी की संका नही हैं अनभै की वांनी तो जैसै सावन भादुवे में ईद्र की जड़ी वरशती है ईशी रीति सें बावा चंद जी कवि के भूष सें छंद बरशे हैं जद अेक लाष ग्रंथ दोय कहीनां और दोय पहिर में वनां हैं ईतने में उनके पाश सें दुशरा जना बोला उशी रिति शें पातशा पुंछा जद चारन नरह दाश बोले ।

(कवित्त)

पहिर च्यार षट गटीय पुलां पेतिश लई जु ।।
स्वास सुवा वरतंत : पाव अंस पाव गई जु ।।
ईतने में ईक शहंश चंद छंदावली भनीयो ।।
याहि दशें शत सहंस रांस पीथुल को बनीयो ।।
दोय माश और पहरि दो उमां अनमै अपी तव ।।
अकवर सूं साहा सुनि चंद कथी शोसत कहत नर हरसुकव : ।।३१।।

(वारता) -

अंदाताजी गरीवपरवरदीगार च्यार पहित छव गडी ये तीस पुलां सवा स्वाश में शे पाव स्वाश मां हे सें पाव अंश अष्टमो भाग हीन करके इतनी देर

में बाबा चंद जी ने अेक हजार ग्रंथ कीया है अेसेई वीनु ने दोय महिनों और दोय पहिर मे महा सांमृथ वरदाई ने येक लाष ग्रंथ कीया है ईतना सूंन के चार'न मुरारदाश अरज करि व बुशीरितशे पातसाहा राजा कुं पुछा वुसि रीत राज ने अरज करि पातशाहे हू कर्म कीया के अछा कहो जद मुरारदाश चारन बोला दोहा शोरठा कहा ।

(शोरठा) -

घरियो राव धूरींद अकवर चष देषै असौ ।
असौ करियो चंद कविंद राज राश प्रथी जरौं ।।३२।।

(वारता)-

दजिपत जी हिदुस्तान के परमेस्वरजि रासा सरिषा ग्रंथ और नही है : ईतना सूंन के चारन माधोदास ने अरज करि बुसिरिन से पुछ ताछ हूई जव हजरत से अरज करि ।

(दोहा) -

माधो कह सूंण ज्यो मरद रासा रा रीजवार ।
अकवर चंद गुंण ओलषें यो दली रे दरवार ।।३३।।

(वारता) -

अनदाता जी दली का रासा तो दलिपत विनां कोण सुंने कोण गुणां की पारषा करें चंदवरदाई जी नें तो होत रस में या प्रथीराज रास का चंडी जी की कृपा से वनाया हैं ईतनां सूनके पातसाहा जी श्री अकबरसाहाजी नें होकम कीया के सुंनते हो ईतनीं देर में कोइ लींषया : लेषनी शे निष नां शके सो वनानां तो हजार ग्रंथ का च्यार पहिर और छव गडी पेतीस पुंल सवा स्वास में अती मुंशकिल हैं लेकिन कोई देवता वी होवे तो आलीस कर जोवै ।

(कवित्त) -

व्हा व्हा कविचंद अगम बांनी तुंम आषिव : ।।
साहा नृपत सम जांन मांन जैसा सो राषिव ।।
व्हा व्हा कविचंद लो न पीथुल उजवारन ।।
ल्युं तेजी के कान दींन दोनूं ज जूवारन ।।
रसन नयन भुज ग्रीव कटि प्रीग्रम शहित अमृत रक्यौ ।।
वलीहारि जांऊं अंगुरीन की जीम लक्ष अेक लेषिन लष्यो ।।३४।।

(वारता) -

सुंनते हो राजा नवाव श्रेक बैठक सें ईतनी भारी काव्य का बनांवनां लिषनां सोध करनां माहा मुशकील है देषो बीनुं की जीवांन वी नही श्रटकी : बीनुंका नेत्र वी भूमें नही बीनुं का भूज वी दुषे नही : जीनुंकी गरदन वी पिड़ायमांन नां हूई जीनुं की कमर वि श्रकड़ी नही :। दोय महिने श्रौर दोई पहिर तलक श्रेक बैठीक शें लीघना बनांनां शोध करनां करते रहे पर बीनु के दील में श्रालिश वी कुछ श्राया नही देषो वीन की परिश्रम हूवा नही पर बीनु कुं विनके ईष्ट देव का बल वो हो कैतेथे जींन शें बीनूं के कुछ खेद उपजी नही इतनां कह करके वादस्या नें सव राजांन कुं फुंरमाया सब नवावुं उपर होकम किया।

(दोहा) -

श्रे वांनी श्रकबर श्रषे नृपति सुंनी नवाव।
रास लियावो घर रषो कविचंद की काव ॥३५॥

(वार्ता) -

पातसाहा जी श्री श्रकवरशाहाजी होकम कीया प्रथीराज रास कुँ तमाम राजां लुं के दरवार में लीपवांनां चाहीये सब जने पुस्तकें श्रपने श्रपने दफ्तर में रखो श्रौर बंचवानां चाहिये श्रौर कविश्रन के मांन वधांना चाहीयें श्रपने देव सें श्रगाडी सें वि रषतें श्राते हैं जैशे ही रषे जावों ईशमेश्र श्रपनी तारीफ होती है श्रगाडि से सुंनते हो कनही दीषो राजा प्रथीराज ने ऊनें की नोकरी उठाई तो वावा चंद जि नें उनका रास बनाय के यमर किया श्रौर वि देषो श्रपनां प्रांन राजा के शंग दीया ईतनां कह करकें पातसाहा जी वावा गंग भाट जी कुं श्रारी पशाव दीया ॥

(कवित्त) -

रशि नयन रितुचंद वरस ईक नीकश गई यव ॥
तीथि ते रसम धुवी। धीय वारव सपत सुंनी लईयव।
छंद वरन श्रानंद श्रवन श्रकबर सूरितांनव ॥
श्रादी श्रंत सव समजि रमजिया की गुरी तांनव ॥
जीय श्ररथ यामें गनीव मनीवचंद की वाच सत ॥
कोरि दांन कवि गंग कुं कनक रतन यनगिन श्रत ॥३६॥

दीये बाज दसदुंन हूँ रई कसं हंश हेमांड्वि ।।
चौर छत्र छरि कनक रूपे लष रोकीं जेनांड्वि ।।
नीलमनी गलमाल हीर जरीया दस्तांना ।।
पनां पाग सीरपेच होद हस्ति मस्तांनां ।।
तांमजांम सुषपाल रथ हेदल पेदल संज सब ।।
बंब धंश विरद बोलत अगै जो साहानी बजत गंग कर : ३७

(दोहा) -

मन शोनां दीये मेंनकुं शव कवियनकुं सेर ।
अकबर गरनीत उपरे देत करत नहीं देर ।।३८।।

(वारता) -

पातसाहा जि श्री अकबर साहाजी प्रथीराज राजा के रास सुनके वहोत प्रशन हूये हे मंन में प्रफुलित होके वावा गंग जी रावकुं क्रोरि पसाव दीया विश गौड़े एक हाती : तांमजांम सूषपाल रथ सरपेच पाग पंनां लीनम का गले में कंठा अनमोल पहरने का कवच दशतांन कमर कटार पांउं के तोडें हीरकनी के जड़ाऊ लाष रुपये राकडें अेक हजाह अशरफी शोने की छड़ी चौवर नीसांन घूशा दीआ सब संज असवारी का कीया अेक मन भर शोंनां वावा मैंन भाट कुं दिया अेक अेक शेर शोंनां सब कवियन कूँ ईनांम कीया : सब कवीयुं ने आश्रीवाद दीया दोय जनें चारन मिलके : अेक दोहा कहा ।

(दोहा) -

दीप नयन रितुं चंद्रमां पुंर तेरश मधुमाश ।
गंग गायो अकबर अगै चंद छंद पीथुरास ।।३९।।

(वारता) -

दीप नयन सितुं चंद्रमां ईतनां वोल मुरारीदास चारन ने कहा गंग गायो अकबर आगै ईतनां बोल : माधौदास चारन ने कहा चद छद पीथुराश ईतना बोल मुरारीदास चारन नें कहा पातशाहा जी अकबर शाहा जी सूंन के ईनं दोनूं कुं प व पाव शोंनां ओरू दीया इन दोनुं के सवा सवा सेर सोनां हो गया ईतनां श्रुन के नरहरदास चारन दोहा कहा।